सूर्य्यकुमारी पुस्तकमाला—७

अकबरी दरबार

पहला भाग



अनुवादक,

रामचंद्र वर्मा



प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

सं० २००४]

मूल्य ३

प्रकाशक—
नागरीप्रचारिणी सभा
काशी ।

मुद्रक—
ह० मा० सप्रे,
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस,
जतनवर, बनारस ।

निवेदन

उर्दू फारसी आदि के सुप्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय शम्सुलउल्मा मौलाना मुहम्मद हुसेन साहब "आजाद" कृत दरबारे-अकबरी नामक ग्रंथ के अनुवाद का पहला भाग हिंदी-प्रेमियों की सेवा में उपस्थित किया जाता है। अनुमान है कि अभी इसके प्रायः इतने ही बड़े तीन भाग और होंगे। इस ग्रंथ का महत्त्व ऐतिहासिक की अपेक्षा साहित्यिक ही अधिक है और इसके कुछ विशेष कारण हैं। इस ग्रंथ में अनेक बातें ऐसी हैं जिनसे सब लोग सहसा सहमत नहीं हो सकते और जिनके संबंध में बहुत कुछ आपत्ति की जा सकती है। ऐसी बातों पर अपना कुछ मत प्रकट करना, अनुवादक के नाते, मेरा कर्त्तव्य सा है; पर जब तक पूरा अनुवाद प्रकाशित न हो जाय, तब तक के लिये मैं अपना वह कर्तव्य स्थगित रखना ही उचित समझता हूँ। पूरा अनुवाद प्रकाशित हो चुकने पर अंत में मैं इस संबंध में अपने विचार प्रकट करूँगा। आशा है, तब तक के लिये पाठकगण मुझे इसके लिये क्षमा करेंगे और इस अनुवाद मात्र से ही अपना मनोरंजन तथा ज्ञान-वर्धन करेंगे।

काशी
२५ दिसंबर १९२४

निवेदक
रामचंद्र वर्म्मा

परिचय

जयपुर राज्य के शेखावाटी प्रांत में खेतड़ी राज्य है। वहाँ के राजा श्री अजीतसिंहजी बहादुर बड़े यशस्वी और विद्याप्रेमी हुए। गणितशास्त्र में उनकी अद्‌भुत गति थी। विज्ञान उन्हें बहुत प्रिय था। राजनीति में वह दक्ष और गुणग्राहिता में अद्वितीय थे। दर्शन और अध्यात्म की रुचि उन्हें इतनी थी कि विलायत जाने के पहले और पीछे स्वामी विवेकानंद उनके यहाँ महीनों रहे स्वामीजी से घंटों शास्त्र-चर्चा हुआ करती। राजपूताने में प्रसिद्ध है कि जयपुर के पुण्यश्लोक महाराज श्रीरामसिंहजी को छोड़कर ऐसी सर्वतोमुख प्रतिभा राजा श्रीअजीतसिंहजी ही में दिखाई दी।

राजा श्रीअजीतसिंहजी की रानी आउआ (मारवाड़) चाँपावतजी के गर्भ से तीन संतति हुईं—दो कन्या, एक पुत्र। ज्येष्ठ कन्या श्रीमती सूरजकुँवर थीं जिनका विवाह शाहपुरा के राजाधिराज सर श्रीनाहरसिंह जी के ज्येष्ठ चिरंजीव और युवराज राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी से हुआ। छोटी कन्या श्रीमती चाँदकुँवर का विवाह प्रतापगढ़ के महारावल साहब के युवराज महाराजकुमार श्रीमानसिंहजी से हुआ। तीसरी संतान जयसिंहजी थे जो राजा श्रीअजीतसिंहजी और रानी चाँपावतजी के स्वर्गवास के पीछे खेतड़ी के राजा हुए।

इन तीनों के शुभचिंतकों के लिये तीनों की स्मृति संचित कर्मों के परिणाम से दुःखमय हुई। जयसिंहजीका स्वर्गवास सत्रह वर्ष की अवस्था में हुआ। और सारी प्रजा, सब शुभचिंतक, संबंधी, मित्र और गुरुजनों का हृदय आज भी उस आँच से जल ही रहा है। अश्वत्थामा के व्रण की तरह यह घाव कभी भरने का नहीं। ऐसे आशामय जीवन का ऐसा निराशात्मक परिणाम कदाचित् ही हुआ हो। श्रीसूर्यकुँवर बाईजी को एकमात्र भाई के वियोग की ऐसी ठेस लगी कि दो ही तीन वर्ष में उनका शरीरांत हुआ। श्रीचाँदकुँवर बाईजी को वैधव्य की विषम यातना भोगनी पड़ी और भ्रातृ वियोग और पति-वियोग दोनों का असह्य

दुःख से झेल रही हैं। उनके ही एकमात्र चिरंजीव प्रतापगढ़ के कुँवर श्रीराम-सिंहजी से मातामह राजा श्रीप्रजीतसिंहजी का कुल प्रजावान् है।

श्रीमती सूर्यकुमारीजी के कोई संतति जीवित न रही। उनके बहुत आग्रह करने पर भी राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी ने उनके जीवन-काल में दूसरा विवाह नहीं किया। किंतु उनके वियोग के पीछे, उनके आज्ञानुसार कृष्णगढ़ में विवाह किया जिससे उनके चिरंजीव वंशांकुर विद्यमान हैं।

श्रीमती सूर्यकुमारीजी बहुत शिक्षिता थीं। उनका अध्ययन बहुत विस्तृत था। उनका हिंदी का पुस्तकालय परिपूर्ण था। हिंदी इतनी अच्छी लिखती थीं और अक्षर इतने सुंदर होते थे कि देखनेवाला चमत्कृत रह जाता। स्वर्गवास के कुछ समय के पूर्व श्रीमती ने कहा था कि स्वामी विवेकानन्दजी के सब ग्रंथों, व्याख्यानों और लेखों का प्रामाणिक हिंदी अनुवाद मैं छपवाऊँगी। बाल्यकाल से ही स्वामीजी के लेखों और अध्यात्म विशेषतः अद्वैत वेदांत की ओर श्रीमती की रुचि थी। श्रीमती के निर्देशानुसार इसका कार्यक्रम बाँधा गया। साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय। इसका व्यवस्थापत्र बनते न बनते श्रीमती का स्वर्गवास हो गया।

राजकुमार श्रीउमेदसिंहजी ने श्रीमती की अंतिम कामना के अनुसार लगभग एक लाख रुपया श्रीमती के इस संकल्प की पूर्ति के लिये विनियोग किया। काशी नागरीप्रचारिणी सभा के द्वारा इस ग्रंथमाला के प्रकाशन की व्यवस्था हुई है। स्वामी विवेकानंदजी के यावत् निबंधों के अतिरिक्त और भी उत्तमोत्तम ग्रंथ इस ग्रंथमाला में छापे जायँगे और लागत से कुछ ही अधिक मूल्य पर सर्व-साधारण के लिये सुलभ होंगे। इस ग्रंथमाला की बिक्री की आय इसी अक्षय नीवी में जोड़ दी जायगी। यों श्रीमती सूर्यकुमारी तथा श्रीमान् उमेदसिंहजी के पुण्य तथा यश की निरंतर वृद्धि होगी और हिंदी भाषा का अभ्युदय तथा उसके पाठकों को ज्ञान-लाभ।

—:o:—

विषय-सूची

अकबरी दरबार



पहला भाग



भारत-सम्राट् जलालुद्दीन अकबर

अमीर तैमूर ने भारतवर्ष को तलवार के जोर से जीता था। पर वह एक बादल था कि आया, गरजा, बरसा और देखते देखते खुल गया। बाबर उसके पड़पोते का पोता था जो उसके सवा सौ वर्ष बाद हुआ था। उसने साम्राज्य की स्थापना आरंभ की थी, पर इसी प्रयत्न में उसका देहांत हो गया। उसके पुत्र हुमायूँ ने साम्राज्य-प्रासाद की नींव डाली और कुछ ईंटें भी रखीं; पर शेर शाह के प्रतापने उसे दम न लेने दिया। अंतिम अवस्था में जब फिर उसकी ओर प्रताप-रूपी वायु का झोंका आया, तब आयु ने उसका साथ न दिया। अंत में सन् ९६३ हिजरी (सन् १५५६ ईस्वी) में प्रतापशाली अकबर ने राज्यारोहण किया। तेरह बरस के लड़के की क्या बिसात; पर ईश्वर की महिमा देखो कि उसने साम्राज्य-प्रासाद को इतनी ऊँचाई तक पहुँचाया और नींव को ऐसा दृढ़ किया कि पीढ़ियों तक वह न हिली। वह लिखना-पढ़ना नहीं जानता था; पर फिर भी अपनी कीर्ति के लेख ऐसी कलम से लिख गया कि कालचक्र उन्हें घिस घिसकर मिटाता है, पर वे जितना घिसते हैं, उतना ही चमकते जाते हैं। यदि उसके उत्तराधिकारी भी उसी के मार्ग

पर चलते, तो भारतवर्ष के भिन्न भिन्न धर्मानुयायियों को प्रीति-नदी के एक ही घाट पर पानी पिला देते। बल्कि वही राज-नियम प्रत्येक देश के लिये आदर्श होते। उसकी हर एक बात की खूबियाँ आदि से अंत तक देखने योग्य हैं।

हुमायूँ जिन दिनों शेर शाह के हाथों तंग हो रहा था, एक दिन माँ ने उसकी दावत की। वहाँ उसे एक युवती दिखाई दी। उसे देखते ही वह उसके रूप पर आसक्त हो गया। पूछने पर लोगों ने निवेदन किया कि इनका नाम हमीदा बानो बेगम है; ये एक उच्च और प्रतिष्ठित सैयद कुल की हैं और इनके पिता आपके भाई मिरज़ा हिंदाल के गुरु हैं। हुमायूँ ने उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। हिंदाल ने कहा कि यह अनुचित है; ऐसा न हो कि मेरे गुरु को कुछ बुरा लगे। पर हुमायूँ का दिल ऐसा न था जो किसी के समझाए समझ जाता। अंत में उसने हमीदा के साथ विवाह कर ही लिया।

यह विवाह केवल हार्दिक प्रेम के कारण हुआ था, अतः हुमायूँ क्षण भर भी हमीदा से अलग न रह सकता था। उसके दिन ऐसे खराब थे कि उसे एक जगह चैन से रहना न मिलता था। अभी पंजाब में है तो अभी सिंध में; और अभी बीकानेर-जैसलमेर के रेगिस्तान में पानी ढूँढ़ता है, तो कहीं कोसों तक नाम को भी नहीं मिलता। अब जोधपुर जाने का विचार है, क्योंकि उधर से कुछ आशा के शब्द सुनाई पड़ते हैं। पास पहुँचने पर पता लगता है कि वह आशा नहीं थी, बल्कि छल ही आवाज बदलकर बोल रहा था। वहाँ तो मृत्यु मुँह खोले बैठी है। विवश होकर उलटे पैरों फिर आता है। ये सब विपत्तियाँ हैं, पर फिर भी प्यारी पत्नी प्राणों के साथ है। कई युद्धक्षेत्रों में हमीदा के कारण ही बड़ी बड़ी खराबियाँ हुईं; पर वह सदा उसे तावीज की तरह गले से लगाए फिरा। जब ये लोग जोधपुर की ओर जा रहे थे, तब अकबर माँ के पेट में पिता की विपत्तियों में साथ दे रहा था। उस यात्रा से लौटकर ये लोग सिंध की ओर गए। हमीदा का प्रसवकाल

बहुत ही समीप आ गया था; इसलिये हुमायूँ ने उसे अमरकोट में छोड़ा और आप आगे बढ़कर पुरानी लड़ाई लड़ने लगा। उसी अवस्था में एक दिन सेवक ने आकर समाचार दिया कि मंगल हो, प्रताप का तारा उदित हुआ है। यह तारा ऐसी विपत्ति के समय झिलमिलाया था कि उसकी ओर किसी की आँख ही न उठी। पर भाग्य अवश्य कहता होगा कि देखना, यही तारा सूर्य्य होकर चमकेगा; और ऐसा चमकेगा कि इसके प्रकाश में सारे तारे धुँधले होकर आँखों से ओझल हो जायँगे।

तुर्कों में दस्तूर है कि जब कोई ऐसा मंगल-समाचार लाता है, तब उसे कुछ देते हैं। यदि कोई साधारण कोटि का भला आदमी होगा, तो वह अपना चोगा ही उतारकर दे देगा। यदि अमीर है, तो अपनी सामर्थ्य के अनुसार खिलअत, घोड़ा और नगद जो कुछ हो सकेगा, देगा। नौकरों को इनाम इकराम से खुश करेगा। हुमायूँ के पास जब खबर यह सुसमाचार लाया, तब उसके दिन अच्छे नहीं थे। उसने दाएँ बाएँ देखा, कुछ न पाया। फिर याद कि कस्तूरी का एक नाफा है। उसे निकालकर तोड़ा और थोड़ी थोड़ी कस्तूरी सब को दे दी कि शकुन खाली न जाय। भाग्य ने कहा होगा कि जी छोटा न करना; इसके प्रताप का सौरभ सारे संसार में कस्तूरी के सौरभ की भाँति फैलेगा।

इस नवजात शिशु को ईश्वर ने जिस प्रकार इतना बड़ा साम्राज्य और इतना वैभव दिया, उसी प्रकार इसके जन्म के समय ग्रहों को भी ऐसे ढंग से रखा कि जिसे देखकर अब तक बड़े बड़े ज्योतिषी चकित होते हैं। हुमायूँ स्वयं ज्योतिष शास्त्र का अच्छा ज्ञाता था। वह प्रायः उसकी जन्मकुंडली देखा करता था और कहता था कि कई बातों में इसकी कुंडली अमीर तैमूर की कुंडली से भी कहीं अच्छी है। उसके खास मुसाहबों का कहना है कि कभी कभी ऐसा होता था कि वह देखते देखते उठ खड़ा होता था, कमरे का दरवाजा बंद कर लेता था,

तालियाँ बजाकर उछलता था और मारे खुशी के चक्फेरियाँ लिया करता था।

अकबर अभी गर्भ में ही था और मीर शम्शुद्दीन मुहम्मद (विवरण के लिये परिशिष्ट देखो) की स्त्री भी गर्भवती थी। हमीदा बेगम ने उससे वादा किया था कि मेरे घर जो बालक होगा, उसे मैं तुम्हारा दूध पिलाऊँगी। जिस समय अकबर का जन्म हुआ, उस समय तक उसके घर कुछ भी न हुआ था। बेगम ने पहले तो अपना दूध पिलाया; फिर कुछ और स्त्रियाँ पिलाती रहीं; और जब थोड़े दिनों बाद उसके घर संतान हुई, तब वह दूध पिलाने लगी। पर अकबर ने विशेषतः उसी का दूध पिया था और इसी लिये वह उसे जीजी कहा करता था।

बहुत सी बातें थीं जिन्हें अकबर अपनी दूरदर्शिता के कारण पहले से ही जान लिया करता था; और बहुत से काम थे जिन्हें वह केवल अपने साहस के बल पर ही पूरा कर लिया करता था। अनेक चगताई लेखकों ने उन बातों को भविष्यद्वाणी और करामात के रंग में रँग दिया है। एक तो वे लेखक अकबर के सच्चे सेवक और भक्त थे; और दूसरे एशियावाले ऐसी बातों को अतिरंजित करने के अभ्यस्त हैं। आजाद सब बातों को नहीं मान सकता; पर इतना अवश्य है कि बड़े-बड़े प्रतापी महापुरुषों में कुछ बातें ऐसी होती हैं जो साधारण लोगों में नहीं होतीं। मैं उनमें से कुछ बातें यहाँ लिख देता हूँ। इससे यह अभिप्राय नहीं है कि इन्हें सच समझो। जो बात सच होती है और दिल को लगती है, वह आप मालूम हो जाती है। मेरा अभिप्राय केवल यही है कि उस ज़माने में लोग बड़े गर्व से ऐसी बातों का बादशाहों में आरोप किया करते थे।

जीजी का कथन है कि एक बार अकबर ने कई दिनों तक दूध नहीं पिया। लोगों ने कहा कि जीजी ने जादू कर दिया है; क्योंकि वह चाहती है कि यह और किसी का दूध न पिए। जीजी को इस बात

का बहुत दुःख था। एक दिन वह अकेली अकबर को गोद में लिए हुए बहुत ही चिंतित भाव से बैठी थीं। बच्चा चुपचाप उसका मुँह देख रहा था। अचानक बोल उठा कि जीजी तुम चिंता न करो, मैं तुम्हारा ही दूध पीऊँगा; पर किसी से इस बात की चर्चा न करना। जीजी बहुत चकित हुई और उसने डर के मारे किसी से कुछ न कहा।

जब अकबर बादशाह हुआ, तब एक दिन जंगल में शिकार खेलता खेलता थककर सुस्ताने के लिये एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उस समय केवल कोका[1] यूसुफ मुहम्मदखाँ पास था। इतने में एक बहुत बड़ा और भयानक अजगर निकलकर इधर उधर दौड़ने लगा। अकबर निर्भय होकर उस पर झपटा, उसकी दुम पकड़कर खींची और पटककर उसे मार डाला। कोका को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने आकर यह हाल माँ से कहा। उस समय माँ ने भी उक्त पुरानी बात कह सुनाई।

जब अकबर की माँ गर्भवती थी, तब एक दिन बैठी हुई कुछ सी रही थी। सहसा मन में कुछ विचार उठा। उसने अपनी पिंडली में सूई गोदी और उसमें सुरमा भरने लगी। हुमायूँ बाहर से आ गया। उसने पूछा—"बेगम, यह क्या करती हो?" उसने कहा कि मेरा जी चाहा कि ऐसा ही गुल मेरे बच्चे के पैर में हो। ईश्वर की महिमा, जब अकबर का जन्म हुआ, तब उसकी पिंडली में भी वैसा ही सुरमई निशान था।

हुमायूँ बहुत दिनों तक इस आशा से सिंध देश में लड़ता भिड़ता

१—जिस बच्चे की माँ का दूध किसी शाहजादे आदि को पिलाया जाता था, वह बच्चा उस शाहजादे का कोका कहलाता था। उसका तथा उसके संबंधियों का बहुत आदर हुआ करता था। राज्य में भी उसका कुछ अंश हुआ करता था; और उस बच्चे को कोकलताशखाँ की उपाधि मिलती थी। अकबर ने यद्यपि आठ दस स्त्रियों का दूध पिया था, पर उनमें से सबसे बड़ी हकदार माहम बेगम और शम्सुद्दीन मुहम्मदखाँ की स्त्री ही गिनी जाती थीं।

रहा कि कदाचित् भाग्य कुछ चमक उठे और कोई ऐसा उपाय निकले कि फिर भारत पर चढ़ाई करने का सामान इकट्ठा हो जाय। लेकिन न तरकीब चली और न तलवार। इसी बीच में वैरमखाँ आ पहुँचे। उन्होंने आकर सब हाल सुना और सारी परिस्थितियों को देखकर बहुत कुछ परामर्श किया। अंत में उन्होंने कहा कि इन वेमुरव्वतों से कोई आशा नहीं है। यदि ये कुछ मुरव्वत भी करें, तो इस रेगिस्तान में रखा ही क्या है जो मिले! हुमायूँ ने कहा—"तो फिर अच्छा है, अब भारत से ही विदा हों और अपने पैतृक देश में चलकर भाग्य की परीक्षा करें।" वैरमखाँ ने कहा—"उस देश से स्वर्गीय बादशाह बाबर ने ही क्या पाया, जो हुजूर को कुछ मिलेगा! हाँ, ईरान की ओर चलें तो ठीक है। वह मेरा और मेरे पूर्वजों का देश है। वहाँ के छोटे बड़े सब आतिथ्य-सत्कार करना जानते हैं। यह सेवक वहाँ की रीति-नीति से भी परिचित है; और आपके पूर्वजों को भी वहाँ सदा से शुभ और सफलता के शकुन मिले हैं।"

हुमायूँ ने सिंध देश से डेरे उठाए। अभी ईरान जाने का विचार छोड़ा तो नहीं था, पर यह खयाल था कि जिस प्रकार यह यात्रा दूर की है, उसी प्रकार वहाँ सफलता की आशा भी दूर है। अभी पहले बोलन की घाटी से निकलकर कंधार को देखना चाहिए, क्योंकि वह पास है। वहाँ से मशहद को सीधा रास्ता जाता है; बलख और बुखारे को भी रास्ता जाता है। अस्करी मिरजा इस समय कंधार में शासन कर रहा है। मैं इतने कष्ट उठाकर बाल बच्चों के साथ जाता हूँ। आखिर भाई है। जीता खून कहाँ तक ठंडा रहेगा। और कुछ नहीं तो आतिथ्य-सत्कार तो कहीं नहीं गया। कुछ दिनों तक वहाँ रहकर उसका और पुराने सेवकों का रंग ढंग देखूँगा। यदि कुछ भी आशा न हुई, तो फिर जिधर मुँह उठेगा, उधर चला जाऊँगा।

बिना राज्य का राजा और बिना लश्कर का बादशाह यही सब बातें

सोचता, अपने दुखी जी को बहलाता, जंगलों और पहाड़ों में से होता हुआ चला जाता था। रास्ते में एक जगह पड़ाव पड़ा था कि किसी ने आकर सूचना दी कि कामरान का अमुक वकील सिंध की ओर जा रहा है। शाह हुसेन अरगून की बेटी से कामरान के बेटे के विवाह की बातचीत करने के लिये जा रहा है। इस समय सीवी[1] के किले में उतरा हुआ है। हुमायूँ ने उसे बुलाने के लिये एक सेवक भेजा; पर वह किले में चुपचाप बैठा रहा। उसने कहला दिया कि किलेवाले मुझे आने नहीं देते। हुमायूँ को दुःख हुआ।

हुमायूँ इसी अवस्था में शाल[2] के पास पहुँचा। मिरजा अस्करी को भी उसके आने का समाचार मिल चुका था। बेमुरव्वत भाई ने अपने दुखी और गरीब भाई के आने का समाचार सुनकर इसलिये एक सरदार पहले से ही भेज दिया था कि वह उसके संबंध की सब बातों का पता लगाकर लिखता रहे। इधर हुमायूँ ने भी पहले से ही अपने दो सेवकों को भेज दिया था। ये दोनों सेवक उस सरदार को रास्ते में ही मिल गए। उसने इन दोनों को गिरफ्तार करके कंधार भेज दिया और जो कुछ समाचार मालूम हुआ, वह लिख भेजा। उनमें से एक किसी प्रकार भागकर फिर हुमायूँ के पास आ पहुँचा; और जो कुछ वहाँ देखा, सुना और समझा था, वह सब कह सुनाया। उसने यह भी कहा कि हजूर के आने का समाचार सुनकर मिरजा अस्करी बहुत घबराया है। वह कंधार के किले की मोरचेबंदी करने लगा है। भाई का यह व्यवहार देखकर हुमायूँ की सारी आशाएँ मिट्टी में मिल गईं और उसने मुस्तंग की ओर बागें फेरीं। पर फिर भी उसने भाई के नाम एक प्रेमपूर्ण पत्र लिखा जिसमें अपनायत के लहू को

१—आजकल का सिब्बी।

२—यह स्थान कंधार से ग्यारह कोस इधर ही है।

बहुत गरमाया था और बहुत कुछ उत्तम संमतियाँ तथा उपदेश दिए थे। मगर कान कहाँ जो सुनें, और दिल कहाँ जो न माने!

वह पत्र देखकर मिरजा अस्करी के सिर पर और भी भूत चढ़ा। वह अपने कुछ साथियों को लेकर इस उद्देश्य से चल पड़ा कि औचक में पहुँचकर हुमायूँ को कैद कर ले; और यदि कैद करने का अवसर न मिले तो कहे कि मैं तुम्हारा स्वागत करने के लिये आया हूँ। वह प्रभात के समय ही उठकर चल पड़ा। ची बहादुर नाम का एक उज़बक पहले हुमायूँ का नौकर था। पर जब हुमायूँ के दिन बिगड़े, तब उसने आकर मिरजा अस्करी के यहाँ नौकरी कर ली थी। उस समय नमक ने अपना असर दिखाया और उसके हृदय में हुमायूँ के प्रति दया उत्पन्न की। उसने कहा कि मैं रास्ता जानता हूँ। कई बार आया गया हूँ। मिरजा ने सोचा कि यह सच कहता है; क्योंकि इधर इसकी जागीर थी। कहा—"अच्छा, आगे आगे चल।" उसने कहा—"मेरा टट्टू काम नहीं देता।" मिरजा ने एक नौकर से घोड़ा दिलवा दिया। ची बहादुर ने थोड़ी दूर आगे चलकर घोड़ा उड़ाया और सीधा बैरमखाँ के डेरे में पहुँचा। वहाँ उनके कान में कहा कि मिरजा आ पहुँचा है। अब ठहरने का समय नहीं है। मैं संयोग से ही इस तरह यहाँ आ पहुँचा हूँ। बैरमखाँ उसी समय चुपचाप उठकर खेमे के पीछे से हुमायूँ के पास पहुँचा और सब हाल कह सुनाया। उस समय इसके सिवा और क्या हो सकता था कि ईरान जाने का ही विचार दृढ़ किया जाय। तरदीबेग के पास आदमी भेजकर कहलाया कि कुछ घोड़े भेज दो। पर उसने भी साफ जवाब दे दिया। अब हुमायूँ को ईश्वर याद आया। भाइयों का यह हाल, सेवकों और साथियों का यह हाल। जोधपुर के रास्ते की बातें भी याद आ गईं। जी में आया कि अभी चलकर इन सब बातों को पराकाष्ठा तक पहुँचा दो। पर बैरमखाँ ने निवेदन किया कि समय बिलकुल नहीं है। बात करने का भी अवकाश नहीं है। आप इन दुष्टों को ईश्वर पर छोड़ें और चटपट सवार हों। अकबर

उस समय पूरे एक बरस का भी नहीं हुआ था। उसे मीर गजनवी, आहम अतका और ख्वाजासराओं के सपुर्द करके वहीं छोड़ा और उनसे कहा कि इसका ईश्वर ही रक्षक है। हम आगे चलते हैं। तुम बेगम को किसी तरह हमारे पास पहुँचा दो। थोड़े से सेवकों को लेकर चल पड़ा। पीछे बेगम भी आ मिलीं। कहते हैं कि उस समय नौकर चाकर सब मिलकर सत्तर आदमियों से अधिक साथ में नहीं थे। थोड़ी ही दूर गए थे कि रात ने आँखों के आगे काला परदा तान दिया। सोचा कि ऐसा न हो कि कहीं भाई पीछा करे। बैरमखाँ ने कहा कि मिरजा अस्करी यद्यपि शाहजादा है, पर फिर भी पैसे का गुलाम है। वह इस समय निश्चिंत होकर बैठा होगा। दो मुंशी इधर उधर होंगे। माल असबाब की सूची तैयार करा रहा होगा। इस समय यदि हम ईश्वर पर विश्वास रखकर जा पड़ें, तो उसे बाँध ही लेंगे। जब मिरजा बीच में न रह जायगा, तो फिर बाकी सब पुराने सेवक ही तो हैं। सब हाजिर होकर सलाम करेंगे। बादशाह ने कहा कि बात तो बहुत ठीक है; पर अब एक विचार पक्का हो चुका है। अब चले ही चलो। फिर देखा जायगा।

इधर मिरजा अस्करी ने मुस्तंग के पास पहुँचकर अपने प्रधान सचिव को हुमायूँ के पास भेजा कि उसे छल-कपट की बातों में फँसाए। पर इसमें उसे सफलता नहीं हुई। हुमायूँ पहले ही रवाना हो चुका था। खाली फटे पुराने खेमे खड़े थे, जिनमें कुछ नौकर चाकर थे। अस्करी के बहुत से आदमियों ने पहले ही पहुँचकर उनको घेर लिया। पीछे से मिरजा अस्करी ने पहुँचकर ची बहादुर के पहुँचने और हुमायूँ के चले जाने का हाल अपने प्रधान से सुना। अपनी बदनीयती पर बहुत पछताया। तरदी बेग सबको लेकर सलाम के लिये हाजिर हुए, पर सब के साथ वह भी नजरबंद हो गए। मीर गजनी से पूछा कि मिरजा अकबर कहाँ है? निवेदन किया कि घर में है। चचा ने भतीजे के लिये एक ऊँट मेवे का भेजा। इतने में रात हो गई।

मिरजा अस्करी बैठा और जो बात खानखाना ने वहाँ कही थी, उसकी हूबहू तसवीर यहाँ खिंच गई। वह एक दो मुंशियों को लेकर जब्ती के असबाब की सूची तैयार कराने लगा। सवेरे सवार हुआ और डंका बजाते हुए हुमायूँ के उर्दू (लश्कर) में पहुँचकर छोटे बड़े सबको गिरफ्तार-कर लिया। तरदी बेग संदूकदार (खजानची) थे। वह मितव्यय करने के इनाम में शिकजे में कसे गए। जो कुछ उन्होंने जमा किया था, वह सब कौड़ी कौड़ी अदा कर दिया। सब लोग लूटे गए और बहुत से निरपराध मारे और बाँधे गए। हुमायूँ का क्रोध कभी इतना कठोर दंड नहीं दे सकता था, जितना मिरजा अस्करी के हाथों मिल गया।

भतीजे से मिलने के लिये निर्दय चचा ड्योढ़ी पर आया। यहाँ लोगों ने मर मरकर रात बिताई थी। सब के दिल धड़क रहे थे कि माँ बाप उस हाल से गए; हम इन पहाड़ों में इस प्रकार पड़े हैं कि कोई पूछनेवाला नहीं है। बेमुरव्वत चचा है और निरपराध बच्चे की जान है। ईश्वर ही रक्षक है। मीर गजनवी और माहम अतका अकबर को गले से लगाए हुए सामने आई। दुष्ट चचा ने गोद में ले लिया और अकबर को हँसाने के लिये जहर भरी हँसी हँसकर उससे बातें करने लगा। पर अकबर के होंठों पर मुस्कराहट भी न आई। वह चुपचाप उसका मुँह देखता रहा। कपटी चचा ने नाराज होकर कहा कि मैं जानता हूँ कि तू किसका लड़का है। भला मेरे साथ तू क्यों हँसे-बोलेगा! मिरजा अस्करी के गले में लाल रेशम में बँधी हुई एक अँगूठी थी। उसका लाल लच्छा बाहर दिखाई पड़ता था। अकबर ने उसपर हाथ बढ़ाया। चचा ने अपने गले से वह अँगूठीवाला रेशम निकालकर अकबर के गले में पहना दिया। हतोत्साह शुभचिंतकों ने मन में कहा—क्या आश्चर्य है कि एक दिन ईश्वर इसी तरह साम्राज्य की अँगूठी भी इस नौनिहाल की उँगली में पहना दे।

मिरजा अस्करी के हाथ जो कुछ आया, वह सब उसने

लूटा-खसोटा और अंत में अकबर को भी अपने साथ कंधार ले गया। किले में एक मकान रहने को दिया और अपनी स्त्री सुलतान बेगम के सपुर्द किया। बेगम उसके साथ बहुत ही प्रेमपूर्ण व्यवहार करती थी। ईश्वर की महिमा देखो, बाप के जानी दुश्मन लड़के के हक में माँ-बाप हो गए। माहम और जीजी अंदर और मीर गजनवी बाहर सेवा में उपस्थित रहते थे। अंबर ख्वाजासरा भी था जो अकबर के सम्राट् होने पर एतमादखाँ हुआ और जिसके हाथ में बहुत कुछ अधिकार दिए गए!

तुर्कों में प्रथा है कि जब बच्चा पैरों से चलने लगता है, तब बाप, दादा, चाचा आदि जो बड़े उपस्थित होते हैं, वे अपने सिर से पगड़ी उतारकर चलते हुए बच्चे को मारते हैं, जिससे बच्चा गिर पड़े; और इस पर बहुत आनंद मनाते हैं। जब अकबर सवा बरस का हुआ और अपने पैरों चलने लगा, तब माहम ने मिरजा अस्करी से कहा कि इस समय तुम्हीं इसके बाप की जगह हो; यदि यह रसम हो जाय तो बहुत अच्छा हो। अकबर कहा करता था कि माहम का यह कहना, मिरजा अस्करी का पगड़ी फेंकना और अपना गिरना मुझे बहुत अच्छी तरह से याद है। उन्हीं दिनों सिर के बाल बढ़ाने के लिये बाबा हसन अब्दाल[1] की दरगाह में ले गए थे, वह भी मुझे आज तक याद है।

जब हुमायूँ ईरान से लौटा और अफगानिस्तान में उसके आगमन की जोरों से चर्चा होने लगी, तब मिरजा अस्करी और कामरान घबराए। आपस में सँदेसे भुगतने लगे। कामरान ने लिखा कि अकबर को हमारे पास काबुल भेज दो। मिरजा अस्करी ने जब अपने यहाँ परामर्श किया, तब कुछ सरदारों ने कहा कि अब भाई पास आ पहुँचा है। भतीजे को प्रतिष्ठापूर्वक उसके पास भेज दो और इस प्रकार सारे

१—उन्हीं के नाम से पेशावर में हसन अब्दाल नामक एक स्थान अब तक प्रसिद्ध है।

वैमनस्य का अंत कर दो। पर कुछ लोगों ने कहा कि अब सफ़ाई की गुंजाइश नहीं रही। मिरज़ा कामरान का ही कहना मानना चाहिए। मिरज़ा अस्करी को भी यही उचित जान पड़ा। उसने सब लोगों के साथ अकबर को काबुल भेज दिया।

मिरज़ा कामरान ने उसको अपनी फूफी खानज़ादा बेगम के घर में उतरवाया और उनकी सारी व्यवस्था का भार भी उन्हीं पर छोड़ दिया। दूसरे दिन शहर आरा नामक बाग में दरबार किया। अकबर को भी उस दरबार में बुलाया। शब-बरात का दिन था। दरबार खूब सजाया गया था। वहाँ प्रथा है कि बच्चे उस दिन छोटे छोटे नगाड़ों से खेलते हैं। कामरान के बेटे मिरज़ा इब्राहीम के लिये एक बहुत बढ़िया रँगा हुआ नगाड़ा आया था। वह उसने ले लिया। अकबर अभी बच्चा था। वह क्या समझता कि मैं इस समय किस अवस्था और किस दशा में हूँ। उसने कहा कि यह नगाड़ा मैं लूँगा। मिरज़ा कामरान तो पूरे लज्जाशील थे। उन्होंने भतीजे का दिल रखने का कुछ भी खयाल न किया और कहा कि अच्छा, दोनों कुश्ती लड़ो; जो पछाड़े, उसी का नगाड़ा। यही सोचा होगा कि मेरा बेटा इससे बड़ा है, मार लेगा। यह लज्जित भी होगा और चोट भी खायगा। पर 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। उस प्रतापी बालक ने इन बातों का कुछ भी खयाल नहीं किया और झपटकर उससे गुथ गया; और ऐसा बेलाग उठाकर दे मारा कि सारे दरबार में पुकार मच गई। कामरान कुछ लज्जित होकर चुप रह गया और समझ गया कि ये लक्षण अच्छे नहीं हैं। इधरवाले मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए और आपस में कहने लगे कि इसे खेल न समझो; इसने यह अपने पिता का संपत्ति-रूपी नगाड़ा लिया है।

जिस समय हुमायूँ ने काबुल जीता था, उस समय अकबर दो बरस, दो महीने और आठ दिन का था। पुत्र को देखकर पिता ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। कुछ दिनों के बाद विचार हुआ कि इसका

खतना कर दिया जाय। उस समय बेगम आदि और महल की दूसरी स्त्रियाँ कंधार में थीं। वह भी आईं। उस समय एक बहुत ही विलक्षण तमाशा हुआ। जिस समय हुमायूँ अपने साथ बेगम को लेकर और अकबर को छोड़कर ईरान गया था उस समय अकबर की क्या बिसात थी! कुछ दिनों और महीनों का होगा। जरा सा बच्चा, क्या जाने कि माँ कौन है। जब सब स्त्रियाँ आ गईं, तब उनको लाकर महल में बैठाया गया। अकबर को भी लाए और कहा कि जाओ, अपनी माँ की गोद में जा बैठो। भोले भाले बच्चे ने पहले तो बीच में खड़े होकर इधर उधर देखा। फिर चाहे ईश्वरदत्त बुद्धि कहो, चाहे हृदय का आकर्षण कहो, और चाहे रक्त का आवेश कहो, सीधा माँ की गोद में जा बैठा। माँ बरसों से बिछुड़ी हुई थी। आँखें भर आईं। गले से लगाया, मुँह चूमा। उस छोटी सी अवस्था में उसकी यह समझ और पहचान देखकर सब लोगों को बड़ी बड़ी आशाएँ हुईं।

सन् ९५४ हिजरी (१५४७ ईसवी) में जिस समय कामरान ने फिर विद्रोह किया, उस समय वह काबुल के अंदर था; और हुमायूँ बाहर घेरा डाले पड़ा था। एक दिन आक्रमण का विचार था। बाहर से गोले बरसाने शुरू किए। बहुत से लोगों के घर और घरवाले अंदर थे; और वे स्वयं हुमायूँ के लश्कर में थे। निर्दय कामरान ने उन सबके घर लूट लिए, उनके घर की स्त्रियों को बेइज्जत किया और उनके बच्चों को मार मारकर प्राकार पर से नीचे गिरवा दिया। उनकी स्त्रियों की छातियाँ बाँधकर लटकाया और सब से बढ़कर अनर्थ यह किया कि जिस मोरचे पर गोलों का बहुत जोर था, उसी पर पौने पाँच बरस के अपने निरपराध भतीजे को बैठा दिया[1]।

१—अकबरनामे में अब्दुल फजल ने लिखा है कि कामरान ने बालक अकबर को किले की दीवार पर बैठा ही दिया था। हैदर मिरजा बदाऊनी, फरिश्ता आदि भी उसी का समर्थन करते हैं। पर बायजीद ने, जो उस समय वहीं उपस्थित

माहम उसे गोद में लेकर और गोलों की ओर पीठ करके बैठ गई कि यदि गोला लगे, तो वला से; पहले मैं और पीछे बच्चा। हुमायूँ की सेना में किसी को यह बात मालूम नहीं थी। एकाएक तोप चलते चलते बंद हो गई। कभी महताब दिखाई तो रंजक चाट गई; और कभी गोला उगल दिया। तोपखाने के प्रधान संबुलखाँ की दृष्टि बहुत तीव्र थी। उसने ध्यान से देखा तो सामने कोई आदमी बैठा हुआ दिखाई दिया। पता लगाने पर यह बात मालूम हुई। पर यह कोई बड़ी बात नहीं। जब प्रताप प्रबल होता है, तब ऐसा ही होता है। और मुझे तो अरब और अजम के सरदार का यह कथन नहीं भूलता कि स्वयं मृत्यु ही तेरी रक्षक है। जब तक उसका समय नहीं आवेगा, तब तक वह कोई अस्त्र-शस्त्र तुझपर चलने न देगी। वह स्वयं उसे रोकेगी और कहेगी कि तू अभी इसे क्योंकर मार सकता है? यह तो अमुक समय पर मेरे हिस्से में आनेवाला है।

सन् ९६१ हिजरी (सन् १५५४ ईसवी) में जब हुमायूँ ने भारत पर आक्रमण किया, तब अकबर भी उसके साथ था। उस समय उसकी अवस्था १२ बरस ८ महीने की थी। हुमायूँ ने लाहौर पहुँचकर डेरा डाला और अपने सरदारों को आगे बढ़ाया। जालंधर के पास अफगान बुरी तरह परास्त हुए। सिकंदर शाह सूर ने अफगानों और पठानों का ८० हजार लश्कर एकत्र किया और सरहिंद में जमकर मुकाबला करना आरंभ किया। बैरमखाँ सेना को लेकर आगे बढ़ा। शाहजादा अकबर सेनापति बनाया गया। मोरचे बाँधकर लड़ाई होने

था, और जिसने कामरान के अत्याचारों का बहुत कुछ वर्णन किया है, इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया है। जौहर ने हुमायूँ का जो वृत्तांत लिखा है, उसमें केवल यही लिखा है कि कामरान ने हुमायूँ के पास यह धमकी भेजी थी कि यदि किले पर गोलेबारी बंद नहीं की जायगी, तो मैं अकबर को किले की दीवार पर बैठा दूँगा। इससे डरकर हुमायूँ ने गोलाबारी बंद कर दी थी।

लगी। इसी बीच में हुमायूँ भी लाहौर से आ पहुँचा। इस युद्ध में अकबर ने अपनी वीरता और साहस का बहुत अच्छा परिचय दिया और अंत में यह युद्ध उसी के नाम पर जीता गया। बैरमखाँ ने इस युद्ध की स्मृति में वहाँ "कल्ला मनार"[१] बनवाया और उस स्थान का नाम सर मंजिल रखा। जेता बादशाह और विजयी शाहजादा दोनों विजय-पताका फहराते हुए दिल्ली जा पहुँचे। आप वहाँ बैठ गए और सरदारों को आस पास के प्रदेशों पर अधिकार करने के लिये भेजा। सिकंदर सूर मानकोट के किले को सुरक्षित समझकर पहाड़ों में छिप गया था और सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। हुमायूँ ने शाह अब्दुलमुआली को पंजाब का सूबा दिया और कुछ अनुभवी तथा वीर सरदारों को सेनाएँ देकर उसके साथ किया। जब वे लोग पहुँचे, तब सिकंदर उन लोगों का सामना न कर सका और पहाड़ों में घुस गया। शाह अब्दुलमुआली लाहौर पहुँचे, क्योंकि बहुत दिनों से वहीं राजधानी थी। वहाँ पहुँचकर वह बादशाही की शान दिखलाने लगे। जो अमीर सहायता के लिये आए थे, या जो पहले से पंजाब में थे, उनके पद और इलाके स्वयं बादशाह के दिए हुए थे। पर शाह अब्दुलमुआली के मस्तिष्क में बादशाही की हवा भरी हुई थी। उनकी जागीरों को तोड़ा फोड़ा और उनके परगनों पर अधिकार कर लिया; और खजानों में भी हाथ डाला। यह शिकायतें दरबार में पहुँच ही रही थीं कि उधर सिकंदर ने भी जोर मारना शुरू किया। उस समय हुमायूँ को प्रबंध करना पड़ा; इसलिये पंजाब का सूबा अकबर के नाम कर दिया और बैरमखाँ को उसका शिक्षक बनाकर उधर भेज दिया।

१—प्राचीन काल में प्रथा थी कि जब विजय होती थी, तब किसी ऊँचे स्थान पर एक बड़ा सा गड्ढा खोदकर उसमें शत्रुओं के कटे हुए सिर भरते थे और उस पर एक ऊँचा मीनार बनाते थे। यह विजय का स्मृति-चिह्न होता था और इसी को "कल्ला मुनार" कहते थे।

जब अकबर पहुँचा, तब शाह अब्बुलमुआली ने व्यास नदी के किनारे सुलतानपुर[1] तक पहुँचकर उसका स्वागत किया। अकबर ने भी बाप की आँख का लिहाज करके बैठने की आज्ञा दी। पर जब शाह अपने डेरे पर जाने लगे, तब लोगों से बहुत कुछ शिकायतें करते हुए गए; और वहाँ जाकर अकबर को कहला भेजा कि बादशाह मुझ पर जो कृपा रखते हैं, वह सब पर विदित ही है। आपको भी स्मरण होगा कि जूए शाही[2] के शिकार में मुझे अपने साथ भोजन पर बैठाया था और आपको अलग भोजन भेजा था। और भी कई बार ऐसा हुआ है। फिर क्या कारण है कि आपने मेरे बैठने के लिये अलग तकिया रखवाया और भोजन की भी अलग व्यवस्था की? उस समय अकबर की अवस्था बारह तेरह वर्ष की थी। पर फिर भी उससे रहा न गया। उसने कहा कि आश्चर्य है कि मीर को अभी तक व्यवहार का ज्ञान नहीं है। साम्राज्य के नियम कुछ और हैं, कृपा और अनुग्रह के नियम कुछ और हैं। (शाह का हाल परिशिष्ट में देखो)

खानखानाँ बैरमखाँ ने अकबर को साथ लिया और लश्कर को पहाड़ पर चढ़ा दिया। सिकंदर ने जब यह विपत्ति आती देखी, तब वह किला बंद करके बैठ गया। युद्ध चल रहा था, इतने में वर्षा आ

१—आजकल इसे सुलतानपुर ढेरिया कहते हैं। यहाँ अब तक बड़ी बड़ी इमारतों के खंडहर कोसों तक पड़े हैं। पुराने ढंग की छींटें यहाँ अब तक छपती हैं। फरिश्ता ने इसके वैभव का अच्छा वर्णन किया है। किसी समय यह दौलतखाँ लोधी की राजधानी थी।

२—यह स्थान पेशावर के रास्ते में है और अब जलालाबाद कहलाता है। हुमायूँ ने अकबर की बाल्यावस्था में ही यह प्रांत उसके नाम कर दिया था। कहते हैं कि उसी वर्ष से यहाँ की पैदावार बढ़ने लगी। जब अकबर बादशाह हुआ, तब उसने यहाँ की आबादी बढ़ाकर इसका नाम जलालाबाद रखा। प्राचीन पुस्तकों में इस प्रांत का नाम नंगनिहार मिलता है।

गई। पहाड़ में यह ऋतु बहुत कष्ट देती है। अकबर पीछे हटकर होशियारपुर के मैदानों में उतर आया और इधर उधर शिकार से जी बहलाने लगा।

हुमायूँ दिल्ली में बैठा हुआ आराम से साम्राज्य का प्रबंध कर रहा था। एक दिन अचानक पुस्तकालय के कोठे पर से गिर पड़ा। जाननेवाले जान गए कि अब अधिक विलंब नहीं है। मृतप्राय को उठाकर महल में ले गए। उसी समय अकबर के पास निवेदनपत्र गया; और यहाँ लोगों पर प्रकट किया गया कि चोट बहुत आई है, दुर्बलता बहुत है, इसलिये बाहर नहीं निकलते। कुछ चुने हुए मुसाहब अंदर जाते थे। और कोई सलाम करने के लिये भी न जा सकता था। बाहर औषधालय से कभी औषध जाता था, कभी रसोई-घर से मुर्ग का शोरबा। दम पर दम समाचार आता था कि अब तबीयत अच्छी है, इस समय दुर्बलता कुछ अधिक है, आदि आदि। और हुमायूँ अंदर ही अंदर स्वर्ग सिधार गए!

दरबार में शकेबी नामक एक कवि था जो आकृति आदि में हुमायूँ से बहुत मिलता जुलता था। कई बार उसी को बादशाह के कपड़े पहनाकर महल के कोठे पर से दरबारवालों को दिखला दिया गया और कह दिया गया कि अभी हुजूर में बाहर आने की ताकत नहीं है; दीवाने-आम के मैदान से ही लोग सलाम करके चले जायँ। जब अकबर सिंहासन पर बैठ गया और चारों ओर आज्ञापत्र भेज दिए गए, तब हुमायूँ के मरने का समाचार सब पर प्रकट किया गया। कारण यही था कि उन दिनों विद्रोह और अराजकता फैल जाना एक बहुत ही साधारण सी बात थी। विशेषतः ऐसे अवसर पर जब कि अभी साम्राज्य की अच्छी तरह स्थापना भी नहीं हुई थी और भारतवर्ष अफगानों की अधिकता से अफगानिस्तान हो रहा था।

इधर जिस समय हरकारे ने आकर समाचार दिया, उस समय अकबर के डेरे बुढ़ाना नामक स्थान में थे। उसने आगे बढ़ना

उचित न समझा ; कलानौर को, जो आजकल गुरदासपुर के जिले में है, लौट पड़ा। साथ ही नजर शेख चोली हुमायूँ का पत्र लेकर पहुँचा जिसका आशय इस प्रकार है—

"७ रबीउल अव्वल को इस मसजिद के कोठे से, जो दौलतखाने के पास है, उतरते थे। सीढ़ियों में अजान का शब्द कान में आया। आदर के विचार से सीढ़ी में बैठ गए। जब अजान देनेवाले ने अजान पूरी की, तब उठे कि उतरें। संयोग से छड़ी का सिरा अंगे के दामन में अटका। ऐसा बेतरह पाँव पड़ा कि नीचे गिर पड़े। पत्थर की सीढ़ियाँ थीं। कान के नीचे सीढ़ी के कोने की टक्कर लगी। लहू की कुछ बूँदें टपकीं। थोड़ी देर बेहोशी रही। होश ठिकाने हुए, तो हम दौलतखाने में गए। ईश्वर को धन्यवाद है कि सब कुशल है। मन में किसी प्रकार की आशंका न करना। इति।"

साथ ही समाचार पहुँचा कि १५ तारीख (२४ जनवरी १५५६) को हुमायूँ का स्वर्गवास हो गया।

बैरमखाँ खानखानाँ ने अमीरों को एकत्र करके जलसा किया। सब लोगों की संमति से शुक्रवार २ रबीउस्सानी सन् ९६३ हिजरी को दोपहर की नमाज के बाद अकबर के सिर पर तैमूरी ताज रखा गया। उस समय अकबर की अवस्था सौर गणना से तेरह बरस नौ महीने की और चांद्र गणना से चौदह बरस कई महीने की थी। चंगेजी और तैमूरी राजनियमों के अनुसार राज्यारोहण की सारी रीतियाँ बरती गईं। वसंत ने पुष्प-वर्षा की, आकाश ने तारे उतारे, प्रताप ने सिर पर छाया की, अमीरों के मनसब बढ़े, लोगों को खिलअतें, इनाम और जागीरें मिलीं, और आज्ञापत्र निकले। अकबर अपने पिता के आज्ञानुसार बैरमखाँ खानखानाँ का बहुत आदर किया करता था। और सच तो यह है कि कठिन अवसरों पर, और विशेषतः ईरान की यात्रा में, उसने अपनी जान पर खेलकर जो बड़ी बड़ी सेवाएँ की थीं, वे ही सेवाएँ उसकी सिफारिश करती थीं। वह शिक्षक और

सेनापति तो था ही, अब वकील-मुतलक भी बनाया गया; अर्थात् राज्य के सब अधिकार भी उसी को दे दिए गए।

हुमायूँ ने पहली बार दस वर्ष और दूसरी बार दस महीने राज्य किया था। जब अचानक उसका देहांत हो गया और अकबर राज्याधिकारी हुआ, तब शाह अब्बुलमुआली की नीयत बिगड़ी। खानखानाँ की सेवा में हर दम तीस हजार वीर रहा करते थे। उसके लिये शाह को पकड़ लेना कौन बड़ी बात थी। यदि वह जरा भी इशारा करता, तो लोग खेमे में घुसकर उसे बाँध लाते। पर हाँ, तलवारें जरूर चलतीं, खून जरूर बहता; और यहाँ अभी मामला नाजुक था। सेना में हलचल मच जाती। ईश्वर जाने, पास और दूर क्या क्या हवाइयाँ उड़तीं, क्या क्या अफवाहें फैलतीं। जो चूहे चुपचाप बिलों में जाकर घुसे हुए थे, वे फिर शेर बनकर निकल आते। इसलिये सोचा और बहुत ठीक सोचा कि किसी समय तरकीब से इसे भी ले लेंगे। अभी व्यर्थ रक्तपात करने से क्या लाभ।

जब राज्यारोहण का दरबार हुआ, तब शाह अब्बुलमुआली उसमें संमलित नहीं हुए। पहले से ही उनकी ओर से खटका था। साथ ही यह भी पता लगा कि वह अपने खेमे में बैठे हुए तरह तरह की बातें करते हैं और अकबर को उत्तराधिकारी ही नहीं मानते। पास बैठे हुए कुछ खुशामदी उन्हें और भी आकाश पर चढ़ा रहे हैं। बैरमखाँ ने अमीरों से सलाह की और तीसरे दिन दरबार से कहला भेजा कि राज्य-संबंधी कुछ कठिन समस्याएँ उपस्थित हैं। सब अमीर हाजिर हैं। आपके बिना विचार रुका हुआ है। आपको थोड़ी देर के लिये आना उचित है। फिर हुजूर से आज्ञा लेकर लाहौर चले जाइएगा।

लेकिन शाह तो अभिमान के मद में चूर थे; और ईश्वर जाने क्या क्या सोच रहे थे। कहला भेजा कि साहब, मैं अभी स्वर्गीय सम्राट् के सोग में हूँ। मुझे अभी इन बातों का होश नहीं। मैंने अभी सोग भी नहीं उतारा। और मान लीजिए कि यदि मैं आया भी, तो नए बादशाह

मेरा किस तरह आदर-स्वागत करेंगे; बैठने के लिये स्थान कहाँ निश्चित हुआ है; अमीर लोग मेरे साथ कैसा व्यवहार करेंगे; आदि आदि लंबी चौड़ी बातें और हीले-हवाले कहला भेजे। पर यहाँ तो यही उद्देश्य था कि एक बार वे दरबार तक आवें; इसलिये जो जो उन्होंने कहलाया, वह सब बिना उज्र मंजूर हो गया। वह आए और साम्राज्य-संबंधी कुछ विषयों में वार्तालाप हुआ।

इस बीच में भोजन परोसा गया। शाह साहब ने हाथ धोने के लिये सलाबची पर हाथ बढ़ाए। तोपखाने का अफसर तोलकखाँ कौजीन उन दिनों खूब मुसंड बना हुआ था। बेखबर पीछे से आया और शाह की मुश्कें कस लीं। शाह तड़पकर अपनी तलवार की ओर फिरे। जिस सिपाही के पास तलवार रहती थी, उसे पहले से ही खिसका दिया गया था। इस प्रकार शाह कैद हो गए। बैरमखाँ का विचार उन्हें मार डालने का था। पर अकबर की जो पहली दया प्रकट हुई, वह यही थी कि उसने कहा कि जान लेने की आवश्यकता नहीं; कैद कर दो। उसे पहलवान गुलगज कोतवाल के सपुर्द कर दिया। पर शाह ने भी बड़ी करामात दिखाई। सब की आँखों में धूल डाली और कैद में से भाग गए। बेचारा पहलवान इज्जत का मारा विष खाकर मर गया।

अकबर ने राज्यारोहण के पहले ही वर्ष समस्त व्यापारी पदार्थों पर से महसूल उठा दिया। उसने कई वर्ष तक राज्य का काम अपने हाथ में नहीं लिया था; अतः इस आज्ञा का पूरा पूरा पालन नहीं हुआ। पर उसकी नीयत ने अपना प्रभाव अवश्य दिखाया। जब वह सब काम आप करने लगा, तब इस आज्ञा के अनुसार भी काम होने लगा। उस समय लोगों ने समझाया कि यह भारतवर्ष है। इसकी इस मद की आय एक बड़े देश का व्यय है। पर उस उदार ने एक न सुनी और कहा कि जब सर्वसाधारण के जेब काटकर तोड़े भरे, तब खजाने पर भी लानत है।

अकबर का लश्कर सिकंदर को दबाए हुए पहाड़ों में लिए जाता

था। वर्षा ऋतु आ ही गई थी। उसकी सेनाएँ भी बादलों के दगले और तरह तरह की वर्दियाँ पहनकर हाजिरी देने के लिये आईं। इन्होंने शत्रु को पत्थरों के हाथ में छोड़ दिया और आप जालंधर में आकर छावनी डाली। वर्षा का आनंद ले रहे थे और शत्रु का मार्ग रोके हुए थे कि सिर न निकालने पावे। अकबर शिकार भी खेलता था; नेजाबाजी, चौगानबाजी, तीरअंदाजी करता था; हाथी लड़ाता था। उधर खानखानाँ बैरमखाँ साम्राज्य के प्रबंध में लगे हुए थे। इतने में अचानक समाचार मिला कि हेमूँ बक्काल ने आगरा लेकर दिल्ली मार ली; और वहाँ का हाकिम तरदीबेग भागा चला आता है।

हेमूँ के वंश और उन्नति का हाल परिशिष्ट में दिया गया है। यहाँ इतना समझ लो कि अफगानी प्रताप की आँधियों में उसने बहुत अधिक उन्नति कर ली थी। जो सरदार सम्राट् होने का दावा करते थे, वे आपस में कटकर मर गए और बनी बनाई सेना तथा राजकोष हेमूँ के हाथ आ गए। अब वह बड़े बड़े बाँधनू बाँधने लग गया था। इसी बीच में अचानक हुमायूँ का देहांत हो गया। हेमूँ के मस्तिष्क में आशा ने जो अंडे-बच्चे दिए थे, अब उन्होंने साम्राज्य के पर और बाल निकाले। उसने समझा कि चौदह बरस का बच्चा सिंहासन पर है, और वह भी सिकंदर सूर के साथ पहाड़ों में उलझा हुआ है। साहसी बनिए ने मन ही मन अपनी परिस्थिति का विचार किया। उसे चारों ओर असंख्य अफगान दिखाई दिए। कई बादशाहों की कमाई, राजकोष और साम्राज्य सब हाथ के नीचे मालूम हुए। अनुभव ने कान में कहा कि अब तक जिधर हाथ डाला है, उधर पूरा ही पड़ा है। यहाँ बाबर के दिन और हुमायूँ के रात रहा! इस लड़के की क्या सामर्थ्य है! जिस लश्कर को वह ऐसे सुअवसर की आशा पर तैयार कर रहा था, अपनी योग्यता के अनुसार उसका क्रम ठीक करके चल पड़ा। आगरे में अकबर की ओर से सिकंदरखाँ हाकिम था। शत्रु के आगमन का

समाचार सुनते ही उसके होश उड़ गए। आगरे जैसा स्थान! अभागे सिकंदर को देखो कि विना लड़े भिड़े किला खाली करके भाग गया! अब हेमूँ कब थमता था। दबाए चला आया। मार्ग में एक स्थान पर सिकंदर उलटकर अड़ा भी, पर वहाँ भी कई हजार सिपाहियों की जानें गँवाकर, उनको कैद कराके और नदी में डुबाकर फिर भाग निकला। हेमूँ का साहस और भी बढ़ गया और वह आँधी की तरह दिल्ली की ओर बढ़ा। उसके साथ बड़े बड़े जत्थोंवाले अफगान, ५० हजार वीर और अनुभवी पठान, राजपूत और मेवाती आदि, एक हजार हाथी, किले तोड़नेवाली ५१ तोपें, पाँच सौ घुड़नाल और शुतरनाल जंबूरक साथ थे। इस नदी का प्रवाह बढ़ा, और जहाँ जहाँ चगताई हाकिम बैठे थे, उन सब को रौंदता हुआ दिल्ली पर आया। उस समय वहाँ तरदीबेग हाकिम था। हेमूँ यह भी जानता था कि तरदीबेग में न तो समझ है और न साहस।

तरदीबेग को जब यह समाचार मिला, तब उसने अकबर की सेवा में एक निवेदनपत्र लिखा। आस पास जो सरदार थे, उनको भी पत्र भेजे कि शीघ्र आकर युद्ध में संमिलित हों। इसके सिवा उसने और कोई व्यवस्था नहीं की। जब शत्रु की विपुल सेना और युद्ध-सामग्री की खबरें धूम-धाम से उड़ीं, तब परामर्श करने के लिये एक सभा की। कुछ लोगों ने संमति दी कि किला बंद करके बैठ रहो और शाही सेना की प्रतीक्षा करो। इस बीच में जब अवसर पाओ, तब निकलकर छापे डालो; और आक्रमण भी करते रहो। कुछ लोगों की संमति हुई कि इस समय पीछे हट चलो और शाही सेना के साथ आकर सामना करो। कुछ लोगों ने कहा कि अलीकुली खाँ भी संभल से आ रहा है। उसकी प्रतीक्षा करो, क्योंकि वह भी बड़ा भारी सेनापति है। देखें, वह क्या कहता है। इतने में शत्रु सिर पर आ गया और अब इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न रह गया कि ये निकलें और लड़ मरें।

तरदीबेग सेनाएँ लेकर बढ़े। तुगलकाबाद[1] में युद्ध-स्थल निश्चित हुआ। इसमें संदेह नहीं कि अकबर का प्रताप यहाँ भी काम कर गया। पर चाहे तरदीबेग के निरुत्साह ने और चाहे उसकी मृत्यु ने मारा हुआ मैदान हाथ से खो दिया। खानजमाँ बिजली के घोड़े पर सवार आया था। पर वह मेरठ तक ही पहुँचा था कि इधर जो कुछ होना था, वह हो गया। इस युद्ध का तमाशा भी देखने ही योग्य है।

दोनों सेनाएँ मैदान में आमने सामने खड़ी हुईं। युद्ध के नियमों के अनुसार शाही सरदार आगा, पीछा, दायाँ, बायाँ सँभालकर खड़े हुए। तरदीबेग ठीक मध्य में रहे। मुल्ला पीरमुहम्मद, जो शाही लश्कर से आवश्यक आज्ञाएँ लेकर आए थे, बगल में जम गए। उधर हेमूँ भी लड़ाई का अभ्यस्त हो गया था और पुराने पुराने अनुभवी अफगान उसके साथ थे। उसने भी अपने चारों ओर सेना का किला बाँधा और युद्ध के लिये तैयार हुआ।

युद्ध आरंभ हुआ। पहले तोपों के गोलों ने युद्ध छेड़ा। फिर बर्छियों की जबानें खुलीं। थोड़ी ही देर में शाही लश्कर का हरावल और दाहिना पार्श्व आगे बढ़ा और इस जोर से टक्कर मारी कि सामने के शत्रुओं को उलटकर फेंक दिया। वे गुड़गाँव की ओर भागे और ये उनको रेलते ढकेलते उनके पीछे हो लिए। हेमूँ अपने भक्तों की सेना और तीन सौ हाथियों का घेरा लिए खड़ा था और इन्हीं का उसे बड़ा घमंड था। वह देख रहा था कि अब तुर्क क्या करते हैं। उधर तरदीबेग भी सोच रहे थे कि आधा मैदान तो मार लिया है। अब आगे क्या करना चाहिए, इसी विचार में कई घंटे बीत गए; और जो सेना विजयी हुई थी, वह मारामार करती हुई होडलपलवल तक जा पहुँची। तरदीबेग सोचते ही रह गए; और

१—तुगलकाबाद दिल्ली से सात कोस पर है।

जो कुछ उनको करना चाहिए था, वह हेमूँ ने कर डाला। अर्थात् उसने उन पर आक्रमण कर दिया और पड़े पेंच से किया। जो शाही सेना उसकी सेना को मारती हुई गई थी, उसके आगे पीछे सवार दौड़ा दिए और उनसे कह दिया कि कहते हुए चले जाओ कि अलवर से हाजीखाँ अफगान हेमूँ की सहायता के लिये आ पहुँचा है और उसने तरदीबेग को भगा दिया। पर हाजीखाँ भी इसी मार्ग से लौटा जाता है; क्योंकि वह जानता है कि तुर्क धोखेबाज होते हैं। कहीं ऐसा न हो कि भागकर फिर पीछे लौट पड़ें।

इधर तो हेमूँ ने यह चकमा दिया और उधर मूर्ख तरदीबेग पर आक्रमण किया, जो विजयी होने पर भी चुपचाप खड़ा था। अब भी यदि हेमूँ आक्रमण न करता तो वह मूर्ख था; क्योंकि अब उसे स्पष्ट दिखाई देता था कि शत्रु में साहस का नितांत अभाव है। उसके आगे और एक पार्श्व में बिलकुल साफ मैदान था। अनर्थ यह हुआ कि तरदीबेग के पैर उखड़ गए और इससे भी बढ़कर अनर्थ यह हुआ कि उसके साथियों का साहस छूट गया। विशेषतः मुल्ला पीरमुहम्मद तो शत्रु को आगे बढ़ते देखकर ऐसे भाग निकले कि मानों वे इसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। युद्ध का नियम है कि यदि एक के पैर उखड़े तो सबके उखड़ गए। ईश्वर जाने, इसमें क्या रहस्य था। पर लोग कहते हैं कि खानखानाँ से तरदीबेग की खटकी हुई थी। मुल्ला उन दिनों खानखानाँ के परम मित्र बने हुए थे और उन्होंने इसी उद्देश्य से मुल्ला को इधर भेजा था। यदि सचमुच यही बात हो, तो यह खान-खानाँ के लिये बड़े ही कलंक की बात है, जो उन्होंने अपनी योग्यता ऐसी बातों में खर्च की।

जब शाही सेना के विजयी आक्रमणकारी होडलपलवल से सरदारों के सिर और लूट का माल बाँधे हुए लौटे, तब मार्ग में उन्होंने उलटे सीधे अनेक समाचार सुने। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। जब संध्या को वे अपने स्थान पर पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि जहाँ तरदीबेग का

लश्कर था, वहाँ अब शत्रु की सेना डटी हुई है। उनकी समझ में ही न आया कि यह क्या हुआ। उन्होंने विजय की थी, उलटे पराजय हो गया। चुपचाप दिल्ली के पार्श्व से धीरे धीरे निकलकर पंजाब की ओर चल पड़े।

इधर जब हेमूँ तुगलकाबाद तक पहुँच गया, तब फिर उससे कब रहा जाता था। दूसरे ही दिन उसने दिल्ली में प्रवेश किया। दिल्ली भी विलक्षण स्थान है। ऐसा कौन है जो शासन का तो हौसला रखे और वहाँ पहुँचकर सिंहासन पर बैठने की आकांक्षा न रखे। उसने केवल आनंदोत्सव और राजा महाराज की उपाधि पर ही संतोष न किया, बल्कि अपने नाम के साथ विक्रमादित्य की उपाधि भी लगा ली। और फिर सच है, जब दिल्ली जीती, विक्रमादित्य क्यों न होता।

दिल्ली लेते ही उसका दिल एक से हजार हो गया। तरदीबेग का भगोड़ापन देखकर उसने समझा कि आगे के लिये यह और भी अच्छा शकुन है। सामने खुला मैदान दिखाई दिया। वह जानता था कि खानखानाँ नवयुवक बादशाह को लिए हुए सिकंदर के साथ पहाड़ों में फँसा है; इसलिये उसने दिल्ली में दम भर ठहरना भी अनुचित समझा और बड़े अभिमान के साथ पानीपत पर सेना भेजी।

अकबर जालंधर में छावनी डाले वर्षा ऋतु का आनंद ले रहा था। अचानक समाचार पहुँचा कि हेमूँ बक्काल शाही सरदारों को आगे से हटाता हुआ बढ़ता चला आता है। आगरे में उसके सामने से सिकंदरखाँ उजबक भागा। साथ ही सुना कि उसने तरदीबेग को भगाकर दिल्ली भी ले ली। अभी पिता की मृत्यु हुए देर न हुई थी कि यह भीषण पराजय हुआ। इस पर ऐसे भारी शत्रु का सामना! बेचारा सुस्त हो गया। उधर लश्कर में बराबर समाचार पहुँच रहे थे कि अमुक अमीर चला आता है, अमुक सरदार भागा आता है। साथ ही समाचार मिला कि अलीकुलीखाँ युद्ध-स्थल तक पहुँच भी न सका था। वह जमुना के उस पार ही था कि दिल्ली पर शत्रुओं का अधिकार हो गया।

दो दो राजधानियाँ हाथ से निकल गईं! सेना में खलबली मच गई। शेरशाही युद्ध याद आ गए। अमीरों ने आपस में कहा कि यह बहुत ही बेढब हुआ; इसलिये इस समय यही उचित है कि अभी यहाँ से काबुल चले चलें। अगले वर्ष सामग्री एकत्र करके फिर आवेंगे और शत्रु का नाश कर देंगे।

खानखानाँ ने जब यह रंग देखा, तब एकांत में अकबर से सब बातें कहीं और निवेदन किया कि आप कुछ चिंता न करें। ये बेमुरव्वत जान प्यारी समझकर व्यर्थ हिम्मत हारते हैं। आपके प्रताप से सब ठीक हो जायगा। यह सेवक परामर्श के लिये सभा करके सबको बुलाता है। मेरी पीठ पर आपका केवल प्रतापी हाथ चाहिए। सब अमीर बुलाए गए। उन लोगों ने वही सब बातें कहीं। खानखानाँ ने कहा कि अभी एक ही वर्ष की बात है, स्वर्गीय सम्राट् के साथ हम सब लोग यहाँ आए थे और इस देश को बात की बात में जीत लिया था। उस समय की अपेक्षा इस समय सेना, कोष, सामग्री सभी कुछ अधिक है। हाँ, यदि त्रुटि है तो यह कि स्वर्गीय सम्राट् नहीं हैं। फिर भी ईश्वर को धन्यवाद दो कि यदि वे दिखाई नहीं पड़ते हैं, तो हम लोगों पर उनकी छाया अवश्य है। यह बात ही क्या है, जो हम लोग हिम्मत हारें! क्या इस-लिये कि हमें अपनी अपनी जान प्यारी है? क्या इसलिये कि हमारे सम्राट् अभी नवयुवक हैं? बहुत दुःख की बात है कि जिसके पूर्वजों का हमने और हमारे पूर्वजों ने नमक खाया, उसके लिये ऐसे कठिन अवसर पर हम अपनी जान प्यारी समझें; और जिस देश पर उसके बाप और दादा ने तलवारें चलाकर और हजारों जोखिमें उठाकर अधिकार प्राप्त किया, उसे मुफ्त में शत्रु के सपुर्द करके चले जायँ! जिस समय हमारे पास कुछ सामग्री नहीं थी, उस समय दो पुश्त के दावेदार अफगान तो कुछ कर ही न सके। यह सोलह सौ बरस का मरा हुआ विक्रमादित्य आज हमारा क्या कर लेगा! ईश्वर के लिये हिम्मत न हारो। जरा यह भी सोचो कि यदि इज्जत

और आबरू को यहाँ छोड़ा और जानें लेकर निकल गए, तो यह मुँह किस देश में जाकर दिखावेंगे। सब कहेंगे कि बादशाह तो लड़का था; तुम पुराने सिपाहियों को क्या हुआ था ? यदि तुम लोग मार न सकते थे, तो स्वयं ही मर गए होते।

यह कथन सुनकर सब चुप हो गए। अकबर ने अमीरों की ओर देखकर कहा कि शत्रु सिर पर आ पहुँचा है। काबुल बहुत दूर है। यदि उड़कर भी जाओगे, तो भी न पहुँच सकोगे। और मेरे दिल की बात तो यह है कि अब भारत के साथ सिर लगा हुआ है। चाहे तख्त और चाहे तख्ता, जो हो सो यहीं हो। देखो खान बाबा, स्वर्गीय सम्राट् ने भी सब कामों का अधिकार तुमको ही दिया था। मैं तुमको अपने सिर की और उनकी आत्मा की शपथ देकर कहता हूँ कि जो कुछ उचित समझो, वही करो। शत्रुओं की कुछ परवा न करो। मैं तुमको सब अधिकार देता हूँ।

ये बातें सुनकर भी अमीर चुप रहे। खान बाबा ने अपने भाषण का रंग बदला। बड़े साहस से सब के दिल बढ़ाए और बहुत मीठी तरह से सब ऊँच नीच समझाकर सब को एकमत किया। जो अमीर इधर उधर से अथवा दिल्ली से पराजित होकर आए थे, उन सब के नाम दिलासे देते हुए आज्ञापत्र भेजे और उनको लिखा कि तुम सब लोग थानेसर में आकर ठहरो। हम शाही लश्कर लेकर आते हैं। ईद की नमाज जालंधर में पढ़ी गई और शुभाशीर्वाद लेकर पेशखेमा दिल्ली की ओर चल पड़ा।

प्राचीन काल में बहुत से काम ऐसे होते थे, जिनकी गणना बादशाहों के शौक के अंतर्गत होती थी। उनमें एक चित्रकला भी थी। हुमायूँ को चित्रों से बहुत प्रेम था। उसने अकबर से कहा था कि तुम भी चित्रकला सीखा करो। जब सिकंदर पर विजय प्राप्त की जा चुकी (उस समय तक हेमूँ के विद्रोह की कहीं चर्चा भी न थी) तब अकबर एक दिन चित्रशाला में बैठा हुआ था। चित्रकार उपस्थित थे।

सब लोग चित्रण में लगे हुए थे। अकबर ने एक चित्र बनाया। इसमें एक आदमी का सिर हाथ, पाँव सब अलग अलग कटे हुए पड़े थे। किसी ने पूछा—"हुजूर! यह किसका चित्र है?" उत्तर दिया—"हेमूँ का।"

लेकिन इसे शाहज़ादा-मिज़ाजी कहते हैं कि जब जालंधर से चलने लगे, तब मीर आतिश ने ईद की बधाई में आतिशबाज़ी की सैर कराने का विचार किया। अकबर ने उसमें यह भी फरमाइश की कि हेमूँ की एक मूरत बनाओ और उसे आग देकर रावण की भाँति उड़ाओ। इस आज्ञा का भी पालन हुआ। बात यह है कि जब प्रताप चमकता है, तब वही मुँह से निकलता है, जो होना होता है। बल्कि यह कहना चाहिए कि जो कुछ मुँह से निकलता है, वही होता है।

खानखानाँ की योग्यता और साहस की प्रशंसा नहीं हो सकती। पूर्व की ओर तो यह उपद्रव उठा हुआ था और इधर सिकंदर सूर पहाड़ों में रुका हुआ बैठा था। बुद्धिमान् सेनापति ने उसके लिये भी सेना का प्रबंध किया। काँगड़े का राजा रामचंद्र भी कुछ उपद्रव की तैयारी कर रहा था। उसे ऐसा दबदबा दिखाकर पत्र-व्यवहार किया कि वह भी उनके इच्छानुसार संधिपत्र लिखकर सेवा में उपस्थित हो गया

अब वीर सेनापति बादशाह और बादशाही लश्कर को हवा के घोड़ों पर उड़ाता, बिजली और बादल की कड़क दमक दिखाता दिल्ली की ओर चला। सरहिंद में देखा कि आगे भटके अमीर भी उपस्थित हैं। उनसे मिलकर परामर्श किया और व्यवस्था आरंभ की। पर उस अवसर पर स्वेच्छाचारिता की तलवार ने ऐसी काट दिखाई कि सब बाबरी अमीरों में खलबली मच गई। पर फिर भी कोई चूँ न कर सका। सब लोग थर्राकर अपने अपने काम में लग गए।

बात यह थी कि खानखानाँ ने दिल्ली के हाकिम तरदीबेग को मरवा डाला था। यह ठीक है कि दोनों अमीरों के दिल में वैमनस्य की फाँसें खटक रही थीं। पर इतिहास-लेखक यह भी कहते हैं कि उस

अवसर पर उचित भी वही था, जो अनुभवी सेनापति कर गुजरा। और इसमें संदेह नहीं कि यदि वह हत्या अनुचित होती, तो बाबरी अमीर, जिनमें से हर एक उसकी बराबरी का दावेदार था, इस प्रकार चुप न रह जाते, तुरंत बिगड़ खड़े होते।

नवयुवक बादशाह थानेसर में ठहरा हुआ था। समाचार मिला कि शत्रु का तोपखाना बीस हजार मनचले पठानों के साथ पानीपत पहुँच गया। । खानखानाँ ने बहुत ही धैर्यपूर्वक अपनी सेना के दो भाग किए। एक को लेकर राजसी ठाठ के साथ स्वयं बादशाह के साथ रहा और दूसरे भाग में कुछ वीर और अनुभवी अमीर तथा उनकी सेनाएँ रखीं और अलीकुली खाँ शैबानी को उनका सेनापति बनाकर हरावल की भाँति उसे आगे भेज दिया; और स्वयं अपनी सेना भी उसके साथ कर दी। उस वीर सेनापति ने बिजली और हवा तक को पीछे छोड़ा और करनाल जा पहुँचा; और पहुँचते ही शत्रु से हाथों हाथ तोपखाना छीन लिया।

जब हेमूँ ने सुना कि तोपखाना इस प्रकार अप्रतिष्ठापूर्वक हाथ से निकल गया, तब उसका दिमाग रंजक की तरह उड़ गया। दिल्ली से धूआँधार होकर उठा और बड़ी बेपरवाही से पानीपत के मैदान में आया। उसका जितना सैनिक बल था, वह सब लाकर मैदान में खड़ा कर दिया। पर अलीकुली खाँ ने कुछ परवा नहीं की। यहाँ तक कि खानखानाँ से भी सहायता न माँगी। जो सेना उसके पास थी, उसी को साथ लेकर शत्रु से भिड़ गया। पानीपत के मैदान में युद्ध हुआ; और ऐसा युद्ध हुआ जो न जाने कब तक पुस्तकों और लोगों की स्मृति में रहेगा। जिस दिन यह युद्ध हुआ, उस दिन अकबर के लश्कर में किसी को युद्ध का ध्यान भी नहीं था। वे लोग निश्चिंत होकर पिछली रात के समय करनाल से चले थे और कई कोस चलकर कुछ दिन चढ़े हँसते खेलते उतर पड़े थे। युद्ध-क्षेत्र वहाँ से पाँच कोस था। अभी मुँह पर से रास्ते की पड़ी हुई गर्द भी न पोंछी थी कि इतने में तीर की

तरह एक सवार आ पहुँचा और समाचार लाया कि शत्रु से सामना हो गया। उसकी सेना तीस हजार है और अकबरी सेवक केवल दस हजार हैं। खानजमाँ अलीकुलीखाँ ने साहस करके युद्ध छेड़ दिया है, पर युद्ध का रंग बेढंग है।

खानखानाँ ने फिर सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। अकबर स्वयं हथियार सँभालने और सजने लगा। उसकी आकृति से प्रसन्नता और युद्ध-प्रेम प्रकट हो रहा था। चिंता का कहीं नाम भी न था। वह मुसाहबों के साथ हँसता हुआ सवार हुआ। सब अमीर अपनी अपनी सेनाएँ लिए खड़े थे और खानखानाँ घोड़ा मारे हर एक की सेना का निरीक्षण और सबको उत्साहित करता था। संकेत हुआ और नगाड़े पर चोट पड़ी। अकबर ने एक एड़ लगाई और सेना-रूपी नद बहाव में आया। थोड़ी ही दूर चलने पर सामने से एक आदमी ने आकर समाचार दिया कि युद्ध में विजय हो गई। पर किसी को विश्वास नहीं हुआ। अभी युद्ध-क्षेत्र का अंधकार दिखाई भी नहीं दिया था कि विजय का प्रकाश दिखाई देने लगा। जो खबरदार (हलकारा) खबर लेकर आता था, वही "मुबारक, मुबारक" कहकर जमीन पर लोट पड़ता था। अब भला कौन थम सकता था! बात की बात में सब लोग घोड़े उड़ाकर पहुँच गए। इतने में घायल हेमूँ बहुत दुर्दशा के साथ सेवा में उपस्थित किया गया। वह इस प्रकार चुपचाप सिर झुकाए खड़ा था कि अकबर को उस पर दया आ गई। कुछ पूछा, पर उसने उत्तर तक न दिया। कौन कह सकता था कि वह चकित था, अथवा लज्जित, अथवा उस पर डर छा गया था, इसलिये उससे बोला न जाता था। शेख मुबारक कंबोह, जो बराबर के बैठनेवाले और दरबार के प्रधान थे, बोले—"पहला जहाद है। हुजूर अपने मुबारक हाथ से तलवार मारें जिसमें जहादेअकबर हो।" नवयुवक बादशाह को शाबाश है कि तरस खाकर कहा—"यह तो आप मरता है, इसे क्या मारूँ!" फिर कहा—"मैंने तो इसे उसी दिन मार डाला था जिस दिन

चिह्न बनाया था"। बस युद्ध-क्षेत्र में एक बहुत बड़ा "कल्ला मनार" बनवा दिया और दिल्ली की ओर चल पड़ा।

हेमूँ की स्त्री खजाने के हाथी लेकर भागी। अकबरी लश्कर से हुसेनखाँ और पीर मुहम्मदखाँ सेना लेकर पीछे दौड़े। वह बेचारी बुढ़िया कहाँ तक भागती। आगरे के इलाके में बजवाड़े के जंगल-पहाड़ों में कवादा गाँव में जा पकड़ा। उसके पास जो धन था, उसमें से बहुत सा तो मार्ग के गँवारों के हिस्से पड़ा था, शेष विजयी वीरों के हाथ आया। वह भी इतना था कि ढालों में भर भरकर बँटा! जिस रास्ते से रानी गई थी, उस रास्ते में अशर्फियाँ और सोने की ईंटें गिरती जाती थीं, जो रास्ते में यात्रियों को वर्षों तक मिला करती थीं। ईश्वर की महिमा है! यह वही खजाने थे जो शेर शाह, सलीम शाह, अदली आदि ने वर्षों में एकत्र किए थे और जिनके लिये ईश्वर जाने किन किन कलेजों में हाथ घँघोले थे। ऐसा धन इसी प्रकार नष्ट हुआ करता है। हवा के साथ आई हुई चीज हवा के साथ ही उड़ जाती है।

बैरमखाँ के अधिकार का अंत और अकबर का अपने हाथ में अधिकार लेना

प्रायः चार वर्ष तक अकबर का यही हाल था कि वह शतरंज के बादशाह की भाँति मसनद पर बैठा रहता था और खानखानाँ जो चाल चाहता था, वही चाल चलता था। अकबर को किसी बात की कोई परवा न थी। वह नेजाबाजी और चौगानबाजी किया करता था, बाज उड़ाता था, हाथी लड़ाता था। लोगों को जागीरें या पुरस्कार आदि देना, उनको किसी पद पर नियुक्त करना अथवा वहाँ से हटाना और साम्राज्य का सारा प्रबंध खानखानाँ के हाथ में था। उसके संबंधी और सेवक आदि अच्छी अच्छी और उपजाऊ जागीरें पाते थे। वे सामग्री और वस्त्र आदि से भी बहुत संपन्न दिखाई देते थे। जो

शाही सेवक बाप-दादा के समय से अच्छी अच्छी सेवाएँ करते आते थे, उनकी जागीरें उजड़ी हुई थीं और वे स्वयं दुर्दशाग्रस्त दिखाई देते थे। यहाँ तक कि कभी कभी बादशाह भी अपने शौक पूरे करने के लिये खजाना खाली पाता था, इसलिये तंग होता था। पर पंद्रह सोलह बरस के लड़के की क्या बिसात जो कुछ बोलता। इसके अतिरिक्त बाल्यावस्था से ही खानखानाँ उसका शिक्षक था। इसलिये लोग जब उससे खानखानाँ की शिकायत करते थे, तब वह सुनकर चुप रह जाता था।

खानखानाँ के अधिकार और कार्य कुछ नए तो थे ही नहीं, वे सब हुमायूँ के समय से चले आते थे। पर उस समय वह जो कुछ करता था, वह सब पहले बादशाह से निवेदन करके तब करता था। उसकी बातें बादशाह की आज्ञा का रूप धारण करके निकलती थीं। पर अब वे सब सीधी खानखानाँ की आज्ञाएँ होती थीं। दूसरे यह कि बिलकुल आरंभ में साम्राज्य को नए नए देश जीतने की आवश्यकता थी। पग पग पर कठिनाइयों की नदियाँ और पहाड़ सामने होते थे; और कठिनाइयों को दूर करने का साहस खानखानाँ के अतिरिक्त और किसी में न होता था। पर अब मैदान साफ हो गया था और नदियों का पानी घुटने घुटने दिखाई देता था; इसलिये सभी लोगों का अच्छी अच्छी जागीरें और अच्छी अच्छी सेवाएँ माँगने का मुँह हो गया था। अब लोगों की आँखों में खानखानाँ और उसके संबंधियों का लाभ खटकने लग गया था।

खानखानाँ के विरोधी कई अमीर थे; पर सबसे अधिक विरोध करनेवालों में माहम अतका, उसका पुत्र अदहमखाँ और उसके कई संबंधी थे। क्या दरबार, क्या महल, सब जगह उनका प्रवेश था। उनका बड़ा अधिकार समझा जाता था; और वास्तव में अधिकार था भी। माहम ने माँ के स्थान पर बैठकर अकबर को पाला था; और जब निर्दय चचा ने अपने निरपराध भतीजे को तोप के मुहरे पर रखा

था, तब वही थी जो इसे गोद में लेकर बैठी थी। उसका पुत्र भी हर समय पास रहता था। अंदर वह लगाती-बुझाती रहती थी और बाहर उसका पुत्र तथा उसके साथी आदि थे। और सच तो यह है कि उस स्त्री के साहस ने पुरुषों तक को मात कर दिया था। दरबार के सभी अमीर उसकी हद से ज्यादा इज्जत करते थे। सबका "मादर, मादर" (माँ, माँ) कहते मुँह सूखता था। वह महीनों अंदर ही अंदर जोड़ तोड़ करती रही। उसने पुराने सरदारों और अमीरों का भी अपनी ओर मिला लिया था, जिसका विवरण खानखानाँ के प्रकरण में दिया गया है। इसका झगड़ा भी महीनों तक रहा। इस बीच में और इसके बाद भी दरबार में बैठकर खानखानाँ जो काम किया करता था, अर्थात् राज्य के पेचीले मामले, अमीरों को पद और जागीरें देना, लोगों को नियुक्त अथवा पृथक् करना आदि, सब काम वह अंदर ही अंदर बैठी हुई किया करती थी।

ईश्वर की महिमा देखो, वह अपने मन की सभी बातें मन ही में ले गई। उसने और उसके साथियों ने समझा था कि हम मक्खी को निकालकर फेंक देंगे और घूँट घूँट पीकर दूध का आनंद लेंगे। अर्थात् खानखानाँ को उड़ाकर अकबर की ओट में हम स्वयं भारतवर्ष का राज्य करेंगे। पर वह बात उसे नसीब न हुई। अकबर माँ के पेट से ही ऐसी ऐसी योग्यताओं और गुणों का समूह बनकर निकला था, जो हजारों में से एक बादशाह को भी नसीब न हुए होंगे। उसने थोड़े ही दिनों में सारे साम्राज्य को अँगूठी के नगीने में रख लिया और देखनेवाले देखते ही रह गए। और फिर देखता ही कौन! जो लोग खानखानाँ को नष्ट करने के लिये छुरियाँ तेज किए फिरते थे, वे सब प्रायः एक ही वर्ष में इस प्रकार नष्ट हो गए, मानों मृत्यु ने झाड़ू देकर कूड़ा फेंक दिया हो। खानखानाँ के मामले का फैसला सन् ९६७ हिजरी (सन् १५६० ईसवी) में हुआ था।

कहना यह चाहिए कि सन् ९६८ हिजरी (सन् १५६१ ईसवी) से

ही अकबर बादशाह हुआ; क्योंकि तभी से उसने राज्य के सब अधिकार अपने हाथ में लेकर सब कार-बार सँभाला था। अकबर के लिये वह समय बहुत ही नाजुक था और उसके साथ में कठिनाइयाँ बहुत अधिक थीं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

(१) वह अशिक्षित और अननुभवी नवयुवक था। उसकी अवस्था सत्रह वर्ष से अधिक न थी। उसकी बाल्यावस्था उन चचाओं के पास बीती थी जो उसके पिता के नाम तक के शत्रु थे। जब कुछ सयाना हुआ, तब बाज उड़ाता रहा, कुत्ते दौड़ाता रहा और पढ़ने से उसका मन कोसों भागता रहा।

(२) अभी बाल्यावस्था बीतने भी न पाई थी कि बादशाह हो गया। शिकार खेलता था, शेर मारता था, मस्त हाथियों को लड़ाता था, भीषण जंगली पशुओं को सधाता था। राज्य का सब कार बार खान बाबा करते थे और ये मुफ्त के बादशाह थे।

(३) अभी सारे भारत पर विजय भी न हुई थी कि पूर्व का देश शेरशाही विद्रोहियों से अफगानिस्तान हो रहा था। एक एक सरदार राजा भोज और विक्रमादित्य बना हुआ था। राज्य का पहाड़ उसके सिर पर आ पड़ा और उसने हाथों पर उठा लिया।

(४) बैरमखाँ ऐसा प्रबंधकुशल और रोब-दाबवाला अमीर था कि उसी की योग्यता थी जिसने हुमायूँ का बिगड़ा हुआ काम बनाया और उसे ठीक मार्ग पर लगाया। उसका अचानक दरबार से निकल जाना कोई साधारण बात नहीं थी, विशेषतः ऐसी दशा में जब कि सारा देश विद्रोहियों के कारण बर्रे का छत्ता बना हुआ था।

(५) सब से बड़ी बात यह थी कि अकबर को उन अमीरों पर हुकुम चलाना और उनसे काम लेना पड़ा जिनकी दुष्टता ने हुमायूँ को छोटे भाइयों से चौपट करवा दिया था। वे कमीने और दोरुखे लोग थे। कभी इधर हो जाते थे, कभी उधर। और भी कठिन बात यह थी कि बैरमखाँ को निकालकर प्रत्येक का दिमाग आसमान पर चढ़ गया

था। नवयुवक बादशाह किसी की आँखों में जँचता ही न था। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको स्वतंत्र समझता था। पर धन्य है उसका साहस और हौसला कि उसने किसी कठिनाईको कठिनाई ही न समझा। उदारता के हाथ से एक एक गाँठ खोली; और जो न खुली, उसे वीरता की तलवार से काट डाला। उसकी अच्छी नीयत ने उसका हर एक विचार पूरा किया। विजय सदा उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा किया करती थी। जहाँ जहाँ उसकी सेनाएँ जातीं थीं, विजयी होतीं थीं। प्रायः युद्धों में वह ऐसी कड़क-दमक से आक्रमण करता था कि बड़े बड़े पुराने सैनिक तथा सेनापति चकित रह जाते थे।

अकबर का पहला आक्रमण अदहमखाँ पर

मालवा देश में शेरशाह की ओर से शुजाअतखाँ (उपनाम शुजावलखाँ) शासन करता था। वह बारह बरस और एक महीने तक शासन करके इस संसार से चल बसा। पिता का स्थान बाजीदखाँ (उप० बाज बहादुर) को मिला। वह दो वर्ष और दो महीने तक बहुत ऐश आराम के साथ शिकार करता रहा। इतने में अकबरी प्रताप का बाज दिग्विजय रूपी पवन में उड़ने लगा। बैरमखाँ ने इस आक्रमण में खानजमाँ के भाई बहादुरखाँ को भेजा। उन्हीं दिनों में उसके प्रताप ने रुख बदला। युद्ध समाप्त होने से पहले ही बहादुरखाँ बुलाया गया। बैरमखाँ के झगड़े का निपटारा करके अकबर ने उधर जाने का विचार किया। अदहमखाँ और नासिरुलमुल्क पीरमुहम्मदखाँ के लोहे तेज हो रहे थे। उन्हीं को सेनाएँ देकर भेज दिया। बादशाही सेना विजयी हुई। बाज बहादुर ऐसे उड़ गया, जैसे आँधी का कौवा। उसके घर में पुराना राज्य और असंख्य संपत्ति चली आती थी। दफीने, खजाने, तोशाखाने, जवाहिरखाने आदि सभी अनेक प्रकार के विलक्षण और उत्तम पदार्थों से भरे हुए थे।

कई हजार हाथी थे। अरबी और ईरानी घोड़ों से अस्तबल भरे हुए थे। वह बड़ा भारी ऐयाश था। दिन रात नाच-गाने, आनंद-मंगल और रंग-रलियों में बिताता था। सैंकड़ों कंचनियाँ, कलावंत, गायक, नायक आदि नौकर थे। उसके महल में कई सौ डोमनियाँ और पातुरें थीं। उसका यह सारा वैभव जब हाथ में आया, तब अदहमखाँ मस्त हो गए। एक निवेदनपत्र के साथ कुछ हाथी बादशाह को भेज दिए और आप वहीं बैठ गए। अमीरों को इलाके भी आप ही बाँट दिए। पीर मुहम्मदखाँ ने बहुत समझाया, पर उसकी समझ में कुछ भी न आया।

अदहमखाँ के माथे पर एक पातुर कंचनी ने जो कालिख का टीका लगाया, यदि माँ के दूध से मुँह धोएँगे, तो भी वह न धुलेगा। बाज बहादुर कई पीढ़ियों से शासन करता था। बहुत दिनों से राज्य जमा हुआ था। वह सदा निश्चिंत रहकर आनंद-मंगल करता हुआ जीवन व्यतीत किया करता था। उसका दरबार और महल दिन रात इंद्र का अखाड़ा बना रहता था। उसके पास एक बहुत ही सुंदर वेश्या थी जिसके सौंदर्य की दूर दूर तक धूम मची हुई थी और जिसके पीछे बाज बहादुर पागल रहता था। उसका नाम रूपमती था। वह परम सुंदरी तो थी ही, साथ ही बातचीत और कविता आदि करने तथा गाने-बजाने में भी बहुत निपुण थी। उसके इन गुणों की धूम सुनकर अदहमखाँ भी लट्टू हो गए और उसके पास अपना सँदेसा भेजा। उसने बड़े सोग-बिरोग के साथ उत्तर भेजा—"जाओ, इस उजड़ी हुई को न सताओ। बाज बहादुर गया, सब बातें गईं। अब मुझे इन कामों से विरक्ति हो गई।" इन्होंने फिर किसी को भेजा। उधर उसकी सहेलियों ने समझाया कि बहादुर और सजीला जवान है; सरदार है; अन्ना का बेटा है, तो अकबर का बेटा है। किसी और का तो नहीं है। तुम्हारे सौंदर्य का चंद्रमा चमकता रहे। बाज गया तो गया, अब इसी को अपना चकोर बनाओ। उस वेश्या ने अच्छे अच्छे मरदों

की आँखें देखी थीं। उसकी सूरत जैसी वजअदार थी, तबीयत भी वैसी ही वजअदार थी। उसका दिल न माना। पर वह समझ गई कि इस प्रकार मेरा छुटकारा नहीं होगा। उसने सहेलियों का कहना मान लिया और दो तीन दिन बाद मिलने के लिये कहा। जब वह रात आई, तब संध्या से ही हँसी खुशी बन सँवरकर, फूल पहनकर, इत्र लगाकर पलंग पर गई और पैर फैलाकर लेट रही। ऊपर से दुपट्टा तान लिया। महलवालियों ने जाना की रानी जी सोती हैं। इधर अदहमखाँ घड़ियाँ गिन रहे थे। अभी निश्चित समय आया भी न था कि जा पहुँचे। उसी समय एकांत हो गया। लौंडियाँ आदि यह कहकर बाहर चली आईं कि रानी जी आराम कर रही हैं। यह मारे आनंद के उसे जगाने के लिये पलंग के पास पहुँचे। वहाँ जागे कौन! वह तो जहर खाकर सोई थी और उसने बात के पीछे जान खोई थी।

अकबर के पास भी यह समाचार पहुँचा। उसने समझा कि यह ढंग अच्छे नहीं हैं। कुछ विश्वसनीय सेवकों को साथ लेकर घोड़े उड़ाए। रास्ते में काकरौन का किला मिला। अदहमखाँ सेना लेकर इस किले पर आक्रमण करने के लिये जाना चाहता था। किलेदार उधर की तैयारी में था कि अचानक देखा कि इधर से बिजली आ गिरी। तालियाँ लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। अकबर किले में गया। जो कुछ मिला, खाया पीया और किलेदार को खिलअत देकर उसका पद बढ़ाया।

अकबर ने फिर रकाब में पैर रखा और तेजी से आगे बढ़ा। माहम ने पहले से ही अपने आदमी दौड़ाए थे, पर उनको मार्ग में ही छोड़कर अकबर आगे बढ़ गया। दिन रात मारामार करता गया और प्रातःकाल के समय अदहम के सिर पर जा पहुँचा। उसे कुछ खबर न थी। वह सेना लेकर काकरौन की ओर चला था। उसके कुछ प्रिय मुसाहब हँसते-बोलते आगे जा रहे थे। उन्होंने जो अचानक अकबर को

सामने से आते देखा, तो चट घोड़ों पर से कूदकर सलाम करने लगे। अदहमखाँ को स्वप्न में भी बादशाह के आने की आशा नहीं थी। वह दूर से देखकर बहुत घबराया कि यह कौन चला आ रहा है जिसे देखकर मेरे सब नौकर-चाकर सलाम कर रहे हैं। घोड़े को एड़ लगाकर आप आगे बढ़ा। देखा तो अकबर सामने है। होश जाते रहे। उतरकर रकाब पर सिर रखा और पैर चूमे। बादशाह ठहर गया। अदहम के साथ जो पुराने सरदार और सेवक आ रहे थे, उन सब का सलाम लिया। एक एक का हाल पूछकर सबको प्रसन्न किया। यद्यपि अदहम के घर ही जाकर उतरा था, पर उससे प्रसन्न होकर बातें नहीं कीं। मार्ग की धूल सारे शरीर पर पड़ी थी। तोशाखाने का संदूक साथ था, पर कपड़े नहीं बदले। अदहम कपड़े लेकर हाजिर हुआ, पर उसके कपड़े भी ग्रहण नहीं किए। वह बेचारा हर एक अमीर के आगे रोता झीखता फिरा; स्वयं बादशाह के सामने भी बहुत नकघिसनी की। बारे दिन भर के बाद उसकी बात सुनी गई और उसका अपराध क्षमा किया गया।

जनाने महल के पिछवाड़े जो मकान था, रात भर उसी की छत पर आराम किया। अक्खड़ जवान अदहमखाँ के मन में चोर घुसा हुआ था। उसने समझा कि बादशाह जो यहाँ उतरे हैं, तो कदाचित् मेरी स्त्रियों पर उनकी दृष्टि है। सोचा कि ज्यों ही अवसर मिले, माँ के दूध में नमक घोले और नमकहलाली को आग में डालकर बादशाह को मार डाले। बादशाह का उधर ध्यान भी न था। पर जिसका ईश्वर रक्षक हो, उसे कौन मार सकता है। उस बेचारे का साहस भी न हुआ। दूसरे ही दिन माहम आ पहुँची। अपने लड़के को बहुत कुछ बुरा भला कहा। बादशाह के सामने भी बहुत सी बातें बनाईं। बाज बहादुर के यहाँ से जो जो चीजें जब्त की थीं, सब बादशाह की सेवा में उपस्थित कीं और बिगड़ी बात फिर बना ली।

बादशाह वहाँ चार दिन तक ठहरा रहा और वहाँ की सब व्यवस्था

करके पाँचवें दिन वहाँ से चल पड़ा। नगर से निकलकर बाहर डेरों में ठहरा। बाज बहादुर की स्त्रियों में से कुछ स्त्रियाँ पसंद आई थीं। उनको साथ ले लिया। उनमें से दो पर अदहमखाँ की नीयत बिगड़ी हुई थी। उसकी माँ की दासियाँ शाही महल में भी काम करती थीं। उनके द्वारा उन दोनों स्त्रियों को उड़ा मँगाया। उसने सोचा था कि इस समय सब लोग कूच के झगड़े बखेड़े में लगे हैं। कौन पूछेगा, कौन पीछा करेगा। जब अकबर को समाचार मिला, तब वह सहम गया। मन ही मन बहुत चिढ़ा। उसी समय कूच रोक दिया और चारों ओर आदमी दौड़ाए। वे भी इधर उधर से ढूँढ ढाँढ़कर पकड़ ही लाए। माहम ने भी सुना। समझा कि जब दोनों स्त्रियाँ पकड़कर आ ही गई हैं, तब अवश्य भाँड़ा फूटेगा और बेटे के साथ मेरा भी मुँह काला होगा। इसलिये दोनों निरपराधों को ऊपर मरवा डाला। कटे हुए गले क्या बोलते! अकबर भी यह भेद समझ गया था, पर लहू का घूँट पीकर रह गया और आगरे की ओर चल पड़ा। धन्य है! पहले कोई ऐसा हौसला पैदा कर ले, तब अकबर जैसा बादशाह हो। आगरे पहुँचने के थोड़े ही दिनों बाद अदहम को बुला लिया और पीर मुहम्मद-खाँ को वह इलाका सुपुर्द किया। यह अकबर की पहली चढ़ाई थी। जिस मार्ग को पुराने बादशाह पूरे एक महीने में तै करते थे, उसे उसने एक सप्ताह में तै किया था।

दूसरी चढ़ाई खानजमाँ पर

खानजमाँ अलीकुलीखाँ ने जौनपुर आदि पूर्वी प्रांतों में भारी भारी विजय प्राप्त करके बहुत से खजाने आदि समेटे थे और बादशाह की सेवा में नहीं भेजे थे। अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि शाहमबेग के मामले में उसका अपराध क्षमा किया गया था। (देखो परिशिष्ट) अदहमखाँ से निश्चिंत होकर अकबर ज्यों ही आगरे आया, त्यों ही उसने पूर्व की ओर चलने का विचार किया। बुड्ढे बुड्ढे अमीरों

को साथ लिया। वह जानता था कि खानजमाँ मनचला बहादुर और लज्जाशील है। दरबारवालों ने उसे व्यर्थ अप्रसन्न कर दिया है। संभव है कि बिगड़ बैठे। अतः यही उचित है कि उससे लड़ने झगड़ने की नौबत न आवे। पुराने सेवक बीच में पड़कर बातों से ही काम निकाल लेंगे। इसलिये वह कालपी के रास्ते इलाहाबाद चल पड़ा और इस कड़क दमक से कड़ा मानिकपुर जा पहुँचा कि खानजमाँ और बहादुर खाँ दोनों हाथ जोड़कर पैरों में आ पड़े। वहाँ से भी विजयी और सफल-मनोरथ होकर लौटा। बहकानेवालों ने उसकी ओर से अकबर के बहुत कान भरे थे। पर अकबर का कथन था कि मनुष्य ईश्वर के कारखाने का एक माजून है, जो मस्ती और होशियारी के मेल से बना हुआ है। उसका उपयोग बहुत सोच-समझकर करना चाहिए। वह यह भी कहा करता था कि अमीर लोग हरे भरे वृक्ष हैं, हमारे लगाए हुए हैं; उन्हें काटना नहीं चाहिए, बल्कि हरे भरे रखना और बढ़ाना चाहिए। और यदि कोई विफल-मनोरथ लौट जाय तो यह उसकी अयोग्यता नहीं है, बल्कि हमारी अयोग्यता है। (देखो अकबर नामे में इस संबंध में शेख अब्बुल फ़जल ने क्या लिखा है।)

आसमानी तीर

अकबर के सुविचार और साहस की बातें ऐसी हैं जिनका पूरा पूरा उल्लेख हो ही नहीं सकता। ९७० हिजरी में वह दिल्ली पहुँचा। शिकार से लौटते समय सुलतान निजामउद्दीन औलिया की सेवा में गया। वहाँ से चला; माहम के मदरसे के पास था। इतने में मालूम हुआ कि कंधे में कुछ लगा। देखा तो तीर दो तिहाई निकल गया था। पता लगाया। मालूम हुआ कि किसी ने मदरसे के कोठे पर से चलाया है। अभी तीर निकला भी न था कि लोग अपराधी को पकड़ लाए। देखा कि मिरजा शरफुद्दीन हुसैन का गुलाम फौलाद नामक हब्शी है। उसका मालिक कुछ ही दिन पहले विद्रोह करके

भागा था। जब शाह अब्बुलमुआली से साँठ गाँठ हुई, तब तीन सौ आदमी, जिन्हें अपनी स्वामिभक्ति का भरोसा था, उसके साथ गए थे। आप मक्के का बहाना करके भागा फिरता था। इन सेवकों में से यह अभागा इस काम का बीड़ा उठाकर आया था। लोगों ने फौलाद से पूछना चाहा कि तूने यह काम किसके कहने से किया है। अकबर ने कहा—"कुछ मत पूछो। न जाने यह किन किन लोगों की ओर से मन में संदेह उत्पन्न करे। इसे बात न करने दो और मार डालो।" उस समय उस उदार बादशाह के चेहरे पर कुछ भी घबराहट न दिखाई दी। उसी तरह घोड़े पर सवार चला आया और किले में पहुँच गया। थोड़े दिनों में घाव अच्छा हो गया और उसी सम्राट् सिंहासन पर बैठकर आगरे चला गया।

विलक्षण संयोग

अकबर के कुत्तों में पीले रंग का एक कुत्ता था जो बहुत ही सुंदर था। इसी कारण उसका नाम "महुआ" रखा था। वह आगरे में था। जिस दिन दिल्ली में अकबर को तीर लगा, उसी दिन से उस कुत्ते ने खाना पीना छोड़ दिया था। जब बादशाह वहाँ पहुँचा, तब मीर शिकार ने निवेदन किया। अकबर ने उसी समय उसे अपने पास बुलवाया। वह आते ही पैरों में लोटने लगा और बहुत प्रसन्नता प्रकट करने लगा। अकबर ने अपने सामने उसे रातिब मँगाकर दिया, तब उसने खाया।

अस्तु; इस प्रकार के आक्रमण बाबर, बल्कि तैमूर और चंगेज के खून के जोश थे, जिनका अकबर के साथ ही अंत हो गया। उसके बाद किसी बादशाह के दिमाग में इन बातों की बू भी न रह गई थी। सभी गद्दी पर बैठनेवाले बनिए थे। उनके भाग्य लड़ते थे और अमीर सेनाएँ लेकर फिरा करते थे। इसका क्या कारण समझना चाहिए? भारतवर्ष की मिट्टी ही आदमी को आराम-तलब बना देती है।

यद्यपि यह गरम देश है, तथापि आदमियों को ठंढा कर देता है; और यहाँ का पानी कायर बना देता है। धन की प्रचुरता, सामग्री की अधिकता ठहरी। यहाँ उनकी जो संतान हुई, वह मानों एक नई सृष्टि हुई। उसे यह भी पता न था कि हमारे बाप-दादा कौन थे और उन्होंने ये किले, ये महल, ये तख्त, ये पद कैसे पाए थे। बात यह है कि इस देश के अच्छे घराने के लोग जब अपने आपको यथेष्ठ वैभवसंपन्न पाते हैं, तब वे समझते हैं कि हम ईश्वर के यहाँ से ऐसे ही आए हैं और ऐसे ही रहेंगे। जिस प्रकार हम ये हाथ-पैर और नाक-कान लेकर उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार ये सब पदार्थ भी हमारे साथ ही उत्पन हुए हैं। हाय! बेखबर अभागो! तुम्हें यह खबर ही नहीं कि तुम्हारे पूर्वजों ने पसीने के स्थान में लहू बहाकर इस ढलती फिरती छाँव को अपने अधिकार में किया था। यदि तुम और कुछ नहीं कर सकते हो, तो जो कुछ तुम्हारे अधिकार में है, उसे तो हाथ से न जाने दो।

तीसरी चढ़ाई, गुजरात पर

यों तो अकबर ने बहुत सी चढाइयाँ कीं, पर उन सब में विलक्षण उस समय की चढ़ाई थी जब कि अहमदाबाद (गुजरात) में उसका कोका घिर गया था और वह ऊँटोंवाली सेना लेकर पहुँचा था। ईश्वर जाने, उसने अपने साथियों में रेल का बल भर दिया था, या बिजली की फुरती। उस समय का तमाशा भी देखने ही योग्य हुआ होगा। उसका चित्र शब्दों और भाषा के रंग-रोगन से खींचकर आजाद कैसे दिखाए!

अकबर एक दिन फतहपुर में दरबार कर रहा था और अकबरी नौरत्न से साम्राज्य का पार्श्व सुशोभित था। अचानक परचा लगा कि चगताई शाहज़ादा हुसेन मिरजा मालवे में विद्रोही हो गया। इख्तियार-उलमुल्क दक्खिनी को उसने अपने साथ मिला लिया

है और विद्रोहियों की बड़ी भारी सेना एकत्र की है। दूर दूर तक मुल्क मार लिया है और मिरजा अजीज को इस प्रकार किलेबंद कर लिया है कि न तो वह बाहर निकल सकता है और न कोई बाहर से उसके पास अंदर जा सकता है। मिरजा अजीज ने भी घबराकर इधर अकबर के पास निवेदनपत्र और उधर माँ के पास चिट्ठियाँ भेजीं। इसी चिंता में अकबर महल में गया। वहाँ जीजी[1] ने रोना आरंभ किया कि जैसे हो, मेरे बच्चे को सकुशल मेरे सामने लाओ। बादशाह ने समझाया कि भेर और बुंगे समेत इतना बड़ा लश्कर इतनी जल्दी कैसे जायगा। उसी समय महल से बाहर आया। उधर उसका प्रताप अपना काम करने लगा। कई हजार अनुभवी और मनचले वीर भेज दिए और कह दिया कि जहाँ तक होगा, हम तुम से पहले ही पहुँचेंगे। पर तुम भी बहुत शीघ्रतापूर्वक जाओ। साथ ही रास्ते के हाकिमों को लिख भेजा कि जितनी कोतल सवारियाँ उपस्थित हों, सब तैयार हो जायँ और सब अपनी अपनी चुनी हुई सेनाएँ लेकर रास्ते में हाजिर रहें। आप भी तीन सौ सेवकों को (खाफीखाँ ने चार पाँच सौ लिखा है) जो सब प्रसिद्ध सरदार और दरबार के मनसबदार थे, साथ लेकर साँडनियों पर सवार हो, कोतल घोड़े और घुड़बहलें लगा, न दिन देखा और न रात, जंगल और पहाड़ काटता हुआ चल पड़ा।

शत्रु के तीन सौ सिपाही सरगज से फिरे हुए गुजरात जा रहे थे। अकबर ने राजा शालिवाहन, कादिर कुली, रणजीत आदि सरदारों को, जो बाल बाँधे निशाने उड़ाते थे, आवाज दी कि लेना, जाने न पावे। वे लोग हवा की तरह गए और ऐसे जोरों से आक्रमण किया कि धूल की तरह उड़ा दिया।

इसी बीच में शिकार भी होते जाते थे। एक स्थान पर जलपान के

[1] जिसका दूध पीते हैं, उसे तुर्कों में जीजी कहते हैं।

लिये उतरे। किसी के मुँह से निकला—"वाह, क्या हिरन की डार वृक्षों की छाया में बैठी है।" बादशाह ने कहा—"आओ, शिकार खेलें।" एक काला हिरन सामने आया। उस पर समुंदरटाक नामक चीता छोड़ा और कहा कि यदि इसने यह काला हिरन मार लिया, तो समझो कि हमने भी शत्रु को मार लिया। प्रताप का तमाशा देखो कि चीते ने उस हिरन को मार ही लिया। बस, पल के पल ठहरे और चल पड़े।

इस प्रकार सत्ताइस पड़ाव (खाफीखाँ ने लिया है कि चालीस पड़ाव) जिन्हें पुराने बादशाहों ने महीनों में तै किया था, पार करके नवें दिन गुजरात के सामने नरपति नदी के किनारे जा खड़ा हुआ। जिन अमीरों को पहले भेजा था, वे सब रास्ते में मिलते जाते थे। सलाम करते थे, लज्जित होते थे और साथ चल पड़ते थे। फिर भी उनमें से बहुतेरे निभ न सके, पीछे पीछे दौड़े आते थे।

जब गुजरात सामने आया, तब हाजिरी ली। तीन हजार वीर बादशाही झंडे के नीचे मरने मारने को उपस्थित थे। उस समय किसी ने कहा कि जो सेवक पीछे हैं, वे आया ही चाहते हैं। उनकी भी कुछ प्रतीक्षा होनी चाहिए। किसी ने कहा कि रात को छापा मारना चाहिए। बादशाह ने कहा कि प्रतीक्षा करना कायरता है और छापा मारना चोरी है। सब को हथियार बाँट दिए गए। सेना दाहिने बाएँ, आगे पीछे कर दी गई। खानखानाँ का पुत्र मिरजा अब्दुलरहीम उस समय सोलह वर्ष का था। वह सेनापति की भाँति बीच में रखा गया। आप सौ सवार लेकर अलग रहे कि जब जिधर सहायता की आवश्यकता होगी, तब उधर जा पहुँचेंगे।

बादशाह जिस समय सिर पर खोद रखने लगा, उस समय देखा कि दुबलगा[1] नहीं है। मार्ग में दुबलगा उतारकर राजा दीपचंद को

[1] खोद युद्ध में पहनने की लोहे की टोपी होती है; और उसके आगे धूप या छोटे मोटे आघातों से रक्षा करने के लिये जो छज्जा होता है, उसे "दुबलगा" कहते हैं।

दिया था कि लेते आना। वह रास्ते में कहीं उतरते चढ़ते रखकर भूल गया था। जब उस समय माँगा गया, तब वह घबराया और लज्जित हुआ। अकबर ने कहा—"वाह! क्या अच्छा शकुन हुआ है। इसका अर्थ यह है कि सामना साफ है। चलो, आगे बढ़ो।"

अकबर के खास घोड़ों में सिर से पैर तक बिलकुल सफेद एक बहुत तेज घोड़ा था। अकबर ने उसका नाम नूर बेजार रखा था। जब अकबर उस पर सवार हुआ, तब वह घोड़ा बैठ गया। सब यह समझकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे कि यह शकुन अच्छा नहीं हुआ। मानसिंह के पिता राजा भगवानदास ने आगे बढ़कर कहा—"हुजूर, फतह मुबारक हो।" अकबर ने कहा—"सलामत रहो, कैसे?" उन्होंने कहा—"मैं रास्ते में तीन शकुन बराबर देखता आया हूँ। एक तो यह कि हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जब सेना लड़ने के लिये तैयार हो, तब यदि सवारी के समय सेनापति का घोड़ा बैठ जाय, तो उसी की विजय होगी। दूसरे, हुजूर देखें की हवा का रुख कैसा बदल गया है। बड़ों ने लिख रखा है कि जब ऐसी बात हो, तब समझ लेना चाहिए कि जीत अपनी ही होगी। तीसरे, मार्ग में देखता आया हूँ कि गिद्ध, चीलें, कौवे सब लश्कर के साथ बराबर चले आते हैं। बड़ों ने इसे भी विजय का ही चिह्न बतलाया है।

प्रेम के झगड़े

अकबर जाति का तुर्क और धर्म का मुसलमान था। यहाँ के राजा भारतीय और हिंदू थे। दोनों में मेल और विरोध की बातें तो हजारों थीं, पर उनमें से एक बात लिखता हूँ। जरा पारस्परिक व्यवहार देखो और उनके दिलों के हाल का पता लगाओ। इसी युद्ध में राजा रूपसी का पुत्र राजा जयमल अकबर के साथ था। उसका बक्तर बहुत भारी था। अकबर ने पूछा। उसने कहा कि इस समय यही है। जिरह वहीं रह गई है। बादशाह ने उसी समय वह बक्तर उतरवाया

और अपनी एक जिरह पहनवा दी। वह प्रसन्नतापूर्वक सलाम करके अपने मित्रों में चला गया। इतने में जोधपुरवाले राजा मालदेव के पोते राजा कर्ण को देखा कि उसके पास जिरह-बक्तर कुछ भी नहीं है। बादशाह ने वही बक्तर उसे दे दिया।

जयमल अपने पिता रूपसी के पास गया। उसने पूछा—"बक्तर कहाँ है ?" जयमल ने सारा हाल कह सुनाया। रूपसी का जोधपुरियों के साथ बहुत दिनों का वैर चला आता था। उसने उसी समय बादशाह के पास आदमी भेजकर कहलाया कि हुजूर, मेरा बक्तर मुझे मिल जाय। वह मेरे पूर्वजों के समय से चला आता है। वह बड़ा शुभ है और उससे बहुत से युद्ध जीते गए हैं उस समय बादशाह को स्मरण हुआ कि इन दोनों में वंश-परंपरा से वैर है। कहा कि खैर, हमने इसी लिये अपनी जिरहों में से एक तुम को दे दी है। यह भी विजय की तावीज और प्रताप का गुटका है। इसे अपने पास रखो। रूपसी के दिल ने न माना। उस समय उससे और तो कुछ न हो सका, उसने जिरह बक्तर आदि सब उतारकर फेंक दिए और कहा कि मैं इसी तरह युद्ध में जाऊँगा। उस कठिन अवसर पर अकबर से भी और कुछ न बन आया। उसने कहा कि यदि हमारे सेवक नंगे लड़ेंगे, तो फिर हमसे भी यह नहीं हो सकता कि जिरह बक्तर पहनकर मैदान में लड़ें। हम भी नंगे होकर तलवार और तीर के मुँह पर जायँगे। राजा भगवानदास उसी समय घोड़ा उड़ाकर जयमल के पास गए। उनको बहुत सी उलटी सीधी बातें सुनाईं और समझाया बुझाया। दुनिया का ऊँच नीच दिखाया। राजा भगवानदास वंश के स्तंभ थे। उनका सब लोग आदर करते थे। अतः जयमल ने लज्जित होकर फिर हथियार सजे। राजा भगवानदास ने आकर निवेदन किया कि हुजूर, रूपसी ने भाँग पी ली थी। उसी की लहरों ने यह तरंग दिखाई थी; और कोई बात नहीं थी। अकबर सुनकर हँसने लगा। इस प्रकार इतना बड़ा झगड़ा खाली हँसी में हवा हो गया।

ऐसे ऐसे मंत्रों ने प्रेम का ऐसा जादू किया था, जिसका पूरा प्रभाव प्रत्येक के हृदय पर पड़ा था। वंश की रीति और रवाज, शुभ और अशुभ, बल्कि धर्म और आचार आदि सब एक तरफ रख दिए थे। अब जो कुछ अकबर कहे, वही रीति और रिवाज; जो अकबर कह दे, वही शुभ; और जो कुछ अकबर कह दे, वही धर्म तथा आचार। और इसी से बड़े बड़े काम निकलते थे; क्योंकि यदि धार्मिक तर्कों से उन्हें समझाकर किसी बात पर लाना चाहते, तो सिर कटवाते। राजपूत की जाति, जान रहते कभी अपनी बात से न टलती। और यदि अकबरी नियम का नाम लेते, तो प्राण देना भी अभिमान की बात समझते थे। बस आज्ञा हुई कि बागें उठाओ। खान आजम के पास आसफखाँ को भेजकर कहलाया कि हम आ पहुँचे। तुम अंदर से जोर देकर निकलो। उसपर ऐसा डर छाया हुआ था कि हरकारे भी पहुँचे थे, माँ ने भी पत्र भेजे थे, पर उसे बादशाह के आने का विश्वास ही न होता था। वह यही कहता था कि शत्रु बहुत बलवान् है; मैं कैसे निकलूँ। आस पास के ये अमीर मेरा दिल बढ़ाने और लड़ाने को तरह तरह की बातें बनाते हैं।

अहमदाबाद तीन कोस था। आज्ञा हुई कि कुछ कुरावल आगे बढ़कर इधर उधर बंदूकें छोड़ें। साथ ही अकबरी नगाड़े पर चोट पड़ी और गोरखे की गरज से गुजरात गूँज उठा। उस समय तक भी शत्रु को इस आक्रमण का पता नहीं था। बंदूकों और डंके की आवाज से उसके लश्कर में खलबली मच गई। किसी ने जाना कि दक्खिन से हमारे लिये सहायता आई है। किसी ने कहा, कोई बादशाही सरदार होगा; कहीं आस पास से खान आजम की सहायता के लिये आया होगा। हुसेन मिरजा घबराया। आप घोड़ा मारकर निकला और कुरावली करता हुआ आया कि देखूँ कौन आता है। नदी के किनारे आ खड़ा हुआ। अभी प्रभात का समय था। सुभान कुली तुर्कमान नामक एक बैरमखानी जवान भी पार उतरकर मैदान देखता

फिरता था। हुसेन मिरजा ने उसे पुकारकर पूछा—"बहादुर, यह नदी के उस पार किसका लश्कर है और इसका सरदार कौन है?" उसने कहा—"यह बादशाही लश्कर है और इसका सरदार स्वयं बादशाह है।" पूछा—"कौन बादशाह?" वह बोला "शाहन्शाह अकबर। जल्दी जा और उन अभागों को रास्ता बतला कि वे किसी ओर भाग जाँय और अपनी जान बचावें।" मिरजा ने कहा—"बहादुर, तुम मुझे डराते हो। आज चौदहवाँ दिन है कि मेरे जासूसों ने बादशाह को आगरे में छोड़ा है!" सुभान कुली ठठाकर हँस पड़ा। मिरजा ने पूछा—"यदि बादशाह है, तो वह जंगी हाथियों का घेरा कहाँ है जो कभी बादशाह के पास से अलग नहीं होता? और बादशाही लश्कर कहाँ है?" सरदार ने कहा—"आज नवाँ दिन है, रकाब में पैर रखा है। रास्ते में साँस नहीं लिया। हाथी क्या हाथ में उठा लाते। बड़े बड़े बहादुर शेर साथ हैं। यह क्या हाथियों से कम हैं? किस नींद में सोते हो; उठो, सूरज सिर पर आ गया।"

यह सुनते ही मिरजा नदी के किनारे से लहर की तरह उलटा लौटा। इख्तियार-उल्मुल्क को घेरे पर छोड़ा और आप सात हज़ार सैनिकों को लेकर इस आँधी को रोकने चला। उधर अकबर यही प्रतीक्षा कर रहा था कि खान आजम उधर किले से निकले, तो हम इधर से धावा करें। पर जब वह दरवाजे से सिर भी न निकाल सका, तब अकबर से न रहा गया। उसने नाव की भी प्रतीक्षा नहीं की और ईश्वर पर भरोसा रख कर नदी में घोड़े डाल दिए। प्रताप देखो कि उस समय नदी में घुटने घुटने पानी था। सेना इस फुरती से पार उतर गई कि जासूस समाचार लाए कि शत्रु की सेना अभी कमर ही बाँध रही है!

मदान में जाकर पैर जमाए। अकबर एक ऊँचे स्थान पर खड़ा हुआ युद्धक्षेत्र का तमाशा देख रहा था। इतने में मिरजा कोका के पास से आसफखाँ लौटकर आया और कहने लगा कि उसे अभी तक

हुजूर के आने का समाचार भी नहीं मिला था। मैंने शपथ खा-खाकर कहा है, तब उसे विश्वास हुआ है। अब वह सेना तैयार करके खड़ा हुआ है। इतने में वृक्षों में से शत्रु भी निकल पड़ा। हुसेन मिरजा ने देखा कि बादशाह के साथ बहुत ही थोड़े आदमी हैं; इसलिये वह पंद्रह सौ मुग़लों को लेकर सामने आया; और उसका भाई बाएँ पार्श्व पर गिरा। साथ ही गुजराती और हब्शी सेनाएँ भी दोनों ओर आ पहुँचीं। अब अच्छी तरह युद्ध होने लगा।

अकबर अलग खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था कि क्या होता है। उसने देखा कि हरावल पर जोर पड़ा और रंग बेढंग हो रहा है। राजा भगवानदास पास ही खड़े थे। उनसे कहा कि अपनी सेना थोड़ी है और शत्रु की संख्या बहुत अधिक है। पर फिर भी ईश्वर सहायक है। चलो, हम तुम मिलकर जा पड़ें। पंजे की अपेक्षा मुट्ठी का आघात अधिक होता है। उस सेना की ओर चलो जिसकी लाल झंडियाँ दिखाई देती हैं। हुसेन मिरजा वहीं है। उसे मार लिया, तो फिर मैदान मार लिया। यह कहकर घोड़े को एड़ लगाई। हुसेनखाँ टकरिया ने कहा कि हाँ, अब यही धावे का समय है। बादशाह ने कहा कि अभी पल्ला दूर है; और तुम लोग संख्या में थोड़े हो। जितना पास पहुँचकर धावा करोगे, उतना ही कम थके हुए रहोगे और बलपूर्वक आक्रमण भी करोगे। मिरजा अपने लश्कर से कटकर एक दस्ते के साथ इधर आया। वह जोर में भरा आता था और अकबर बहुत ही निश्चिंत भाव से अपनी सेना को लिए जाता था और गिन गिनकर पैर रखता था कि पास जा पहुँचे। राजा हापा चारण ने कहा—"हाँ, यही धावे का समय है।" साथ ही अकबर की जबान से भी निकला—अल्लाह अकबर!"

अकबर उन दिनों ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती का बहुत बड़ा भक्त था और हर दम सुमिरनी हाथ में लिए ईश्वर का भजन किया करता था; और साथ ही मुईनउद्दीन के नाम का भी जप किया करता था। वह और उसके सब साथी मुईन का नाम लेते हुए शत्रु पर जा पड़े।

मिरजा ने जब सुना कि यह सेना स्वयं अकबर लेकर आया है, तब उसके होश उड़ गए। उसकी सेना बिखर गई और वह आप भाग निकला। उसके गाल पर एक घाव भी हो गया था। घोड़ा मारे चला जाता था। इतने में थूहड़ की एक बाढ़ सामने आई। घोड़ा झिझका। उसने चाहा कि उड़ा ले जाय; पर न हो सका और बीच में ही फँस गया। घोड़ा भी हिम्मत करता था और वह भी, पर निकल न सकता था। इतने में अकबर के खास सवारों में से गदाअली तुर्कमान आ पहुँचा। उसने कहा कि आओ, मैं तुमको निकालूँ। वह भी बहुत परेशान हो रहा था। जान हवाले कर दी। गदाअली उसे अपने आगे सवार कर रहा था, इतने में मिरजा कोका के चचा खाँन कलाँ का एक नौकर भी आ पहुँचा। यह लालची बहादुर भी गदाअली के साथ हो गया। सेना फैली हुई थी। विजयी वीर इधर-उधर भगोड़ों को मारते और बाँधते फिरते थे। बादशाह अपने कुछ सरदारों के साथ बीच में खड़ा था। जिसने जो कुछ सेवा की थी, वह निवेदन कर रहा था। बादशाह सुन सुनकर प्रसन्न होता था। इतने में अभागा हुसेन मिरजा मुश्कें बाँधे हुए सामने लाकर खड़ा किया गया। बादशाह के सामने पहुँचकर दोनों में झगड़ा होने लगा। यह कहता था कि मैंने पकड़ा है; वह कहता था कि मैंने। चोज रूपी सेना के सेनापति और हास्य देश के महाराजा राजा बीरबल भी इधर उधर घोड़ा दौड़ाए फिरते थे। उन्होंने कहा—"मिरजा, तुम स्वयं बतला दो कि तुम्हें किसने पकड़ा है।" उसने उत्तर दिया—"मुझे कौन पकड़ सकता था! हुजूर के नमक ने पकड़ा है।" सब के हृदय ने उसके इस कथन का समर्थन किया। अकबर ने आकाश की ओर देखा और सिर झुका लिया। फिर कहा—"मुश्कें खोल दो, हाथ आगे की ओर करके बाँधो।"

मिरजा ने पीने को पानी माँगा। एक आदमी पानी लेने चला। फरहतखाँ चेले ने दौड़कर अभागे मिरजा के सिर पर एक दोहत्थड़ मारकर कहा कि ऐसे नमकहराम को पानी! दयालु बादशाह को दया

आ गई। अपनी छागल से पानी पिलवाया और फरहतखाँ से कहा—"अब इसकी क्या आवश्यकता है!"

नवयुवक बादशाह ने इस युद्ध में बहुत वीरता दिखाई थी और ऐसी वीरता दिखाई थी जो बड़े बड़े पुराने सेनापतियों से भी कहीं कहीं बन पड़ी होगी। इसमें संदेह नहीं कि उसके साथ बड़े बड़े तुर्क और राजपूत छाया की भाँति लगे हुए थे, पर फिर भी उसके साहस की प्रशंसा न करना अन्याय है। वह बिलकुल सफेद घोड़े पर सवार था और साधारण सिपाहियों की तरह तलवारें मारता फिरता था। एक अवसर पर किसी शत्रु ने उसके घोड़े के सिर पर ऐसी तलवार मारी कि वह मुँह के बल गिर पड़ा। अकबर बाएँ हाथ से उसके बाल पकड़कर सँभला और शत्रु को ऐसा बरछा मारा कि वह जिरह को तोड़कर पार हो गया। अकबर चाहता था कि बरछा खींचकर एक बार फिर मारे, पर फल टूटकर घाव में रह गया और वह भाग गया। एक ने आकर अकबर की रान पर तलवार का वार किया। हाथ ओछा पड़ा था, इससे खाली गया और वह कायर घोड़ा भगाकर निकल गया। एक ने आकर भाला मारा। चीता बड़गूजर ने बरछा चलाकर उसे मार डाला।

अकबर चारों ओर लड़ता फिरता था। सुर्ख बदख्शी नामक एक सरदार ने सेना के मध्य में जाकर अकबर के तलवार चलाने और अपने घायल होने का हाल ऐसी घबराहट से सुनाया कि लोगों ने समझा कि बादशाह मारा गया। लश्कर में हलचल मच गई। अकबर को भी खबर लग गई। तुरंत सेना के मध्य में आ गया और सिपाहियों को ललकारकर उनका उत्साह बढ़ाने लगा और कहने लगा कि कदम बढ़ाए चलो, शत्रु के पैर उखड़ गए हैं। एक ही धावे में वारा न्यारा है। उसकी आवाज सुनकर सब की जान में जान आई और साहस बढ़ गया।

सब लोग अपनी अपनी कारगुजारियाँ निवेदन कर रहे थे। आस पास प्रायः दो सौ सिपाही थे। इतने में एक पहाड़ी के

नीचे से कुछ धूल उड़ती हुई दिखाई दी। किसी ने कहा—खानआजम निकला है; किसी ने कहा—कोई और शत्रु आया है। बादशाह की आज्ञा होते ही एक सिपाही दौड़ा और आवाज की तरह जाकर पहाड़ी से लौट आया। उसने कहा कि इख्तियारउल्मुल्क घेरा छोड़कर इधर पलटा है। सेना में खलबली मच गई। बादशाह ने फिर अपने वीरों को ललकारा। नगाड़ा बजानेवाले के होश जाते रहे और वह नगाड़े पर चोट लगाने से भी रह गया। अकबर ने स्वयं बरछी की नोक से संकेत किया। फिर सबको समेटा और सेना को साथ लेकर सब का उत्साह बढ़ाता, शत्रु की ओर बढ़ा। कुछ सरदारों ने घोड़े बढ़ाए और तीर चलाने आरंभ किए। अकबर ने फिर आवाज दी कि घबराओ मत; क्यों छितराए जाते हो! वह वीर मस्त शेर की भाँति धीरे धीरे चलता था और सब को दिलासा देता जाता था। शत्रु आँधी की तरह बढ़ा चला आता था। पर वह ज्यों ज्यों पास पहुँचता था, त्यों त्यों उसके सैनिक छितराए जाते थे। दूर से ऐसा जान पड़ा कि इख्तियारउल्मुल्क अपने थोड़े से साथियों को लेकर अपनी शेष सेना से कटकर अलग हो गया है और जंगल की ओर जा रहा है। वास्तव में वह अकबर पर आक्रमण करने के लिये नहीं आ रहा था। अकबर के निरंतर सब स्थानों पर विजयी होने के कारण सारे भारत में धाक बाँध गई थी कि अकबर ने विजय का कोई मंत्र सिद्ध कर लिया है। अब कोई उससे जीत नहीं सकेगा। मुहम्मद हुसेन मिरजा के कैद हो जाने और सेना के नष्ट हो जाने का समाचार सुनकर इख्तियार-उल्मुल्क घेरा छोड़कर भागा था। उसकी सारी सेना च्यूँटियों की पंक्ति की भाँति बराबर से कतराकर निकल गई। उसका घोड़ा भी बग-टुट चला जाता था। वह अभागा भी थूहड़ में उलझकर भूमि पर गिर पड़ा। सुहराब बेग तुर्कमान उसके पीछे घोड़ा डाले चला जाता था। वह भी सिर पर पहुँच गया और तलवार खींचकर कूद पड़ा। इख्तियार उल्मुल्क ने कहा—"तुम तुर्कमान दिखाई देते हो; और तुर्कमान मुर्तजा

अली के सेवक और मित्र हैं। मैं सैयद हूँ। मुझे छोड़ दो।" सुहराब बेग ने कहा—"मैं तुम्हें क्यों छोड़ दूँ ? तुम इख्तियारुलमुल्क हो। मैं तुम को पहचानकर ही तुम्हारे पीछे दौड़ा आया हूँ।" यह कहकर झट उसका सिर काट लिया। फिरकर देखा तो कोई उसका घोड़ा ही ले गया था। लहू टपकता हुआ सिर गोद में रखकर दौड़ा। खुशी खुशी आया और बादशाह के सामने वह सिर भेंट कर इनाम पाया।

हुसेनखाँ का हाल अलग लिखा गया है। उस वीर ने इस आक्रमण में अपनी जान को जान नहीं समझा और ऐसा काम किया कि बादशाह देखकर प्रसन्न हो गया। उसकी बहुत प्रशंसा की। अकबर की खास तलवारों में से एक तलवार थी, जिसके घाट और काट के साथ मंगल और विजय देखकर उसने उसका नाम "हलाकी" (हिंसक) रखा था। उस समय वह तलवार हाथ में थी। वही इनाम में देकर उसका दिल बढ़ाया। थोड़ा दिन बाकी रह गया था और बादशाह इख्तियारुलमुल्क की ओर से निश्चित होकर आगे बढ़ना चाहता था, इतने में एक और सेना दिखलाई दी। विजयी सेना फिर सँभली। सब लोग बागें उठाकर टूट पड़ना चाहते थे कि इतने में उस सेना में से मिरजा अजीज कोका के बड़े चाचा घोड़ा बढ़ाकर आए और बोले कि मिरजा कोका हाजिर होता है। सब लोग निश्चित हो गए। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ। इतने में मिरजा कोका भी सकुशल आ पहुँचे। अकबर ने गले लगाया, उसके साथियों के सलाम लिए। सब लोग किले में गए। युद्धक्षेत्र में कल्ला मनार बनवाने की आज्ञा दी और दो दिन के बाद राजधानी की ओर प्रस्थान किया। जब राजधानी के पास पहुँचे, तब सब लोगों को दक्खिनी वर्दी से सजाया। वही छोटी छोटी बरछियाँ हाथों में दीं। आप भी वही वर्दी पहनकर और उनके अफसर बनकर नगर में प्रवेश किया। शहर के अमीर और प्रतिष्ठित निकलकर स्वागत के लिये आए। फैजी ने एक गजल पढ़कर सुनाई।

यह शुभ आक्रमण आदि से अंत तक बिलकुल निर्विघ्न समाप्त

हुआ। हाँ, एक बात से अकबर को दुःख हुआ और बहुत भारी दुःख हुआ। वह यह कि उसका परम भक्त और सेवक सैफखाँ कोका पहले ही आक्रमण में घायल हो गया था। उसके चेहरे पर दो घाव हुए थे और वह वीरगति को प्राप्त हुआ। सरनाल के जिस मैदान में सारा झगड़ा था, उस मैदान तक वह पहुँच ही न सका था। इसी लिये वह ईश्वर से अपनी मृत्यु की प्रार्थना किया करता था। जब यह आक्रमण हुआ, तब इसी आवेश में स्वयं हुसेन मिरजा और उसके साथियों पर अकेला जा पड़ा और वहीं कट मरा। वह प्रायः कहा करता था और सच कहता था कि मुझे हुजूर ने ही जान दी है।

सैफखाँ की माँ के यहाँ बराबर कई बार कन्याएँ ही उत्पन्न हुईं। काबुल में एक बार वह फिर गर्भवती हुई। उसके पति ने उसे बहुत धमकाया और कहा कि यदि इस बार भी कन्या ही हुई, तो मैं तुझे छोड़ दूँगा। जब प्रसव-काल समीप आया, तब बेचारी बीबी मरियम मकानी के पास आई और उससे सब हाल कहा; और यह भी कहा कि क्या करूँ, मैं तो इस बार गर्भ गिरा दूँगी। बला से; घर से तो न निकाली जाऊँगी। जब वह चली, तब मार्ग में अकबर खेलता हुआ मिला। यद्यपि उस समय वह बिलकुल बालक ही था, पर फिर भी उसने पूछा—"जीजी क्या है? तुम दुःखी क्यों हो?" बेचारी सच-मुच बहुत दुःखी थी। उसने उससे भी सब हाल कह दिया। अकबर ने कहा कि यदि तुम मेरी बात मानती हो, तो ऐसा कदापि न करना; और देखना, इस बार पुत्र ही होगा। ईश्वर की महिमा, इस बार सैफखाँ उत्पन्न हुआ। उसके बाद जैनखाँ उत्पन्न हुआ। मरते समय उसके मुँह से "अजमेरी; अजमेरी" निकला था। कदाचित् ख्वाजा मुईनउद्दीन अजमेरी को पुकारता था, या अकबर को पुकारता था। हुसेनखाँ ने निवेदन किया कि मैं उसके गिरने का समाचार सुनते ही घोड़ा मारकर पहुँचा था। उस समय तक वह होश में था। मैंने उसे विजय की बधाई देकर कहा—"तुम तो कीर्ति करके जा रहे हो। देखें,

हम भी तुम्हारे साथ ही आते हैं या हमें पीछे रहना पड़ता है।"

इससे भी विलक्षण बात यह है कि युद्ध से एक दिन पहले अकबर चलते चलते उतर पड़ा और सब को लेकर भोजन करने बैठा। एक हजारा पठान भी उन सवारों में साथ था। पता लगा कि वह हजारा फाल देखकर शकुन बतलाने में बहुत प्रवीण है। इस जाति के लोगों में फाल देखकर भविष्यद्वाणी करने की विद्या बहुत प्राचीन काल से चली आती है और अब तक है। अकबर ने पूछा—"मुल्ला, इस बार की विजय किस जाति के लोगों के द्वारा होगी?" उसने कहा—"हुजूर, मेरी जाति के लोगों से। पर इस लश्कर का एक अमीर हुजूर पर न्योछावर हो जायगा।" पीछे मालूम हुआ कि उसका अभिप्राय सैफखाँ से ही था। (देखो, तुजुक जहाँगीरी)

लोग कहेंगे कि आजाद ने दरबार अकबरी लिखने का वादा किया और शाहनामा लिखने लगा। लो, अब मैं ऐसी बातें लिखता हूँ, जिनसे अकबर के धर्म, आचार, व्यवहार और साम्राज्य के शासन तथा नियमों आदि का पता लगे। ईश्वर करे, मित्रों को ये बातें पसंद आवें।

धार्मिक विश्वास का आरंभ और अंत

अकबर ने ऐसी ऐसी विजयों से, जिनपर कभी सिकंदर का प्रताप और कभी रुस्तम की वीरता न्योछावर हो, सारे भारत के हृदय पर अपनी विजयशीलता का सिक्का बैठा दिया। अठारह बीस वर्ष तक तो उसकी यह दशा थी कि मुसलमानी धर्म की आज्ञाओं को उसी प्रकार श्रद्धापूर्वक सुना करता था, जिस प्रकार कोई सीधा सादा धर्मनिष्ठ मुसलमान सुना करता है; और उन सब धार्मिक आज्ञाओं का वह सच्चे दिल से पालन करता था। सबके साथ मिलकर नमाज पढ़ता था, स्वयं अजान देता था, मसजिद में अपने हाथ से झाड़

लगाता था, बड़े बड़े मुल्लाओं और मौलवियों का बहुत आदर करता था, उनके घर जाता था, उनमें से कुछ के सामने कभी कभी उनकी जूतियाँ तक सीधा करके रख दिया करता था, साम्राज्य के मुकदमों का निर्णय शरअ और मुल्लाओं के फतवे के अनुसार हुआ करते थे, स्थान स्थान पर काजी और मुफ्ती नियत थे, फकीरों और शेखों के साथ बहुत ही निष्ठापूर्वक व्यवहार किया करता था और उनकी कृपा तथा आशीर्वाद से लाभ उठाया करता था।

अजमेर में, जहाँ ख्वाजा मुईनउद्दीन चिश्ती की दरगाह है, अकबर प्रति वर्ष जाया करता था। यदि कोई युद्ध अथवा और कोई आकांक्षा होती, या संयोगवश उस मार्ग से जाना होता, तो वर्ष के बीच में भी वहाँ जाता था। एक पड़ाव पहले से ही पैदल चलने लगता था। कुछ मन्नतें ऐसी भी हुईं, जिनमें फतहपुर या आगरे से ही अजमेर तक पैदल गया। वहाँ जाकर दरगाह में परिक्रमा करता था और हजारों लाखों रुपयों के चढ़ावे और भेंटे चढ़ाता था। पहरों सच्चे दिल से ध्यान किया करता था और दिल की मुरादें माँगता था। फकीरों आदि के पास बैठता था; निष्ठापूर्वक उनके उपदेश सुनता था। ईश्वर के भजन और चर्चा में समय बिताता था, धर्म संबंधी बातें सुनता था और धार्मिक विषयों की छान बीन करता था। विद्वानों, गरीबों और फकीरों आदि को धन, सामग्री और जागीरें आदि दिया करता था। जिस समय कव्वाल लोग धार्मिक गजलें गाते थे, उस समय वहाँ रुपयों और अशर्फियों की वर्षा होती थी। "या हादी" "या मुईन" का पाठ वहीं से सीखा था। हर दम इसका जप किया करता था और सबको आज्ञा थी कि इसी का जप करते रहें। युद्ध के समय जब आक्रमण होता था, तब चिल्लाकर कहता था कि हाँ, अब सुमिरनी रख दो। आप भी और हिंदू मुसलमान सब सैनिक भी "या हादी", "या मुईन" ललकारते हुए दौड़ पड़ते थे। इधर बागें उठतीं, उधर शत्रु भागता। बस मैदान साफ हो गया और लड़ाई जीत ली।

मौलवियों आदि के प्रताप का आरंभ और अंत

इन बीस वर्षों में सब विजय ईश्वरदत्त की भाँति हुई और बहुत ही विलक्षण रूप से हुई । हर एक उपाय भाग्य के अनुकूल हुआ । जिधर जाने का विचार किया, उधर ही स्वागत करने के लिये प्रताप इस प्रकार दौड़ा कि देखनेवाले चकित हो गए । छः बरस में दूर दूर तक के देशों पर अधिकार हो गया । ज्यों ज्यों साम्राज्य का विस्तार होता गया, त्यों त्यों धार्मिक विश्वास भी दिन पर दिन बढ़ता गया । ईश्वर के प्रभुत्व और महिमा का पूरा विश्वास हो गया । उसकी इन कृपाओं के लिये वह बराबर उसे धन्यवाद दिया करता था और भविष्य के लिये सदा उसकी कृपा का भिक्षुक रहता था । शेख सलीम चिश्ती के कारण प्रायः फतहपुर में रहता था । महलों से अलग पास ही एक पुरानी सी कोठरी थी । उसके पास पत्थर की एक सिल पड़ी थी । तारों की छाँव में अकेला वहाँ जा बैठता था । प्रभात का समय ईश्वराधन में लगाता था । बहुत ही नम्रता और दीनता से जप करता था । ईश्वर से दुआएँ माँगता था । लोगों के साथ भी प्रायः धार्मिकता और आस्तिकता की ही बातें होती थीं । रात के समय विद्वानों का जमावड़ा होता था । वहाँ भी इसी प्रकार की बातें, इसी प्रकार के वाद-विवाद होते थे ।

इस आस्तिकता ने यहाँ तक जोर मारा कि सन् ९८२ हिजरी में शेख सलीम चिश्ती की नई खानकाह के पास एक बहुत बड़ी और बढ़िया इमारत बनाई गई और उसका नाम "इबादतखाना" (आराधना मंदिर) रखा गया । यह वास्तव में वही कोठरी थी, जिसमें शेख सलीम चिश्ती के पुराने शिष्य और भक्त शेख अब्दुल्ला नियाजी सरहदी (देखो परिशिष्ट) किसी समय एकांतवास किया करते थे । उसके चारों ओर बड़ी बड़ी इमारतें बनाकर उसे बहुत बढ़ाया । प्रत्येक जुमा (शुक्रवार) की नमाज के उपरांत शेख सलीम चिश्ती की खान-

काह से आकर इसी नई खानकाह में दरबार खास होता था। बहुत बड़े बड़े विद्वान् और मौलवी आदि तथा कुछ थोड़े से चुने हुए मुसाहब वहाँ रहते थे। दरबारियों में से और किसी को वहाँ आने की आज्ञा नहीं थी। वहाँ केवल ईश्वर और धर्म संबंधी बातें होती थीं। रात को भी इसी प्रकार की सभाएँ होती थीं। उन दिनों अकबर परम निष्ठ और दीन हो रहा था। परंतु विद्वानों की मंडली भी कुछ विलक्षण ही हुआ करती है। वहाँ धार्मिक वाद-विवाद तो पीछे होंगे, पहले बैठने के स्थान के संबंध में ही झगड़े होने लगे कि अमुक मुझसे ऊपर क्यों बैठा और मैं उससे नीचे क्यों बैठाया गया। इसलिये इसका यह नियम बना कि अमीर लोग पूर्व की ओर, सैयद लोग पश्चिम की ओर, विद्वान् आदि दक्षिण की ओर और त्यागी तथा फकीर आदि उत्तर की ओर बैठें। संसार के लोग भी बड़े विलक्षण होते हैं। इस इमारत के पास ही एक तालाब था। (इसका वर्णन आगे दिया गया है।) वह रुपयों और अशर्फियों आदि से भरा रहता था। लोग आते थे और रुपए तथा अशर्फियाँ इस प्रकार ले जाते थे, जैसे घाट से लोग पानी भर ले जाते हैं!

प्रत्येक शुक्रवार की रात को इस सभा में बादशाह स्वयं जाता था। वह वहाँ के सभासदों से वार्त्तालाप करता था और नई नई बातों से अपना ज्ञान-भांडार बढ़ाता था। इन सभाओं को सजावट मानों अपने हाथ से सजाती थी, गुलदस्ते रखती थी, इत्र छिड़कती थी, फूल बरसाती थी और सुगंधित द्रव्य जलाती थी। उदारता रुपयों और अशर्फियों की थैलियाँ लिए सेवा में उपस्थित रहती थी कि बस दो, और हिसाब न पूछो; क्योंकि उन्हीं लोगों की ओट में ऐसे दरिद्र भी आ पहुँचते थे, जिनको धन की आवश्यकता होती थी। गुजरात की लूट में एतमाद खाँ गुजराती के पुस्तकालय की बहुत अच्छी अच्छी पुस्तकें हाथ आई थीं। उनकी प्रतियाँ अथवा प्रतिलिपियाँ भी विद्वानों में बँटती थीं। जमालखाँ कोरची ने एक दिन निवेदन किया कि यह सेवक

एक दिन आगरे में ग्वालियरवाले शेख मुहम्मद गौस के पुत्र शेख जियाउद्दीन की सेवा में उपस्थित हुआ था। आजकल उनपर कुछ ऐसी दरिद्रता छाई है कि मेरे लिये उन्होंने कई सेर चने भुनवाए थे। कुछ आप खाए और कुछ मुझे दिए। शेष चने खानक़ाह में फ़क़ीरों और मुरीदों के लिये भेज दिए। यह सुनकर उदार बादशाह के कोमल चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्हें बुला भेजा और इसी इबादतखाने में रहने के लिये स्थान दिया। उनके गुण भी मुल्ला साहब से सुन लो। (देखो परिशिष्ट)

बहुत दुःख की बात है कि जब मसजिदों के भूखों को बढ़िया बढ़िया भोजन मिलने लगे और उनके हौसले से बढ़कर उनकी इज्जत होने लगी, तब उनकी आँखों पर चर्बी छा गई। सब आपस में झग- ड़ने लगे। पहले तो केवल कोलाहल होता था, फिर उपद्रव भी होने लगे। प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता था कि मैं अपनी योग्यता और दूसरे की अयोग्यता सिद्ध कर दिखाऊँ। उनकी चालबाजियों और झगड़ों से बादशाह बहुत तंग आ गया। इसलिये उसने विवश होकर आज्ञा दी कि जो अनुचित बात कहे अथवा अनुचित व्यवहार करे, उसे उठा दो। मुल्ला अब्दुलक़ादिर से कह दिया गया कि आज से यदि किसी व्यक्ति को अनुचित बात कहते देखो, तो हमसे कह दो। हम उसे सामने से उठवा देंगे। पास ही आसफखाँ थे, मुल्ला साहब ने धीरे से उनसे कहा कि यदि यही बात है, तो फिर बहुतों को उठना पड़ेगा। पूछा—"यह क्या कहता है?" जो कुछ उन्होंने कहा था, वही आसफखाँ ने कह दिया। बादशाह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, बल्कि और मुसाहबों से भी वह बात कह दी।

इन सभाओं में लोग एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये अनेक प्रकार के ऊट-पटाँग और विलक्षण प्रश्न किया करते थे। हाजी इब्राहीम सरहिंदी बड़े झगड़ालू और चकमा देनेवाले थे। उन्होंने एक दिन एक सभा में मिरजा मुफलिस से पूछा कि "मूसा"

शब्द का सीगा¹ (क्रिया का वचन, पुरुष आदि) क्या है और उसकी व्युत्पत्ति क्या है ? मिरजा यद्यपि विद्या और बुद्धि की संपत्ति से बहुत संपन्न थे, पर इस प्रश्न के उत्तर में मुफलिस ही निकले। बस फिर क्या था ! सारे शहर में धूम मच गई कि हाजी ने मिरजा से ऐसा प्रश्न किया, जिसका वे कोई उत्तर ही न दे सके; और हाजी ही बहुत बड़े विद्वान् हैं। पर जाननेवाले जानते थे कि यह भी समय का फेर है।

पर बादशाह को इन सभाओं में बहुत सी नई नई बातें मालूम होती थीं और उसकी हार्दिक आकांक्षा थी कि इस प्रकार की सभाएँ बराबर होती रहें। उस अवसर पर एक दिन अकबर ने काजी-जादा लश्कर से कहा कि तुम रात को सभा में नहीं आते। उसने निवेदन किया कि हुजूर, आऊँ तो सही; पर यदि वहाँ हाजी जी मुझसे पूछ बैठे कि "ईसा" का सीगा क्या है, तो मैं क्या उत्तर दूँगा ? यह दिल्लगी बादशाह को बहुत पसंद आई थी। तात्पर्य यह कि इस प्रकार के विरोध, झगड़े और आत्माभिमान आदि की कृपा से बहुत बहुत तमाशे देखने में आए। प्रत्येक विद्वान् की यही इच्छा थी कि जो कुछ मैं कहूँ, उसी को सब ब्रह्म-वाक्य मानें। जो जरा भी चीं-चपड़ करता था, उसके लिये काफिर होने का फतवा रखा हुआ था। कुरान की आयतें और कहावतें सब के तर्क का आधार थीं। पुराने विद्वानों के दिए हुए जो फतवे अपने मतलब के होते थे, उन्हें भी वे कुरान की आयतों के समान ही प्रामाणिक बतलाते थे।

सन् ९८३ हिजरी में बदख्शाँ के बादशाह मिरजा सुलेमान अपने पोते शाहरुख से तंग आकर भारत चले आए थे। उनके धार्मिक विचार ऊँचे दरजे के थे और वे लोगों को अपना शिष्य भी बनाते थे। वे

---

¹ इसमें असम्बद्धता यह है कि सीग़ा केवल क्रिया में होता है, संज्ञा में नहीं होता। और "मूसा" संज्ञा है।

भी इबादतखाने में जाते थे और बड़े बड़े विद्वानों से बातें करके लाभ उठाते थे।

मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूनी दो ही वर्ष पहले दरबार में प्रविष्ट हुए थे। उन्होंने वे सब पुस्तकें पढ़ी थीं, जिन्हें पढ़कर लोग विद्वान् हो जाते हैं। जो कुछ गुरुओं ने बतला दिया था, वह सब अक्षरशः उनको याद था। पर फिर भी धार्मिक आचार्य होना और बात है। उसके लिये किसी और विशिष्ट गुण की भी आवश्यकता होती है। आचार्य का एक यही काम नहीं है कि वह किसी पद या वाक्य, मंत्र या आयत आदि का केवल अर्थ ही बतला दे। उसका काम यह है कि जहाँ कोई आयत या मंत्र न हो, या कहीं किसी प्रकार का संदेह हो, या किसी अर्थ के संबंध में मतभेद हो, वहाँ वह बुद्धि से काम लेकर निर्णय करे। जहाँ कोई कठिनता उपस्थित हो, वहाँ परिस्थिति को ध्यान में रखकर आज्ञा दे। धार्मिक ग्रंथों की जितनी बातें हैं, वे सब सर्व-साधारण के केवल हित के लिये ही हैं। उनके कामों को बंद करने-वाली अथवा उनको हद से ज्यादा तकलीफ देनेवाली नहीं हैं।

अकबर को भी आदमियों की बहुत अच्छी पहचान थी। उसने मुल्ला साहब को देखते ही कह दिया कि हाजी इब्राहीम किसी को साँस नहीं लेने देता; यह उसका कल्ला तोड़ेगा। इनमें विद्या-बल तो था ही, तबीयत भी अच्छी थी। जवानी की उमंग, सहायता के लिये स्वयं बादशाह पीठ पर; और बुड्ढों का प्रताप बुड्ढा हो चुका था। यह हाजी से बढ़कर शेख सदर तक को टक्करें मारने लगे!

उन्हीं दिनों में शेख अब्बुलफजल भी आ पहुँचे। उनकी विद्वत्ता की झोली में तर्कों की क्या कमी था! और उनकी ईश्वरदत्त प्रतिभा के सामने किसी की क्या समर्थ्य थी! जिस तर्क को चाहा, चुटकी में उड़ा दिया। सबसे बड़ी बात यह थी कि शेख और उनके पिता ने मख-दूम और सदर आदि के हाथों से बरसों तक बड़े बड़े घाव खाए थे, जो आजन्म भरनेवाले नहीं थे। विद्वानों में विरोध का मार्ग तो खुल ही

गया था। थोड़े ही दिनों में यह नौबत हो गई कि धार्मिक सिद्धांत तो दूर रहे, जिन सिद्धांतों का संबंध केवल विश्वास से था, उनपर भी आक्षेप होने लगे। और हर बात में तुर्रा यह कि साथ में कोई तर्क और प्रमाण भी हो। यदि तुम अमुक बात को मानते हो, तो इसका कारण क्या है? धीरे धीरे अन्यान्य धर्मों के विद्वान् भी इन सभाओं में संम्मिलित होने लगे और लोगों में यह विचार फैलने लगा कि धर्म में विश्वास या अनुकरण नहीं करना चाहिए; पहले प्रत्येक बात का अच्छी तरह अनुसंधान कर लेना चाहिए, और तब उसे मानना चाहिए।

सच तो यह है कि उस नेकनीयत बादशाह ने जो कुछ किया, वह सब विवश होकर किया। मुल्ला साहब लिखते हैं कि सन् ९८६ हिजरी तक भी प्रायः रात का अधिकांश समय इबादतखाने में विद्वानों आदि की संगति में ही व्यतीत होता था। विशेषतः शुक्रवार की रात को तो लोग रात भर जागते रहते थे और धार्मिक सिद्धांतों आदि की छान-बीन हुआ करती थी। विद्वानों की यह दशा थी कि जबानों की तलवारें खींचकर पिल पड़ते थे, कट मरते थे और आपस में तर्क-वितर्क तथा वाद-विवाद करके एक दूसरे को पूरी तरह से दबाने का ही प्रयत्न किया करते थे। मुल्ला साहब कहते हैं कि शेख सदर और मखदूम-उल्मुल्क की तो यह दशा थी कि गुत्थमगुत्था तक कर बैठते थे। दोनों ओर के टुकड़-तोड़ और शोरवेचट मुल्ला अपना अपना दल बनाए रहते थे। एक विद्वान् किसी बात को हलाल कहता था, दूसरा उसी बात को हराम प्रमाणित कर देता था। बादशाह पहले तो उन दोनों को अपने समय के बहुत बड़े विद्वान और योग्य समझता था; पर जब उन लोगों की यह दशा देखी, तो वह चकित हो गया। अब्बुलफजल और फैजी भी आ गए थे और दरबार में उनके पक्षपाती भी उत्पन्न हो गए थे। वे लोग बात बात में उकसाते थे और यह दिखलाते थे कि शेख और मखदूम विश्वसनीय नहीं हैं।

अंत में मुसलमान विद्वानों के द्वारा ही यह दुर्दशा हुई। इस्लाम

तथा और दूसरे धर्म समान रूप से बदनाम हो गए; और उसमें भी मुसलमान विद्वान् तथा धर्माचार्य अधिक बदनाम हुए। पर फिर भी बादशाह अपने दिल में यही चाहता था कि किसी प्रकार मुझे धार्मिक तत्व की बातें मालूम हों; बल्कि वह उनकी छोटी छोटी बातों का भी पूरा पता लगाना चाहता था। इसलिये वह प्रत्येक धर्म के विद्वानों को एकत्र करता था और उनसे सब बातों का पता लगाया करता था। वह पढ़ा लिखा तो नहीं था, पर समझदार अवश्य था। किसी धर्म का पक्षपाती उसे अपनी ओर खींच नहीं सकता था। वह भी सब की सुनता था और अपने मन में समझ लेता था। उसके शुद्ध विश्वास और अच्छी नीयत में कोई अंतर नहीं आया था। जब सन् ९८४ हिजरी में दाऊद अफगान का सिर कट गया और बंगाल से उपद्रव की जड़ खुद गई, तब वह धन्यवाद के लिये अजमेर गया। ठीक उर्स के दिन पहुँचा। अपने नियमानुसार परिक्रमा की, जियारत की, फातिहा पढ़कर दुआएँ माँगीं और देर तक बैठा हुआ ध्यान करता रहा। बहुत से लोग हज करने के लिये जा रहे थे। उनमें से हजारों आदमियों को मार्ग के लिये व्यय और सामग्री आदि दी और आज्ञा दे दी कि जो चाहे सो हज को जाय, उसका सारा मार्ग-व्यय खजाने से दो। सुलतान ख्वाजा के वंश में से एक प्रतिष्ठित ख्वाजा को सब हाजियों का सरदार नियुक्त किया। मक्के के लिये छः लाख रुपए नगद, बारह हजार खिलअतें और हजारों रुपयों की भेंटें आदि दीं कि वहाँ जो पात्र मिलें, उन लोगों में ये सब चीजें बाँट देना। यह भी आज्ञा दे दी कि मक्के में एक बहुत बढ़िया मकान बनवा देना, जिसमें हज के लिये जानेवाले यात्री सुख से रह सकें। जिस समय सब लोग हज के लिये जाने लगे, उस समय अकबर ने सोचा कि मैं तो वहाँ पहुँच ही नहीं सकता; इसलिये उसने अपनी वही अवस्था बनाई, जो हज में होती है। बाल कटवाए, एक चादर लेकर उसकी आधी की लुंगी बनाई और आधी का झुरमुट; नंगे सिर, नंगे पैर बहुत ही श्रद्धा, भक्ति और नम्रता के साथ

उपस्थित हुआ। कुछ दूर तक उन लोगों के साथ नंगे पैर गया। मुँह से अरबी भाषा में कहता जाता था—"उपस्थित हुआ, उपस्थित हुआ, हे परमेश्वर, मैं तेरी सेवा में उपस्थित हुआ।" जिस समय बादशाह ने पहले पहल यह वाक्य कहा, उस समय सब लोगों ने भी बड़े जोर से यही कहा। ऐसा जान पड़ता था कि अभी वृक्षों और पत्थरों में से भी आवाज आने लगेगी। उसी दशा में सुल्तान ख्वाजा का हाथ पकड़कर धार्मिक प्रणाली के अनुसार जो कुछ कहा, उसका अर्थ यह है कि हज और जियारत के लिये हमने अपनी ओर से तुम्हें प्रतिनिधि नियुक्त किया। सन् ९८४ हिजरी के शअबान मास में सब लोगों ने प्रस्थान किया। मीर हाज (हाजियों के सरदार) इसी प्रकार लगातार छः वर्ष तक यही सब सामग्री लेकर जाया करते थे। हाँ, उसके बाद फिर यह बात नहीं हुई। शेख अब्बुलफजल लिखते हैं कि कुछ स्वार्थियों ने भोले भाले विद्वानों को अपनी ओर मिलाकर बादशाह को समझाया कि हुजूर को स्वयं हज का पुण्य लेना चाहिए। अकबर तैयार भी हो गया; पर जब कुछ समझदारों ने हज का वास्तविक अभिप्राय समझा दिया; तब उसने यह विचार छोड़ दिया; और जैसा कि ऊपर कहा गया है, मीर हाज के साथ बहुत से लोगों को हज करने के लिये भेज दिया। सुल्तान ख्वाजा बादशाह की दी हुई सब सामग्री लेकर अकबर के शाही जहाज "जहाजे इलाही" में बैठे और बेगमें रूम के व्यापारियों के "सलीमा" नामक जहाज में बैठीं।

विद्वानों और शेखों के पतन का कारण

एक ऐसे उदार-हृदय बादशाह के लिये विद्वानों की ये करतूतें ऐसी नहीं थीं कि जिनसे वह इतना अधिक दुःखी हो जाता। वास्तव में बात कुछ और ही थी जो यहाँ संक्षेप में कही जाती है। जब साम्राज्य का विस्तार एक ओर अफगानिस्तान से लेकर गुजरात, दक्खिन, बल्कि समुद्र तक हो गया और दूसरी ओर बंगाल से भी आगे

निकल गया, और उधर भक्कर तथा कंधार की सीमा तक जा पहुँचा, अठारह बीस वर्ष की विजयों ने सब लोगों के हृदयों पर उसकी वीरता का सिक्का बैठा दिया, आय के मार्ग भी व्यय से बहुत अधिक हो गए और खजानों के ठिकाने न रहे, तब इतने बड़े साम्राज्य का शासन करना भी उसके लिये आवश्यक हो गया। इसलिये वह अब साम्राज्य की व्यवस्था में लग गया। साम्राज्य का प्रबंध अब तक इस प्रकार होता था कि दीवानी और फौजदारी का सारा काम काजियों और मुफ्तियों के हाथ में था। उन्हें ये अधिकार स्वयं शरअ के अनुसार मिले हुए थे; और उनके अधिकार के विरुद्ध कोई चूँ भी नहीं कर सकता था। देश अमीरों में बँटा हुआ था। दहबाशी और बीस्ती से लेकर हजारी और पंजहजारी तक जो अमीर मंसबदार होता था, उसकी सेना और व्यय आदि के लिये उसे भूमि या जागीर मिलती थी। बाकी प्रदेश बादशाही खालसा कहलाता था।

उस समय अकबर के सामने दो काम थे। एक तो यह कि कुछ विशेष अधिकार-प्राप्त लोगों से उनके अधिकार ले लेना और दूसरे यह कि कुछ अच्छे और योग्य मनुष्य उत्पन्न करना। पहला काम अर्थात् अपने नौकरों को अलग कर देना आज बहुत सहज जान पड़ता है, पर उस जमाने में यह काम बहुत ही कठिन था; क्योंकि प्राचीनता ने उनके पैर गाड़े हुए थे, जिनका उस जमाने में हिलाना भी साधारण काम नहीं था। यद्यपि योग्यता उनके लिये जरा भी सिफारिश नहीं करती थी, परंतु दया और न्याय के, जो हर दम गुप्त रूप से अकबर को परामर्श दिया करते थे, होंठ बराबर हिलते जाते थे। वे यही कहते थे कि इनके बाप-दादा तुम्हारे बाप-दादा की सेवा में रहे और इन्होंने तुम्हारी सेवा की। अब ये किसी काम के नहीं रहे और इस घर के सिवा इनका और कहीं ठिकाना नहीं। बात यह थी कि उन दिनों छोटे बड़े सभी लोग अपने पुराने विचारों पर इतनी दृढ़ता से जमे हुए थे कि उनके लिये किसी छोटी से छोटी पुरानी प्रथा का बदलना भी नमाज और

रोजे में परिवर्तन करने के समान होता था। इन लोगों का यह दृढ़ विश्वास था कि जो कुछ बड़े लोगों के समय से चला आता है, वही धर्म-कर्म सब कुछ है। इसमें यह भी पूछने की जगह नहीं थी कि जिसने यह प्रथा चलाई, वह कौन था। न कोई यही पूछ सकता था कि इस प्रथा का आरंभ धार्मिक रूप में हुआ था अथवा केवल व्यावहारिक रूप में। उनका यही दृढ़ विश्वास था कि जो कुछ हमारे पूर्वजों के समय से चला आता है, वही हमारे लिये सब बातों में लाभदायक है और उसी कारण हम हजारों दोषों आदि से बचे रहते हैं। भला ऐसे लोगों से यह कब आशा हो सकती थी कि वे किसी उपस्थित बात पर विचार करें और यह सोचने के लिये आगे बुद्धि लड़ावें कि ऐसा कौन सा नया उपाय हो सकता है, जिससे हमें और अधिक लाभ तथा सुभीता हो। ये लोग या तो विद्वान् थे, जो धार्मिक क्षेत्र में काम कर रहे थे और या साधारण अहलकार आदि थे। पर अकबर के प्रताप ने ये दोनों कठिनाइयाँ भी दूर कर दीं। विद्वानों के संबंध की कठिनाई जिस प्रकार दूर हुई, वह तो तुम सुन ही चुके। अर्थात् ईश्वर और तत्त्व की जिज्ञासा ने तो उसे विद्वानों और धर्माचार्यों आदि की ओर प्रवृत्त किया; और यह प्रवृत्ति इस सीमा तक पहुँच गई की उनका आदर-सत्कार और पुरस्कार आदि उनकी योग्यता से कहीं बढ़ गया। इस कोटि के लोगों में यह विशेषता होती है कि वे ईर्ष्या-द्वेष बहुत करते हैं। उनमें लड़ाई झगड़े होने लगे। लड़ाई में उनकी तलवार क्या है, यही कोसना-काटना और दुर्वचन कहना। बस इसी की बौछारें होने लगीं। अंत में लड़ते लड़ते आप ही गिर गए, आप ही अपना विश्वास खो बैठे। अकबर को किसी प्रकार के उद्योग या चिंता की आवश्यकता ही न रही। उस समय की दशा देखते हुए जान पड़ता है कि उन लोगों का पतन-काल आ गया था। पुण्य की प्राप्ति की दृष्टि से जो प्रश्न उपस्थित होता था, उसी में एक पाप निकल आता था। जब बंगाल का युद्ध कई बरस तक चलता रहा, तब पता

लगा कि प्रायः विद्वानों और शेखों आदि के बाल-बच्चे उपवास कर रहे हैं। दयालु बादशाह को दया आई। आज्ञा दी कि सब लोग शुक्रवार के दिन एकत्र हों; हम स्वयं रुपए बाँटेंगे। एक लाख स्त्रियों और पुरुषों की भीड़ इकट्ठी हो गई। चौगानबाजी के मैदान में सब लोग एकत्र हुए। एक तो भीख माँगनेवालों की भीड़, ऊपर से हृदय का उतावलापन, आवश्यकता से उत्पन्न विवशता, व्यवस्था करनेवालों की लापरवाही; परिणाम यह हुआ कि अस्सी आदमी पैरों तले कुचले जाकर जान से गए; और ईश्वर जाने, कितने पिसकर मृतप्राय हो गए। पर उनकी भी कमरों में से अशर्फियों की हिमयानियाँ निकलीं ! बादशाह दया का पुतला था। उसे बहुत शीघ्र दया आ जाती थी। बहुत दुःख हुआ; पर बेचारा उन अशर्फियों को क्या करता ! अब ऐसे लोगों पर से उसका विश्वास भी जाता रहा।

शेख सदर की गद्दी भी उलट चुकी थी। और भी बहुत कुछ परदे खुल चुके थे। कई दिनों के बाद सन् ९८७ हिजरी में नए सदर को आज्ञा दी कि पुराने सदर ने मसजिदों के इमामों और शहरों के शेखों आदि को हजारी से पाँच-सदी तक जो जागीरें दी थीं, उनकी पड़ताल करो। इस पड़ताल में बहुत से लोगों की जागीरें छिन गईं; और इसमें यदि कुछ नए लोगों को दिया भी, तो वह केवल नाम के लिये ही। बाकी सब आप हजम कर गए। परिणाम यह हुआ कि मसजिदें उजाड़ हो गईं, मदरसे खँडहर हो गए और शहरों के अच्छे अच्छे विद्वान् तथा योग्य व्यक्ति अपनी सारी प्रतिष्ठा खोकर देश छोड़कर चले गए। जो लोग बच रहे थे, वे बदनाम करनेवाले, बाप-दादा की हड्डियाँ बेचनेवाले थे। जब उन लोगों को दरिद्रता ने घेरा, तब वे लोग धुनियों और जुलाहों से भी गए बीते हो गए और अंत में उन्हीं में मिल गए। कदाचित् भारत के किसी संप्रदाय की संतान ने ऐसी दुर्दशा न भोगी होगी, जैसी इन भले आदमी शेखों की संतान ने भोगी। इन लोगों को खिदमतगारी और साईसी भी नहीं मिलती

थी; क्योंकि वह भी इन लोगों से नहीं हो सकती थी।

इन लोगों पर से अकबर का विश्वास एक दो कारणों से नहीं हटा था; इसमें बड़े बड़े पेंच थे। सब से बड़ा कारण बंगाल का विद्रोह था जो इन्हीं भले आदमियों की कृपा से इस प्रकार उत्पन्न हुआ था, जैसे वन में आग लगे। बात यह हुई कि जब माफीदार शेख और मसजिदों के इमाम अपनी जागीरों आदि के संबंध में बादशाह से अप्रसन्न हुए तब वे उस के विरोधी हो गए। पीढ़ियों से उनके दिमाग आसमान पर चले आते थे और वे इस्लाम धर्म की कृपा से साम्राज्य को अपनी जागीर समझते चले आते थे। जिन शेखों और इमामों को तुम आज कल कंगाल पाते हो, उन दिनों ये लोग बादशाह को भी कोई चीज नहीं समझते थे। वे अपने उपदेश के समय लोगों से यह कहने लग गए कि बादशाह के धार्मिक विश्वास में अंतर पड़ गया, वह विधर्मी हो गया, उसका धार्मिक विश्वास ठीक नहीं है। संयोगवश उसी समय दरबार के भी कई अमीर कुछ तो बादशाह की आज्ञा के कारण, कुछ अपने लश्कर के वेतन के कारण और कुछ हिसाब किताब के कारण बहुत अप्रसन्न हो गए थे। उन लोगों को यह एक बहुत अच्छा बहाना मिल गया। अब ये दोनों अमीर और मुल्ला आदि मिल गए और इन्होंने कुछ दूसरे विद्वानों, काजियों और मुफतियों आदि को भी अपनी ओर मिला लिया। जौनपुर में काजियों के प्रधान मुल्ला यजदी रहते थे। उन्होंने फतवा दे दिया कि बादशाह विधर्मी हो गया और अब उसके विरुद्ध जहाद करना आवश्यक है। जब यह फतवा हाथ आ गया, तब बंगाल और पूर्वी देशों के कई बड़े बड़े और पुराने अमीर विद्रोही हो गए और जहाँ तहाँ थे, तलवारें खींचकर निकल पड़े। कुछ अमीर अपने अपने स्थान से उठकर यह आग बुझाने के लिये दौड़े। बादशाह ने उनकी सहायता के लिये आगरे से खजाने और सेनाएँ भेजीं। पर विद्रोह दिन पर दिन बढ़ता ही जाता था। अब मसजिदों के इमाम और खानकाहों के शेख कहने लगे कि बादशाह ने हमारी

रोजी में हाथ डाला, तो ईश्वर ने उसके देश में हाथ डाला। इसपर वे कुरान की आयतें और हदीसें पढ़ते थे और बहुत प्रसन्न होते थे।

पर वह भी बादशाह था। उसे एक एक बात की खबर पहुँचती थी और प्रत्येक बात का प्रतिकार करना आवश्यक था। मुल्ला यजदी और मअजउलमुल्क आदि को किसी बहाने से बुला भेजा। जब वे लोग आगरे से दस कोस पर वजीराबाद पहुँचे, तब आज्ञा भेजी कि इन दोनों को अलग करके जमना नदी के मार्ग से ग्वालियर पहुँचा दो। उन दिनों राजनीतिक अपराधियों के लिये वहीं जेलखाना था। पीछे आज्ञा पहुँची कि इन दोनों का अंत कर दो। पहरेदारों ने उन दोनों को एक टूटी हुई नाव में बैठाया और थोड़ी दूर आगे जाकर उनको पानी की चादर का कफन पहना दिया और लहरों की कब्र में गाड़ दिया। इसके अतिरिक्त और भी जिन जिन शेखों और मुल्लाओं आदि पर संदेह था, उन सबको एक एक करके परलोक भेज दिया। बहुतों की बदली करके उनको पूरब से पच्छिम और उत्तर से दक्खिन फेंक दिया। अकबर जानता था कि इन लोगों का बल और प्रभाव बहुत अधिक है; इसी लिये उसके विधर्मी होने की चर्चा मक्के, मदीने, रूम, बुखारा और समरकंद तक जा पहुँची। अब्दुल्लाखाँ उजबक ने पत्र-व्यवहार बंद कर दिया। बहुत दिनों के उपरांत जो एक पत्र भेजा भी, तो उसमें स्पष्ट लिख दिया कि तुमने इस्लाम धर्म छोड़ा। उधर से अकबर का बहुत बचाव रहता था। क्योंकि इसी उजबकवाली बला ने उसके दादा को वहाँ से निकाला था और अब उसकी सीमा काबुल, कंधार और बदखशाँ से मिली हुई थी। बहुत कुछ उपाय करने के उपरांत कई वर्षों में जाकर यह विद्रोह शांत हुआ। इसमें करोड़ों रुपयों की हानि हुई, लाखों जानें गईं और कई देश तबाह हो गए।

बहुत से काजी, मुफ्ती, विद्वान् और शेख आदि पदाधिकारी थे।

नके रिश्वत खाने और षड्यंत्र रचने के कारण अकबर तंग हो गया। पर साथ ही वह यह भी सोचता था कि संभव है कि इन्हीं में कुछ ईश्वर तक पहुँचे हुए और करामाती लोग भी हों; इसलिये नीतिमत्ता की दृष्टि से उसने आज्ञा दी कि जो लोग शेखों के वंश के हों, वे सब हाजिर हों। अब इन लोगों के प्रति अकबर के हृदय में वह आदर-संमान नहीं रह गया था, जो आरंभ में था; इसलिये नौकरी के समय इन लोगों को भी नए नियमों के अनुसार झुककर अभिवादन आदि करना पड़ता था। अकबर प्रत्येक की जागीर और वृत्ति स्वयं देखता था। सबके सामने भी और एकांत में भी उनसे बातें करता था। उसका अभिप्राय यह था कि कदाचित् इन लोगों में भी कोई अच्छा विद्वान् और ब्रह्मज्ञानी निकल आवे, जिससे ईश्वर तक पहुँचने का कोई मार्ग मिले। पर दुःख है कि वे सब बात करने के भी योग्य न थे। वे ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग ही क्या बतलाते। अस्तु। वह जिन्हें उचित समझता था, उन्हें जागीरें और वृत्तियाँ देता था; और जिसके विषय में सुनता था कि यह लोगों को अपना चेला बनाता है और जलसे जमाता है, उसे कहीं का कहीं फेंक देता था। ऐसे लोगों को वह दूकानदार कहा करता था और ठीक कहा करता था। नित्य इन्हीं लोगों की जागीरों के मुकदमे पेश रहते थे; क्योंकि ये ही लोग माफीदार भी थे।

जरा काल-चक्र को देखो, जितने वृद्ध और वयस्क शेख आदि थे और जो दया तथा संमान के पात्र जान पड़ते थे, उन्हीं पर षड्यंत्र रचने और उपद्रव खड़ा करने का भी सबसे अधिक संदेह होता था; क्योंकि उन्हीं में ये सब गुण भी होते थे और उन्हीं के बहुत से भक्त और अनुयायी भी होते थे। अंत में यह आज्ञा हुई कि सूफियों और शेखों के संबंध के जो आज्ञापत्र आदि हों, उनपर हिंदू दीवान विचार करें; क्योंकि वे किसी प्रकार की रिआयत न करेंगे। पुराने पुराने और खानदानी शेख निर्वासित किए गए। बहुतेरे घरों में

छिप रहे और बहुतेरे गुमनाम हो गए। ढूँढ़ने से उनका पता भी न लगा। दुर्दशा ने उनका सारा महत्त्व और सारा ब्रह्मज्ञान नष्ट कर दिया। धन्य है ईश्वर; जब विपत्ति ढाने लगता है, तब न अपनों को छोड़ता है और न परायों को। सूखों के साथ गीले, बुरों के साथ अच्छे सब जल गए।

अधिकारी विद्वानों में, जो साम्राज्य के स्तंभ थे, कुछ लोग अवश्य ऐसे थे जो शुद्ध-हृदय और जितेंद्रिय थे; जैसे मीर सैयद मुहम्मद मीर अदल इस्लाम धर्म के बहुत बड़े पंडित थे और उनका आचरण भी धर्मानुकूल ही था। उन्होंने सभी धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया था और उनके एक एक शब्द के अनुसार चलते थे। उनसे बाल भर भी इधर उधर हटना धर्म से पतित होना समझते थे। छोटे बड़े सभी उनका आदर संमान करते। स्वयं अकबर भी उनका लिहाज करता था। राजनीतिज्ञता के विचार से उसने उन्हें भी दरबार से टाला और भक्कर का हाकिम बनाकर भेज दिया। निस्संदेह वे ऐसे सज्जन और शुद्ध हृदय के थे कि उनका दरबार से जाना मानों बरकत का निकल जाना था। परिशिष्ट में मखदूम उल्मुल्क और शेख सद्र के हाल पढ़ने से इन सब लोगों के विषय में बहुत सी बातों का पता चलेगा। मखदूम ने कई बादशाहों के राज्य-काल देखे थे। दरबार में, अमीरों के यहाँ, बल्कि प्रजा के घर घर धूआँ धार छाए हुए थे। बड़े बड़े प्रतापी बादशाह उनका मुँह देखते रहते थे और उन्हें अपने अनुकूल रखना राजनीति का प्रधान अंग समझते थे। उनके आगे यह बालक बादशाह क्या चीज था! हे ईश्वर! लड़के के हाथों बुढ़ापे की मिट्टी खराब हुई। अब्बुलफजल और फैजी कौन थे? उनके आगे के लड़के ही तो थे।

यद्यपि शेखसद्र या प्रधान शेख के अधिकार स्वयं बादशाह ने ही बढ़ाए थे, पर फिर भी उनकी वृद्धावस्था और कुलीनता (इमाम साहब के वंशज थे) ने लोगों के दिलों में बहुत कुछ सिक्का जमा

रखा था; और आरंभ में उनके इन्हीं गुणों ने इन्हें अकबर के दरबार में लाकर इस उच्च पद तक पहुँचाया था, जो भारतवर्ष में इनसे पहले या पीछे किसी को प्राप्त न हुआ था। उनके समय के और सब विद्वान् उनके बच्चे कच्चे थे, जो काजी और मुफती बन-बनकर देश देश में दरिद्रों और धनवानों के सिर पर सवार थे। बुद्धिमान् बादशाह ने इन दोनों को मक्के भेजकर पुण्यशील बनाया। और भी बहुतेरे विद्वान् थे, जिन्हें इधर उधर टाल दिया।

प्राचीन काल में देश के शासन का धर्म के साथ बहुत ही घनिष्ट संबंध रहा करता था। पहले पहल धर्म के बल पर ही राज्य खड़ा हुआ था। फिर उसकी छाया में धर्म बढ़ता गया। पर अकबर के दरबार का रंग कुछ और ही होने लगा। एक तो उसके साम्राज्य की जड़ दृढ़ होकर बहुत दूर तक पहुँच चुकी थी; और दूसरे वह समझ गया था कि भारत में तथा तूरान या ईरान की अवस्था में पूर्व और पश्चिम का अंतर है। वहाँ शासक और प्रजा का एक ही धर्म है, इसलिये धार्मिक विद्वान् जो कुछ आज्ञा दें, उसी के अनुसार काम करना सब का कर्तव्य होता है। चाहे वह आज्ञा किसी व्यक्तिगत या राज्य-संबंधी बात के अनुकूल हो और चाहे प्रतिकूल हो। पर भारत में यह बात नहीं है। यह हिंदुओं का घर है। इनका धर्म और आचार-विचार सब भिन्न है। देश पर अधिकार करने के समय जो बातें हो जायँ, वे हो जायँ; पर जब इस देश में रहना हो और इस पर अपना अधिकार बनाए रखना हो, तब जो कुछ करना चाहिए, वह देशवासियों के उद्देश्यों और विचारों को बहुत अच्छी तरह समझकर और सोच विचारकर करना चाहिए।

उच्चाकांक्षी राजा के लिये जिस प्रकार देश पर अधिकार करने की तलवार मैदान साफ करती है, उसी प्रकार सुशासन की कलम तलवार के खेत को हरा भरा करती है। अब वह समय था कि तलवार बहुत सा काम कर चुकी थी और कलम के परिश्रम का अवसर आया था। मुसलमान विद्वानों ने धार्मिक व्यवस्थाएँ दे देकर अपना प्रभुत्व बढ़ा रखा

था। न तो लोग ही वह प्रभुत्व सहन कर सकते थे और न उसके आधार पर साम्राज्य की ही उन्नति हो सकती थी। कुछ अमीर भी अकबर के इन विचारों से सहमत थे; क्योंकि जान लड़ा-लड़ाकर देशों पर अधिकार करना उन्हीं का काम था; और फिर शासन करके देश पर अधिकार बनाए रखने का भार भी उन्हीं पर था। वे अपने कामों का ऊँच-नीच खूब समझते थे। काजी और मुफती उनके सिरों पर धार्मिक शासक बनकर चढ़े रहते थे। कुछ मुकदमों में लालच से, कहीं मूर्खता से, कहीं लापरवाही से, कहीं अपनी धार्मिक व्यवस्था का बल दिखाने के लिये वे अमीरों के साथ मत-भेद कर बैठते थे; और अंत में उन्हीं की विजय होती थी। ऐसी दशा में अमीरों का उनसे तंग होना ठीक ही था। अब दरबार में बहुत अच्छे अच्छे विद्वान् भी आ गए थे और नई नई व्यवस्थाओं तथा नए नए सुधारों के लिये मार्ग खुल गया था।

अब्बुल फजल और फैजी का नाम व्यर्थ ही बदनाम है। कर गए दाढ़ीवाले और पकड़े गए मोछोंवाले। गाजीखाँ बदख्शी ने कहा था कि बादशाह के सामने पहुँचकर सभी लोगों को झुककर अभिवादन करना उचित है। बस मौलवियों ने कान खड़े किए और बहुत शोर मचाया। खूब वाद-विवाद होने लगे। विरोधी मुल्ला आवेश के कारण साँस न लेने देते थे। पर जो लोग इस सिद्धांत के पक्षपाती थे, वे बहुत ही नरमी से उनको रोकते थे और अपनी जड़ जमाए जाते थे। वे कहते थे कि जरा पुराने राज्यों और राजाओं पर ध्यान दो। उस समय लोग प्रायः बड़ों के सामने पहुँचकर आदरपूर्वक उनके आगे माथा टेकते थे। वे हजरत आदम और हजरत यूसुफ के उदाहरण देकर समझाते थे; और कहते थे कि यह भी उसी प्रकार का अभिवादन है। फिर इससे इनकार कैसा! और इस संबंध में वाद विवाद क्यों!

अंत में यहाँ तक नौबत आ पहुँची कि प्रायः धार्मिक व्यवस्थाएँ

का राजनीतिक कार्यों से विरोध होने लगा। मुल्ला आदि तो सदा से जोरों पर चढ़े चले आते थे। वे अड़ने लगे, जिससे बादशाह, बल्कि अमीर भी तंग हुए। शेख मुबारक ने दरबार में कोई पद या मनसब ग्रहण नहीं किया था; पर फिर भी वे कभी बधाई देने के लिये या और किसी काम से वर्ष में एक दो बार अकबर के पास आया करते थे। उनके संबंध में पहले तो यही कह देना यथेष्ट है कि वे अब्बुल-फजल और फैजी के पिता थे। इन दोनों पुत्रों में जो कुछ गुण या पांडित्य था, वह इन्हीं पिता के कारण था। वे जैसे विद्वान् और पंडित थे, वैसे ही बुद्धिमान् और चतुर भी थे। उन्होंने कई राज्य और शासन देखे थे और सौ वर्ष की आयु पाई थी। पर उन्होंने दरबार या दरबार-वालों से किसी प्रकार का संबंध ही न रखा। और और विद्वान् थे जो दरबारों और सरकारों में दौड़े फिरते थे। पर ये अपने घर में विद्या की दूरबीन लगाए बैठे रहते थे और इन शतरंजबाजों की चालें देखा करते थे कि कौन कहाँ बढ़ते हैं, और कौन कहाँ चूकते हैं। ये बहुत ही निस्पृह दर्शक थे; इसलिये इन्हें चालें भी खूब सूझती थीं। इन्होंने लोगों के हाथों से अत्याचार के तीर भी इतने खाए थे कि इनका दिल छलनी हो रहा था। इन्हीं की संमति से यह निश्चय हुआ कि कुछ विद्वानों को संमिलित करके कुरान की आयतों और दंत-कथाओं आदि के आधार पर एक लेख प्रस्तुत किया जाय, जिसका आशय यह हो कि इमाम आदिल या प्रधान विचारपति को उचित है कि कोई विवादास्पद प्रश्न उपस्थित होने पर वह पक्ष ग्रहण करे, जो उसकी दृष्टि में समयोचित हो; और उसकी संमति धार्मिक विद्वानों की संमति की अपेक्षा अधिक ग्राह्य हो सकती है। शेख मुबारक ने इसका मसौदा तैयार किया। सब से पहले इस मसौदे पर सारे भारत के मुफतियों के प्रधान काजी जलालुद्दीन मुलतानी, शेख मुबारक और गाजीखाँ बदख्शी ने हस्ताक्षर किए; और तब बड़े बड़े काजी, मुफती और विद्वान् आदि, जिनकी व्यवस्थाओं का लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था,

बुलाए गए। उन सबकी भी उसपर मोहरें हो गईं। इस प्रकार सन् ९९७ हिजरी में इन धार्मिक विद्वानों या मौलवियों आदि का भी झगड़ा मिट गया; अकबर ने उनपर भी विजय प्राप्त कर ली।

इस प्रकार का निश्चय होते ही लक्ष्मी के उपासक मौलवियों और मुल्लाओं आदि के घर में मानों मातम होने लगा। वे हाथ में सुमिरनी लिए मसजिदों में बैठे रहा करते थे और कहा करते थे कि बादशाह काफिर हो गया, बे-दीन हो गया। और उनका यह कहना भी इस दृष्टि से ठीक ही था कि उनके हाथ से राज्य निकल गया था। उन दिनों की एक नीति यह भी थी कि जिन लोगों का कुछ लिहाज होता था और जिन्हें देश में रहने देना ठीक नहीं समझा जाता था, वे मक्के भेज दिए जाते थे। इसलिये शेख और मखदूम से भी कहा गया कि आप मक्के चले जाँय। उन लोगों ने कहा कि हमारे लिये हज करना कर्तव्य नहीं है; क्योंकि हमारे पास धन नहीं है। पर फिर भी वे दोनों किसी न किसी प्रकार भेज ही दिए गए। इन दोनों के विषय में आगे चलकर और और बातें बतलाई जायँगी।

इमाम आदिल या प्रधान विचारपति के कहने पर बादशाह ने सोचा कि सभी पुराने बड़े बड़े बादशाह मसजिद में खुतबा पढ़ा करते थे, अतः हमें भी पढ़ना चाहिए। इसलिये फतहपुर की मसजिद में एक शुक्रवार के दिन जब सब लोग एकत्र हुए, तब बादशाह खुतबा पढ़ने के लिये मेंबार[1] पर जा चढ़ा। पर संयोग ऐसा हुआ कि वहाँ पहुँचते ही थर थर काँपने लगा और उसके मुँह से कुछ भी न निकला। बड़ी कठिनता से फैजी के तीन शेर पढ़कर उतर आया; वह भी पीछे से कोई और उन्हें बताता जाता था।

---

१. मसजिद में का ऊँचा चबूतरा जहाँ से उपदेश किया या खुतबा पढ़ा जाता है।

मुंशियों का अंत

शासन विभाग में भी बड़े बड़े दीवान और मुंशी थे जो बहुत चलते हुए थे। इन पुराने पापियों ने सारा बादशाही दफ्तर अपने अधिकार में कर रखा था[१]। दफ्तर के कामों की इनकी योग्यता भी बहुत बढ़ी चढ़ी थी और पुरानी बातों की जानकारी भी इन्हें बहुत थी। इसलिये ये लोग भी किसी को कुछ समझते ही न थे। अकबर सोचता था कि इस विषय में मैं कुछ जानता ही नहीं। पर इस प्रश्न का भी अकबर के प्रताप ने ऐसी उत्तमता से निराकरण किया कि कोई मर गया और कोई काल-चक्र में पड़कर बेकाम हो गया; और इनके स्थान पर बहुत ही योग्य और कार्यकुशल लोग घरों में से खींचकर और दूर दूर के देशों से बुलाकर बैठाए गए। टोडरमल, फैजी, हकीम अब्दुलफतह, हकीम, हमाम, मीर फतहउल्लाह शीराजी, निजामुद्दीन बख्शी आदि ऐसे लोग थे जो सभी विषयों में बहुत ही दक्ष थे और दूसरा कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकता था। ये लोग अपने समय के अरस्तू और अफलातून थे। यदि इन लोगों को समय मिलता, तो न जाने क्या क्या लिख जाते। पर इन लोगों को समय ही न मिला। दफ्तर का हिसाब-किताब तो इन लोगों के लिये मानों एक बहुत ही तुच्छ काम था। पर ये लोग दफ्तर के काम और हिसाब-किताब में भी ऐसे ही थे कि कागजों पर एक एक का नाम मोती होकर टँके। पर टोडरमल ने अपना सारा जीवन इसी काम में बिताया था, इसलिये पहले उन्हीं का नाम लेना उचित है।

उस समय तक बादशाही दफ्तर कहीं हिंदी में था, कहीं फारसी

---

१ परिशिष्ट में ख्वाजा शाह मंसूर, ख्वाजा अमीना और मुजफ्फरखाँ आदि के विवरण देखो।

में; कहीं महाजनी बही-खाता था, कहीं ईरानी ढंग था। तिस पर भी सभी जगह कागजों के असंख्य टुकड़े पड़े हुए थे। न कोई विभाग था और न कोई व्यवस्था थी। ये बुद्धिमत्ता की मूर्तियाँ मिलकर बैठीं, कमेटियाँ हुईं, वाद-विवाद हुए; माल, दीवानी और फौजदारी आदि के अलग अलग विभाग स्थापित हुए। प्रत्येक विषय सिद्धांतों और नियमों से बँध गया और निश्चय हुआ कि अकबर के समस्त साम्राज्य में एक ही नियम प्रचलित हो। प्रत्येक विषय की छोटी छोटी बातों पर भी पूरा विचार किया गया। पहला निश्चय यह था कि सारे दफ्तरों में एक ही सन् का व्यवहार हो और उसी का नाम सन् फसली हो। मुल्ला अब्दुलकादिर ने इसपर भी बहुत चिल्लाहट मचाई है। इस निर्णय को भी वे उन्हीं बातों में संमिलित करते हैं, जिनके आधार पर वे अकबर को इसलाम धर्म का विरोधी प्रमाणित करना चाहते हैं। पर सन् के संबंध में इस निर्णय का मूल कारण और रहस्य उसी घोषणापत्र से खुल जाता है, जो इस विषय में प्रचलित हुआ था। उसी घोषणापत्र से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शासन-कार्यों में क्या क्या कठिनाइयाँ होती थीं, जिनके कारण बादशाह को यह नियम प्रचलित करना पड़ा। यह घोषणापत्र अब्बुलफजल का लिखा हुआ था और इसका सारांश परिशिष्ट में दिया गया है।

मालगुजारी का बंदोबस्त

अब तक मालगुजारी और माल विभाग का प्रायः सारा प्रबंध अनिश्चित और अनियमित सा था और मालगुजारी केवल कूत पर थी। प्रत्येक देहात की मालगुजारी प्रायः वही थी, जो सैकड़ों वर्षों से बँधी चली आती थी। बहुत सी बातें ऐसी भी थीं जो कहीं लिखी तक न थीं, दफ्तर के मुंशियों की जबानों पर ही थीं। राज्यों के उलट-फेर ने सुप्रबंध और सुव्यवस्था का समय ही न आने दिया था।

माल विभाग में सब से बड़ा दोष यह था कि एक अमीर को एक प्रदेश दे दिया जाता था। दफ्तरवाले उसे दस हजार की आय का बतलाते थे; और वह वास्तव में पंद्रह हजार की आय का होता था। इतने पर भी वह प्रदेश जिसे दिया जाता था, वह रोता था कि यह तो पाँच हजार की आय का भी नहीं है। विचार यह हुआ कि सब प्रदेशों की पैमाइश या नाप हो जाय और उसकी वास्तविक आय निश्चित कर दी जाय। पहले जमीन की नाप के लिये जरीब की रस्सी हुआ करती थी, जो भींगने पर छोटी और सूखने पर बड़ी हो जाया करती थी; इसलिये बाँस में लोहे के छल्ले पहनाकर जरीबें तैयार की गईं। प्रजा के लाभ के विचार से ५० गज के स्थान में ६० गज की नाप स्थिर हुई। सारा देश, रेतीले मैदान, पहाड़ी प्रदेश, उजाड़, जंगल, शहर, नदियाँ, नहरें, झीलें, तालाब, कूएँ आदि आदि सभी नाप डाले गए। जमीनों के भेद-प्रभेद आदि भी लिख लिए गए। कोई बात बाकी न छूटी। जरा जरा सी बात लिख ली गई। बस यही समझ लो कि आजकल बंदोबस्त के कागजों में जो जो विवरण देखने में आते हैं, उनका आरंभ अकबर के ही समय में हुआ था; और उनकी सब बातें तब से अब तक प्रायः ज्यों की त्यों चली आती हैं। उनमें कुछ सुधार भी अवश्य हुए हैं, पर बहुत अधिक नहीं। और ऐसा सदा से होता आया है।

पैमाइश के उपरांत उतनी उतनी जमीन एक एक विश्वसनीय आदमी को दे दी गई जितनी जमीन की आय एक करोड़ तिंगा (एक प्रकार का छोटा सिक्का) होती थी; और उसका नाम करोड़ी रख दिया गया। उसपर और भी काम करनेवाले आदमी नियुक्त हुए। इकरारनामा लिखा लिया गया कि तीन वर्ष के अंदर गैर आबाद जमीन को भी आबाद कर दूँगा और रुपए खजाने में पहुँचा दूँगा, आदि आदि। इसी प्रकार की और भी अनेक बातें इस इकरारनामे में संमिलित की गईं।

सीकरी गाँव को फतहपुर नगर बनाकर बहुत ही शुभ समझा था। उसकी शोभा, आबादी और प्रतिष्ठा आदि बढ़ाने का बहुत कुछ विचार था। बल्कि अकबर यहाँ तक चाहता था कि वहीं राजधानी भी हो जाय। इसीलिये फतहपुर सीकरी ही केंद्र बनाया गया था और वहीं से आरंभ करके चारों ओर की पैमाइश हुई थी। मौजों के आदमपुर और अयूबपुर आदि नाम रखे जाने लगे और अंत में निश्चय हुआ कि सभी मौजों के नाम पैगंबरों के नामों पर हो जायँ। बंग, बिहार, गुजरात, दक्षिण आदि प्रदेश अलग अलग रखे गए। तब तक काबुल, कंधार, काश्मीर, ठट्ठा, बिजौर, तेराह, बंगश, सोरठ, उड़ीसा आदि प्रदेश जीते नहीं गए थे, तथापि १८२ आमिल या करोड़ी नियुक्त हुए थे।

पर अकबर जिस प्रकार चाहता था, उस प्रकार यह काम न चला; क्योंकि लोग इसमें अपनी हानि समझते थे। माफीदार समझते थे कि हमारे पास जमीन अधिक है और इसकी आय भी अधिक है। पैमाइश हो जाने पर जितनी जमीन अधिक होगी, वह हमसे ले ली जायगी। जागीरदार अर्थात् अमीर भी यही सोचते थे। ईश्वर ने मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी बनाई है कि वह किसी के अधिकार में नहीं रहना चाहता। इसलिये जमींदार भी कुछ प्रसन्न कुछ अप्रसन्न हुए। जब तक सब लोग प्रसन्न होकर और एक मत से कोई काम न करें, तब तक वह काम चल ही नहीं सकता। और फिर जब वे अपनी हानि समझकर उस काम में बाधक हों, तब तो उस काम का चलना और भी कठिन हो जाता है। दुःख का विषय यह है कि करोड़ियों ने आबादी बढ़ाने पर उतना अधिक ध्यान नहीं दिया, जितना अपनी आय बढ़ाने पर दिया। उनके अत्याचारों से खेतिहर चौपट हो गए। उनके घर उजड़ गए और बाल-बच्चे तक बिक गए; और अंत में वे लोग भाग गए। ये दुष्ट और पापी करोड़ी कहाँ तक बच सकते थे। इन्होंने तीन वर्ष तक जो कुछ खाया था, वह तो खाया ही था, पर

फिर जो कुछ खाया, वह सब टोडरमल के शिकंजे में आकर उगलना पड़ा। तात्पर्य यह कि इतनी उत्तम और लाभदायक व्यवस्था भी इस गड़बड़ी के कारण अंत में हानिकारक ही सिद्ध हुई और जो उद्देश्य था, वह पूरा न हुआ। धन्यवाद मिलने के बदले उलटे जगह जगह शिकायतें होने लगीं और घर घर इसी का रोना मच गया। करोड़ियों की निंदा होने लगी और नियमों की हँसी उड़ाई जाने लगी।

नौकरी

भले आदमियों के उदर-निर्वाह के लिये उन दिनों दो ही मार्ग थे। एक तो राज्य की ओर से लोगों को निर्वाह के लिये सहायता मिलती थी, और दूसरे नौकरी। सहायता जागीरों के रूप में होती थी, जो विद्वानों और धार्मिक आचार्यों आदि के लिये होती थी। इसमें उनसे किसी प्रकार की सेवा नहीं ली जाती थी। नौकरी में सेवा भी ली जाती थी। इसमें दहबाशी से लेकर पंजहजारी तक के सेवक होते थे, जो सेना विभाग के अंतर्गत रहते थे। दहबाशी को दस, बीस्ती को बीस और इसी प्रकार और लोगों को अपने अपने पद के अनुसार सिपाही रखने पड़ते थे। इसी प्रकार दो-बीस्ती, पंजाही सेह-बीस्ती, चहार-बीस्ती आदि पंज-हजारी तक होते थे। वेतन के बदले में उनको हिसाब से उतनी भूमि, गाँव, इलाका या प्रदेश आदि मिल जाता था। उसी की आय से लोगों को अपने अपने हिस्से की सेना रखनी पड़ती थी और अपने पद, प्रतिष्ठा या हैसियत आदि के अनुसार अपना निर्वाह करना पड़ता था। यहाँ यह बात समझ लेनी चाहिए कि उन दिनों यहाँ, और एशिया के अनेक देशों में आजकल भी, यही प्रथा है कि जिसके यहाँ जितने ही अधिक लोग खाने-पीने और साथ रहनेवाले होते हैं और जितना ही जिसके यहाँ का व्यय आदि अधिक होता है, वह उतना ही योग्य, साहसी और रईस समझा जाता है और उतना ही शीघ्र उसका पद आदि बढ़ता है।

इन सेवकों में से जिसकी जैसी योग्यता देखी जाती थी, उसको वैसा ही काम भी दिया जाता था। यह काम शासन विभाग का भी होता था। जब लड़ाई का अवसर आता था, तब सेना विभाग में से भी और शासन विभाग में से भी कुछ लोगों के नाम चुन लिए जाते थे और इन सब लोगों के नाम आज्ञाएँ निकाली जाती थीं। उनमें दहबाशी से लेकर सदी, दो सदी (सौ और दो सौवाले) आदि सभी होते थे। सब मनसबदार अपने अपने हिस्से की सेना, वर्दी और सब सामग्री ठीक करके उपस्थित हो जाते थे। यदि उनको आज्ञा होती थी, तो वे भी साथ हो जाते थे; नहीं तो अपने अपने आदमियों को साथ कर देते थे।

कुछ बेईमान मनसबदार ऐसा करने लगे थे कि सैनिक तैयार करके युद्ध में ले जाते थे; और जब वे लौटकर आते थे, तब अपनी आवश्यकता के अनुसार थोड़े से आदमी रख लेते थे और बाकी आदमियों को निकाल देते थे। उनके वेतन आप डकार जाते थे; उन रुपयों से या तो आनंद-मंगल करते थे और या अपना घर भरते थे। जब फिर युद्ध का अवसर आता था, तब वे इस आशा से बुलाए जाते थे कि वे अपने साथ अच्छे योद्धाओं की सजी सजाई सेना लेकर उपस्थित होंगे। पर वे अपने साथ टुकड़े तोड़नेवाले कुछ बिलाव, कुछ कुँजड़े, भठियारे, धुनिए, जुलाहे और कुछ बाजारों में घूमनेवाले जंगली मुगल, पठान और तुर्क आदि पकड़ लाते थे। कुछ अपने सेवक, साईस और शिष्य आदि भी ले लेते थे। इनको घसियारों के घोड़ों और भठियारों के टट्टुओं पर बैठाते थे और किराए के हथियारों तथा मँगनी के कपड़ों से उनपर लिफाफा चढ़ाकर हाजिर हो जाते थे। पर तोप, तलवार के मुँह पर ऐसे आदमी क्या कर सकते थे! इसी कारण ठीक युद्ध के समय बड़ी दुर्दशा होती थी।

एशिया के बादशाहों में प्राचीन काल से यही प्रथा थी। क्या भारत के राजा-महाराज और क्या ईरान, तूरान के बादशाह, सबके यहाँ

यही प्रथा थी। मैंने स्वयं देखा है कि अफ़गानिस्तान, पख्शाँ, समरकंद, बुखारा आदि देशों में अब तक यही प्रथा चली आती थी। उधर के देशों में सबसे पहले काबुल में यह नियम उठा; और इस नियम के उठने का कारण यह हुआ कि जब अमीर दोस्त मुहम्मद खाँ ने अहमद शाह दुर्रानी के वंशजों को निकालकर बिना परिश्रम ही अधिकार प्राप्त कर लिया, तब अँगरेजी सेना शाह शुजा को उसका अंश दिलवाने गई। उधर से अमीर भी लश्कर लेकर निकला। सेना के सब सरदार उसके साथ थे। मुहम्मद शाह खाँ गलजई, अमीन उल्ला खाँ लूगरी, अब्दुल्ला खाँ अचकजई, खान शीरीं खाँ कजलबाश आदि ऐसे ऐसे सरदार थे, जो किसी पहाड़ी पर खड़े होकर नगाड़ा बजाते, तो तीस तीस चालीस चालीस हजार आदमी तुरंत एकत्र हो जाते। अमीर उन सबको लेकर युद्ध-क्षेत्र में आया। दोनों सेनाओं के सेनापति इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि उधर से युद्ध छिड़े। इतने में अमीर के अफ़गान सरदारों में से एक सरदार घोड़ा उड़ाकर चला। उसकी सेना भी च्यूँटियों की पंक्ति की भाँति उसके पीछे पीछे चली। देखनेवाले समझते होंगे कि यह शत्रु की सेना पर आक्रमण करने जा रहा है। उसने उधर पहुँचते ही शाह को सलाम किया और तलवार का कब्ज़ा नजर किया। इसी प्रकार दूसरा गया, तीसरा गया। अमीर साहब देखते हैं तो धीरे धीरे मैदान साफ होता जाता है। एक मुसाहब से पूछा कि अमुक सरदार कहाँ है? उसने कहा—"वह तो उस ओर शाहको सलाम करने चला गया।" फिर पूछा—"अमुक सरदार कहाँ है?" उसने कहा—"वह तो अँगरेजों की में सेना जाकर मिल गया।" अमीर बहुत चकित हुआ। इतने में एक स्वामि-भक्त ने आगे बढ़कर कहा—"हुजूर किसको पूछते हैं! यह सारा लश्कर नमकहरामों का था।" पास खड़े हुए एक मुसाहब ने अमीर के घोड़े की बाग पकड़कर खींची और कहा—"हुजूर, आप क्या देख रहे हैं! मामला बिलकुल उलट गया। अब आप एक किनारे हो जाइए।" यह सुनकर अमीर

साहब ने भी बाग फेर दी। वह आगे आगे, और शेष लोग पीछे पीछे; विवश होकर घर छोड़कर निकल गए। जब अँगरेजों ने फिर कृपा करके उनका देश और राज्य उनको दिया, तब उनको समझाया कि अब अमीरों और खानों पर सेना को न छोड़ना। स्वयं ही सैनिकों को नौकर रखना और स्वयं ही उनको वेतन देना; और अपनी ही आज्ञा में उनको रखना। उनको शिक्षा मिल चुकी थी, इसलिये झट समझ गए। जब काबुल पहुँचे, तब बड़ी योग्यता से सब व्यवस्था की और धीरे धीरे सब खानों और सरदारों का अंत कर दिया। जो बच रहे, उनके हाथ पैर इस तरह तोड़ दिए कि फिर वे हिलने के योग्य भी न रहे। बस दरबार में हाजिर रहो, नगद वेतन लो, और घर बैठे माला जपा करो।

दाग का नियम

भारत के प्राचीन विदेशी शासकों में से पहले अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में दाग का नियम निकला था। वह सबसे पहले इस त्रुटि को समझ गया था और प्रायः कहा करता था कि अमीरों को इस प्रकार रखने में उनके सिर उठाने का भय रहता है। जब वे अप्रसन्न होंगे, तब सब मिलकर विद्रोह खड़ा कर देंगे और जिसे चाहेंगे, बादशाह बना लेंगे। इसलिये उसने सैनिकों को नौकर रखा और दाग का नियम निकाला। फीरोज शाह तुगलक के शासन काल में जागीरें हो गईं। शेर शाह के शाशन-काल में फिर दाग का नियम निकला। पर जब वह मर गया, तब दाग भी मिट गया। जब सन् ९८१ हिजरी में अकबर ने पटने पर आक्रमण किया, तब वह अमीरों की सेना से बहुत तंग हुआ। सैनिकों की बड़ी दुर्दशा थी और सेना के पास कोई सामग्री नहीं थी। शिकायतें तो पहले से ही हो रही थीं। जब वहाँ से लौटकर आया, तब शहबाज खाँ कंबू ने प्रस्ताव किया और दाग की प्रथा फिर से आरंभ हुई।

बुद्धिमान बादशाह ने सोचा कि यदि अचानक सब लोगों को इस नियम का पालन करना पड़ेगा, तो अमीर घबरा जायँगे; क्योंकि पूरी सेना तो किसी के पास है ही नहीं। उनके अप्रसन्न होने से कदाचित् कोई नई विपत्ति खड़ी हो। इसके अतिरिक्त जब सारे देश में एक साथ ही जाँच होने लगेगी, तो संभव है कि कोई और नया झगड़ा खड़ा हो। जुलाहे, साईस, घसियारे, भठियारे और उनके टट्टू जो मिलेंगे, सब को ये लोग समेट लेंगे। इसलिये निश्चित हुआ कि पहले दहबाशी और बीस्ती मनसबदारों के सैनिकों की हाजिरी ली जाय। सब लोग अपने अपने सवारों को लेकर छावनी में उपस्थित हों और उन्हें सूची सहित पेश करें। प्रत्येक का नाम, देश, अवस्था, ऊँचाई, तात्पर्य यह कि पूरा हुलिया लिखा जाय। हाजिरी के समय हर एक बात का मिलान किया जाता था और सूची पर चिह्न होता था। उस चिह्न को भी दाग कहते थे। साथ ही लोहा गरम करके घोड़े पर दाग लगाते थे। इसी नियम का नाम दाग था।

जब सब स्थानों पर इस कोटि के नौकरों के घोड़ों आदि की सूची बन गई, तब सदी, दो सदी आदि मनसबदारों की बारी आई। बल्कि आदमी और घोड़ों से बढ़कर मनसबदारों के ऊँट, हाथी, खच्चर, बैल आदि जो उनसे संबद्ध थे, सब दाग के नीचे आ गए। जब ये भी हो गए, तब हजारी, दो-हजारी, पंज-हजारी आदि की नौबत आई। आज्ञा थी कि जो अमीर दाग की कसौटी पर पूरा न उतरे, उसका मनसब गिर जाय। असल बात यही समझी जाती थी कि वह कम-असल है, इसी लिये उसका हौसला पूरा नहीं है। वह इस योग्य नहीं है कि उसके व्यय के लिये इतनी जागीर और मनसब उसे दिया जाय। दाग के दंड में बहुत से अमीर बंगाल[१]

---

१ चगताई बादशाहों का यह नियम था कि जिस अमीर से अप्रसन्न होते थे, उसे बंगाल भेज देते थे। एक तो वह देश गरम था, दूसरे वहाँ का जल-वायु

भेजे गए और मुनइमखाँ खानखानाँ को लिखा गया कि इनकी जागीरें वहीं कर दो। यद्यपि यह काम बहुत धीरे धीरे होता था और इसमें रिआयत भी बहुत की जाती थी, पर फिर भी अमीर लोग बहुत घबराए। मुजफ्फरखाँ को भी दंड दिया गया था। उसका लाडला अमीर और हठी सेनापति मिरजा अजीज कोकलताश इतना झगड़ा कि दरबार में उसका आना जाना बंद हो गया। आज्ञा हो गई कि यह अपने घर में बैठे। न यह किसी के पास जाने पावे, और न कोई इसके पास आने पावे।

दाग का स्वरूप

आईन अकबरी में अब्बुलफजल ने लिखा है कि आरंभ में घोड़े की गरदन पर दाहिनी ओर फारसी वर्णमाला के सीन अक्षर का सिरा, लोहे से दाग देते थे। फिर एक आड़ी रेखा को एक सीधी काटती हुई रेखा बनाई गई, जिसके चारों सिरे कुछ मोटे होते थे। यह चिह्न दाहिनी रान पर होता था। फिर बहुत दिनों तक चिल्ला उतरी हुई कमान की आकृति रही। फिर यह भी बदल गई और लोहे के अंक बने। यह घोड़े के दाहिने पुट्ठे पर होते थे। पहली बार १/३ फिर दूसरी बार २/३ आदि। फिर सरकार से विशेष प्रकार के अंक मिल गए। शाहजादे, राजे, सेनापति आदि सब इसी से चिह्न करते थे। इसमें यह लाभ हुआ कि यदि किसी का घोड़ा मर जाता और वह दाग के समय कोरा घोड़ा उपस्थित करता, तो सेना का बख्शी कहता था कि यह आज के दिन से हिसाब में आवेगा। सवार कहता था कि मैंने उसी दिन मोल ले लिया था, जिस दिन पहला घोड़ा मरा था। कभी कभी यह भी होता

अच्छा नहीं था। वहाँ जाकर लोग बीमार हो जाते थे। कुछ यह भी कारण था कि लोग दूर देश में जाने से घबराते थे। वहाँ अकेले पड़ जाने के कारण भी कठिनाई होती थी।

था कि सवार किराए का घोड़ा लाकर दिखा दिया करता था। कभी लोग पहले घोड़े को बेच खाते थे और दाग के समय ठीक उसी चेहरे-मोहरे का घोड़ा लाकर दिखा देते थे, आदि आदि अनेक प्रकार से धोखा देते थे। पर इस दाग से दगा के सब रास्ते बंद हो गए। जब फिर दाग का समय आता था, तब यही दाग दूसरी और तीसरी बार भी होता था।

मुल्ला साहब इस बात को भी गुस्से की वर्दी पहनाकर अपनी पुस्तक में लाए हैं। आप कहते हैं कि यद्यपि सब अमीर अप्रसन्न हुए, और बहुतों ने दंड भी भोगे, पर अंत में यही नियम सबको मानना पड़ा। पर बेचारे सिपाहियों को फिर भी इससे कोई लाभ नहीं हुआ। इधर अमीरों ने यह नियम कर लिया कि दाग के समय कुछ असली और कुछ नकली वही लिफाफे की सेना लाकर दिखा देते थे और अपना मनसब पूरा करा लेते थे। जागीर पर जाकर सब को छुट्टी दे देते थे। फिर वह नकली घोड़े कैसे और किराए के हथियार कहाँ! जब फिर दाग का समय आवेगा, तब देखा जायगा। युद्ध का समय आया, तो फिर वही दुर्दशा। जो सच्चा सिपाही है, उसी की तबाही है। बड़े बड़े वीर और योद्धा मारे मारे फिरते हैं और तलवारें मारनेवाले भूखों मरते हैं। इस आशा पर घोड़ा कौन बाँधे कि जब कभी युद्ध छिड़ेगा, तब किसी अमीर के नौकर हो जायँगे। आज घोड़ा रखें, तो खिलावें कहाँ से। बेचते फिरते हैं; कोई लेता नहीं। तलवार बंधक रखते हैं। बनिया आटा नहीं देता। इसी दुर्दशा का यह परिणाम है कि समय पर ढूँढो तो जिसे सिपाही कहते हैं, उसका नाम भी नहीं। फिर आगे चलकर मुल्ला साहब इसी की हँसी उड़ाते हैं। पर मुझसे पूछो तो वह क्रोध भी व्यर्थ था और यह हँसी भी अनुचित है। बात यह है कि अकबर ने यह काम बड़े शौक और परिश्रम से आरंभ किया था; क्योंकि वह वीर और योद्धा था, स्वयं तलवार पकड़कर लड़ता था और सैनिकों की भाँति आक्रमण करता था। इस लिये उसे वीर सैनिकों

से बहुत प्रेम था। जब उसने दाग की प्रथा फिर से प्रचलित की, तब वह कभी कभी आप भी दीवान-खास में आ बैठता था और इस विचार से कि मेरा सिपाही फिर बदला न जाय, उसका हुलिया लिखाता था। फिर कपड़ों और हथियारों समेत तराजू पर तौलवाता था। आज्ञा थी कि लिख लो, यह ढाई मन से कुछ अधिक निकला, वह साढ़े तीन मन से कुछ कम है। फिर पता लगता था कि हथियार किराए के थे कपड़े मँगनी के थे। हँसकर कह देता था कि हम भी जानते हैं; पर इन्हें निर्वाह के लिये कुछ देना चाहिए। सब का काम चलता रहे। प्रायः सवारों के पास एक या दो घोड़े तो होते ही थे; पर गरीबों के निर्वाह की दृष्टि से नीम-अस्पा अर्थात आधे घोड़े का भी नियम निकाला गया था। मान लो कि सिपाही अच्छा है, पर उसमें घोड़ा रखने की सामर्थ्य नहीं है। इसलिये आज्ञा देता था कि दो सिपाही मिलकर एक घोड़ा रख लें और बारी बारी से काम दें। छः रुपया महीना घोड़े का, उसमें भी दोनों का साझा। यह सब कुछ ठीक है, पर इसे भी प्रताप ही समझो कि जहाँ जहाँ शत्रु थे, सब आप ही आप नष्ट हो गए। न सेना की आवश्यकता होती थी और न सिपाही की। अच्छा हुआ, मनसबदार भी दाग के दुःख से बच गए। मुल्ला साहब आवेश में आकर आवश्यक और अनावश्यक सभी अवसरों पर हर एक बात को बुरा बतलाते हैं। पर इसमें संदेह नहीं की अकबर की नीयत अच्छी थी और वह अपनी प्रजा को हृदय से प्यार करता था। उसने सब के सुभीते के लिये अच्छी नीयत से यह तथा इस प्रकार के और सैकड़ों नियम प्रचलित किए थे। हाँ, वह इस बात से विवश था कि दुष्ट और बेईमान अहलकार नियमों का ठीक ठीक पालन न करके भलाई को भी बुराई बना देते थे। दाग से भी यदि दगाबाज न बाज आवें, तो वह क्या करे। अब्बुलफजल ने आईन अकबरी सन् १००६ हिजरी में समाप्त की थी। उसमें वे लिखते हैं कि राजाओं और जागीरदारों आदि सब के मिलाकर कुल बादशाही सैनिक ४४ लाख से अधिक हैं। दाग और

हुलिया लिखने की प्रथा ने बहुतों के भाग्य चमकाए हैं। बहुत से वीरों ने अपनी भलमनसत, आचार और विश्वसनीयता के कारण स्वयं बादशाह की सेवा में रहने का सौभाग्य प्राप्त किया है। पहले ये लोग एक्के (अकेले रहनेवाले) कहलाते थे; अब इनको अहदी का पद मिला है। कुछ लोगों को दाग से माफ भी रखते हैं।

वेतन

ईरानी और तूरानी को २५), भारतीय को २०) और खालसा को १५) मासिक वेतन मिलता था। इन लोगों को "बरआवुर्दी" (ऊपरी) कहते थे। जो मनसबदार स्वयं सैनिकों और घोड़ों का प्रबंध नहीं कर सकते थे, उनको बरआवुर्दी सवार दिए जाते थे। दह (दस) हजारी, हश्त (आठ) हजारी और हफ्त (सात) हजारी ये तीनों मनसब केवल शाहजादों के लिये थे। अमीरों की उन्नति की चरम सीमा पंज-हजारी थी और कम से कम दह-बाशी। मनसबदारों की संख्या ६६ थी। फारसी की अबजदवाली गणना के अनुसार "अल्लाह" शब्द से भी ६६ की संख्या का ही बोध होता है। कुछ फुटकर मनसबदार भी थे, जो यावरी या कुमकी (सहायता देनेवाले) कहे जाते थे। जो दागदार होते थे, उनकी प्रतिष्ठा अधिक होती थी। जो सैनिक देखने में सुंदर और सजीला होता था और अपने पास से घोड़ा रखता था, उससे अकबर बहुत प्रसन्न होता था। मनसबदारों का क्रम इस प्रकार चलता था—दहबाशी (१०), बीस्ती (२०), दो-बीस्ती (४०), पंजाही (५०), सेह-बीस्ती (६०) चहार-बीस्ती (८०), सदी (१००) आदि आदि। इन सबको अपने साथ घोड़े, हाथी, खच्चर, आदि जो जो रखने पड़ते थे, उनका लेखा इस प्रकार है:-

पद	घोड़े—६ वर्ग						हाथी—५ वर्ग					बारबरदारी			मासिक वेतन		
	इराकी	मुजन्निस	तुर्की	टट्टू	ताजी	जंगला	१	२	३	४	५	ऊँट	खच्चर	अराबा	प्रथम श्रेणी	द्वितीय श्रेणी	तृतीय श्रेणी
दहबाशी	×	×	२	२	×	×	×	×	×	×	×	×	×	×	१००	८०	७५
बीस्ती	×	१	१	१	२	×	×	×	×	१	×	१	×	१	१३५	१२५	११५
दोबीस्ती	१	२	२	१	१	×	×	१	×	×	×	२	×	१	२२३	२००	१८५
पंजाही	१	१	२	२	१	१	×	×	१	१	×	२	×	२	२५०	२४०	२३०
सेह-बीस्ती	१	१	२	२	१	१	×	×	१	१	×	२	×	२	३०१	२८५	२७०
चहार-बीस्ती	२	१	२	२	१	१	×	×	१	२	×	२	×	३	४१०	३८०	३५०
बूजबाशी	२	२	२	२	२	×	×	१	१	१	×	२	×	५	७००	६००	५००
पंज-हजारी	३४	३४	६८	६८	६८	६६	२०	३०	२०	२०	१०	८०	२०	१६०	३० हजार	२९ हजार	२८ हजार

सवार यदि समर्थ होता था, तो एक घोड़े से अधिक भी रख सकता था, पर पचीस से अधिक नहीं रख सकता था। चौपायों का आधा व्यय राज-कोश से मिलता था। पीछे तीन घोड़ों से अधिक की आज्ञा न रही। जो सवार एक से अधिक घोड़े रखते थे, उनको सामान ढोने के लिये एक ऊँट या बैल भी रखना पड़ता था। घोड़े के विचार से भी सैनिक के वेतन में अंतर होता था। यथा—

इराकीवालों को	...	...	३०)
मुजन्निस " "	...	...	२५)
तुर्की " "	...	...	२०)
टट्टू " "	...	...	१८)
ताजी " "	...	...	१५)
जँगला " "	...	...	१२)

प्यादे या पैदल का वेतन १२॥) से १०), ८) और ६) तक होता था। इनमें बारह हजार बंदूकची थे, जो सदा बादशाह की सेवा में उपस्थित रहते थे। बंदूकचियों का वेतन ७॥), ७) और ६।॥) होता था।

महाजनों के लिये नियम

सराफों और महाजनों के अन्याय और अत्याचार से आज-कल भी सब लोग भली भाँति परिचित हैं। उन दिनों भी वे पुराने राजाओं के सिक्कों पर मनमाना बट्टा लगाया करते थे और गरीबों का लहू चूसा करते थे। आज्ञा हुई कि सब पुराने रुपए एकत्र करके गला डालो। हमारे साम्राज्य में केवल हमारा ही सिक्का चले और नया पुराना सब बराबर समझा जाय। जो सिक्के घिस घिसाकर बहुत कम हो जाते थे, उनके लिये कुछ अलग नियम बन गए थे। प्रत्येक नगर में आज्ञा-पत्र भेज दिया गया। कुलीचखाँ को आज्ञा दी गई कि सब से मुचलके लिखा लो। पर महाजन लोग दिल के खोटे थे, इसलिये मुचलके

लिखकर भी नहीं मानते थे। पकड़े जाते थे, बाँधे जाते थे, मार खाते थे, मारे भी जाते थे; पर फिर भी अपनी करतूतों से बाज न आते थे।

अधिकारियों के नाम की आज्ञाएँ

ज्यों ज्यों अकबर का साम्राज्य बढ़ता गया, त्यों त्यों प्रबंध-कार्य भी बढ़ता गया और नई नई आज्ञाएँ तथा व्यवस्थाएँ भी होती गईं। उनमें से कुछ बातें चुन चुनकर यहाँ दी जाती हैं। शाहजादों, अमीरों और हाकिमों आदि के नाम आज्ञाएँ निकली थीं कि प्रजा की अवस्था से सदा परिचित रहो। एकांतवासी मत बनो; क्योंकि इससे बहुत सी ऐसी बातों का पता नहीं लगता, जिनका पता लगना चाहिए। जाति के जो बड़े बूढ़े हों, उनके साथ प्रतिष्ठापूर्वक व्यवहार करो। रात को जागो। सवेरे, संध्या, दोपहर और आधी रात के समय ईश्वर का ध्यान करो। नीति, उपदेश और इतिहास की पुस्तकें देखा करो। जो लोग संसार से विरक्त होकर एकांतवास करते हों अथवा गरीब हों, उनको सदा कुछ देते रहो, जिसमें उनको किसी प्रकार की कठिनता न हो। जो लोग सदा ईश्वराराधन आदि शुभ कार्यों में लगे रहते हों, समय समय पर उनकी सेवा में उपस्थित हुआ करो और उनसे आशीर्वाद लिया करो। अपराधियों के अपराधों पर विचार किया करो और यह देखा करो कि किसे दंड देना उचित है और किसे छोड़ देना अच्छा है; क्योंकि कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जिनसे कभी कभी ऐसे अपराध हो जाते हैं जिनकी कहीं चर्चा करना भी ठीक नहीं होता।

जासूसों और गुप्तचरों का बहुत ध्यान रखो। जो कुछ करो स्वयं पता लगाकर करो। पीड़ितों के निवेदन सुनो। अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के भरोसे पर सब काम न छोड़ो। प्रजा को प्रसन्न रखो। कृषि की उन्नति और गाँवों की आबादी बढ़ाने का विशेष ध्यान रखो। प्रजा में से प्रत्येक का अलग अलग हाल जानो और उनकी अवस्था

का ध्यान रखो। नजराना आदि कुछ मत लो। लोगों के घरों में सैनिक बलपूर्वक जाकर उतरने न पावें। शासन-कार्य सदा परामर्श लेकर किया करो। लोगों के धार्मिक विश्वास आदि में कभी बाधक मत हो। देखो, यह संसार क्षणिक है। इसमें मनुष्य अपनी हानि नहीं सह सकता। भला फिर धार्मिक विषयों में वह हस्तक्षेप कब सहन करेगा! वह कुछ तो समझा ही होगा। यदि उसका पक्ष सत्य है, तो तुम सत्य का विरोध करते हो; और यदि तुम्हारा पक्ष सत्य है, तो वह बेचारा अज्ञान है। उसपर दया करो और उसे सहायता दो। कभी आपत्ति या हस्तक्षेप न करो। प्रत्येक धर्म के माननीय पुरुषों से प्रेम करो।

शिल्प और कला आदि की उन्नति के लिये पूरा पूरा उद्योग करते रहो। शिल्पियों और कारीगरों का आदर करो, जिसमें शिल्प नष्ट न होने पावे। प्राचीन वंशों के उदर-निर्वाह का ध्यान रखो। सैनिकों की आवश्यकताओं आदि पर दृष्टि रखो। आप भी तीर-अंदाजी आदि सैनिकों के से व्यायाम करते रहो। सदा आखेट आदि ही मत किया करो। आखेट केवल इसलिये होना चाहिए, जिसमें अस्त्र-शस्त्र आदि चलाने का अभ्यास बना रहे।

सूर्य के उदित होने के समय और आधी रात के समय भी नौबत बजा करे; क्योंकि वास्तव में सूर्योदय आधी रात के ही समय हुआ करता है। सूर्य-संक्रमण के समय तोपें और बंदूकें सर हुआ करें, जिसमें सब लोग सचेत हो जायँ और ईश्वराराधन करें। यदि कोतवाल न हो, तो उसके काम स्वयं देखो और करो। ऐसे कार्यों में संकोच मत करो। ऐसे काम ईश्वर की सेवा समझकर किया करो; क्योंकि मनुष्यों की सेवा ईश्वर की सेवा है।

कोतवाल को उचित है कि प्रत्येक नगर और गाँव के कुल महल्लों, घरों और घरवालों के नाम लिख ले। सब लोग परस्पर एक दूसरे की रक्षा किया करें। हर महल्ले में एक मीर-महल्ला हुआ करे।

जासूस भी लगाए रखो, जो दिन रात सब जगह का हाल पहुँचाते रहें। विवाह, मृत्यु जन्म, आदि सब बातें लिखते रहो। गलियों, बाजारों, पुलों और घाटों तक पर आदमी रहें। रास्तों की ऐसी व्यवस्था रहे कि यदि कोई भागना चाहे, तो इस प्रकार न निकल जाय कि तुमको पता भी न लगे।

यदि चोर आवे, आग लगे, अथवा और कोई विपत्ति आवे, तो अपने पड़ोसी की सहायता करो। मीर-महल्ला और खबरदार (जासूस) भी तुरंत उठकर सहायता के लिये दौड़ें। यदि वे जानें छिपा बैठें, तो अपराधी हों। बिना पड़ोसी, मीरमहल्ला और खबरदार को सूचना दिए कोई परदेस न जाय; और न इनको सूचित किए बिना कोई किसी के यहाँ ठहर सके। व्यापारी, सैनिक, यात्री सब प्रकार के आदमियों को देखते रहो। जिनको कोई जानता न हो, उनको अलग सराय में बसाओ। वही विश्वसनीय लोग दण्ड भी नियत करें। महल्ले के रईस और भले आदमी भी इन बातों के लिये उत्तरदायी रहें। प्रत्येक व्यक्ति की आय और व्यय पर ध्यान रखो। यदि किसी का व्यय उसकी आय से अधिक हो, तो समझ लो कि अवश्य कुछ दाल में काला है। इन बातों को व्यवस्था और प्रजा की उन्नति के कामों के अंतर्गत समझा करो। रुपए खींचने के विचार से ऐसे काम मत किया करो।

बाजारों में दलाल नियत कर दो। जो कुछ क्रय-विक्रय हो, वह मीर-महल्ला और खबरदार महल्ला को बिना सूचना दिए न हो। खरीदने और बेचनेवाले का नाम रोजनामचे में लिखा जाय। जो चुपचाप लेन देन करे, उस पर जुरमाना। प्रत्येक महल्ले में और बस्ती के चारों ओर चौकीदार रखो। नए आदमी पर बराबर दृष्टि रखो। चोर, जेब-कतरे, उचक्के, उठाईगीरे का नाम भी न रहने पावे। अपराधी को माल समेत उपस्थित करना कोतवाल का काम है। यदि कोई लावारिस मर जाय या कहीं चला जाय, तो पहले उसके माल से

सरकारी ऋण वसूल करो। फिर जो बचे, वह उसके उत्तराधिकारियों को दो। यदि उत्तराधिकारी न हो, तो अमीन के सपुर्द कर दो और दरबार में सूचना दे दो। यदि उत्तराधिकारी आ जाय, तो वह माल उसे दे दिया जाय। इसमें भी अच्छी नीयत से काम करो। रूमा का ही दस्तूर यहाँ भी न हो जाय कि जो आया, सो जब्त। मुल्ला साहब इसपर यह तुर्रा लगाते हैं कि जब तक बैतुलमाल के दारोगा का पत्र नहीं होता, तब तक मृत शरीर गाड़ा भी नहीं जाता; और कब्रिस्तान शहर के बाहर बना है और उसका मुँह पूर्व की ओर है।

शराब के विषय में बड़ी ताकीद रहे। उसकी बू भी न आने पावे। पीनेवाले, बेचनेवाले, खींचनेवाले सब अपराधी। ऐसा दंड दो कि सब की आँखें खुल जायँ। हाँ, यदि कोई औषध के रूप में या बुद्धि-वर्धन के लिये काम में लावे, तो न बोलो! भाव सस्ता रखने के लिये पूरा उद्योग करो। धनवान् लोग माल से घर न भरने पावें।

ईदों के विषय में भी नियम थे। सब से बड़ी ईद या प्रसन्नता का दिन वह माना जाता था, जिस दिन सौर वर्ष का आरंभ होता था। इसके बाद और भी कई ईदें थीं। दो एक दिन शबबरात की भाँति दीपोत्सव करने की भी आज्ञा थी।

आज्ञा थी कि स्त्री बिना आवश्यकता के घोड़े पर न चढ़े। नदियों और नहरों आदि पर पुरुषों और स्त्रियों के नहाने और पनहारियों के पानी भरने को अलग अलग घाट बनाए जायँ। सौदागर बिना आज्ञा के देश से घोड़ा न निकालकर ले जा सके। भारत का गुलाम भी और कहीं न जाने पावे। चीजों का भाव वही रहे, जो राज्य की ओर से निश्चित हो।

बिना सूचना दिए कोई विवाह न हुआ करे। सर्व साधारण के लिये यह नियम था कि वर और कन्या को कोतवाली में दिखा दो। यदि पुरुष से स्त्री बारह वर्ष बड़ी हो, तो पुरुष उससे संबंध न करे, क्योंकि इससे निर्बलता आती है। सोलह वर्ष की अवस्था से

पहले लड़के का और चौदह वर्ष की अवस्था से पहले लड़की का विवाह न हो। चाचा और मामा आदि की कन्या से विवाह न हो; क्योंकि इसमें प्रेम कम होता है और संतान दुर्बल होती है। जो स्त्री सदा बाजारों में खुल्लम खुल्ला बिना घूँघट या बुरके के दिखाई दिया करे, अथवा पति से सदा लड़ाई झगड़ा करती रहे, उसे शैतानपुरे में भेज दो। यदि आवश्यकता हो, तो संतान को रेहन रख सकते थे; और जब हाथ में रुपया आता था, तब उसे छुड़ा लेते थे। हिंदू का लड़का यदि बाल्यावस्था में बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया हो, तो बड़ा होने पर वह जो धर्म चाहे, ग्रहण कर सकता है। जो व्यक्ति जिस धर्म में जाना चाहे, चला जाय। कोई रोक टोक न हो। यदि हिंदू स्त्री मुसलमान के घर में बैठ जाय, तो उसे उसके संबंधियों के यहाँ पहुँचा दो। मंदिर, शिवालय, आतिशखाना, गिरजा जो चाहे सो बनावे, कोई रोक टोक न हो।

इसके अतिरिक्त शासन, सेना, माल, घर, टकसाल, प्रजा, समाचार-लेखन, चौकी, बादशाह के समय-विभाग, खाने-पीने, सोने-जागने, उठने-बैठने आदि के संबंध में भी अनेक नियम थे जो आईन अकबरी में दिए हुए हैं। तात्पर्य यह कि कोई बात कानूनों और नियमों आदि के बंधन से नहीं बची थी। मुल्ला साहब इन बातों की भी हँसी उड़ाते हैं। इसका कारण यह है कि उस समय के लिये ये सब बिलकुल नई बातें थीं; और जो बात नई जान पड़ती है, उसपर लोगों की नजर अटकती है। उस समय भी जब लोग मिलकर बैठते होंगे तब इन सब बातों की अवश्य चर्चा होती होगी। और वे लोग योग्य और शिक्षित होते थे, इसलिये एक एक बात के साथ हँसी-दिल्लगी भी हुआ करती होगी।

एक अवसर पर आज्ञा हुई कि लाहौर के किले में दीवानआम के सामने जो चबूतरा है, उसपर एक छोटी सी मस्जिद बनवा दो; क्योंकि कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो नमाज के समय हमारे

सामने रहते हैं और किसी आवश्यक काम में लगे होते हैं। नमाज के समय ऐसे लोगों को दूर न जाना पड़े। हमारे सामने नमाज पढ़ें और फिर हाजिर हो जायँ। हकीम मिसरी को इसपर भी एक दिल्लगी सूझी और उन्होंने एक पद्य कह डाला, जिसका आशय यह था कि बादशाह ने अपने सामने जो मसजिद बनवाई है, उसमें यह मसलहत है कि नमाज पढ़ने वालों की भी गिनती हो जाय।

हकीम साहब की बातें मिसरी की डालियाँ होती थीं। उनका जो कुछ हाल मालूम हो सका है, वह अलग परिशिष्ट में दिया गया है। उन्हें पढ़ो और मुँह मीठा करो।

हिंदुओं के साथ अपनायत

अकबर यद्यपि तुर्क था, तथापि भारत में आकर उसने हिंदुओं के साथ जिस प्रकार अपनायत पैदा की, वह ऐसी बुद्धिमत्ता से और ऐसे अच्छे ढंग से की थी कि पुस्तकों में लिखी जाने योग्य है; और उसका भी एक विशिष्ट आधार है। जब हुमायूँ ईरान में गया था और शाह तहमास्प से उसकी भेंट हुई थी, उस समय एक दिन दोनों बादशाह शिकार के लिये निकले थे। एक स्थान पर थककर उतर पड़े। शाही फर्राश ने गालीचा बिछा दिया। शाह बैठ गए। हुमायूँ के घुटने के नीचे फर्श नहीं था। जब तक शाह उठें और गालीचा खोलकर बिछावें, तब तक हुमायूँ के एक सेवक ने झट अपने तीरदान का कारचोबी गिलाफ छुरी से फाड़कर अपने बादशाह के नीचे बिछा दिया। तहमास्प को उसकी यह बात बहुत पसंद आई और उसने कहा—"भाई हुमायूँ, तुम्हारे साथ ऐसे ऐसे जान देनेवाले नमकहलाल नौकर थे। फिर भी देश इस प्रकार तुम्हारे हाथ से निकल गया, इसका क्या कारण है?" हुमायूँ ने कहा—"भाइयों की ईर्ष्या और शत्रुता ने सारा काम बिगाड़ दिया। सेवक लोग एक ही स्वामी के पुत्र समझकर कभी इधर हो जाते थे और कभी उधर।" शाह ने पूछा—"तो फिर क्या

इस देश के लोगों ने तुम्हारा साथ नहीं दिया ?" हुमायूँ ने कहा—"सारी प्रजा विजातीय और विधर्मी है; और वही देश की असल मालिक है, वह साथ नहीं दे सकती।" तहमास्प ने कहा—"भारत में दो जातियों के लोग बहुत हैं, एक पठान और दूसरे राजपूत। यदि ईश्वर सहायता करे और इस बार फिर वहाँ पहुँचो, तो अफगानों को तो व्यापार में लगा दो और राजपूतों को दिलासा देकर प्रेमपूर्वक अपने साथ मिला लो"। (देखो मआसिर-उल्-उमरा।)

हुमायूँ जब भारत में आया, तब उसे मृत्यु ने ठहरने न दिया और वह इस उपाय को काम में न ला सका। हाँ, अकबर ने इस उपाय से काम लिया और बहुत अच्छी तरह से लिया। वह इस बारीकी को समझ गया था कि भारत हिंदुओं का घर है। मुझे इस देश में ईश्वर ने बादशाह बनाकर भेजा है। यदि केवल विजय प्राप्त करना हो, तब तो यह होगा कि देश को तलवार के जोर से अपने अधीन कर लिया और देशवासियों को दबाकर उजाड़ डाला। परंतु जब मैं इसी घर में रहने लगूँ, तब यह संभव नहीं है कि सारे लाभ और सुख तो मैं और मेरे अमीर भोगें और इस देश के निवासी दुर्दशा सहें; और फिर भी मैं आराम से रह सकूँ। देशवासियों को बिलकुल नष्ट और नामशेष कर देना और भी अधिक कठिन है। वह यह भी सोचता था कि मेरे पिता के साथ मेरे चाचाओं ने क्या किया। उन चाचाओं की संतानें और उनके सेवक यहाँ उपस्थित ही हैं। इस समय जो तुर्क मेरे साथ हैं, वे सदा से दुधारी तलवार हैं। जिधर लाभ देखा, उधर फिर गए। इसीलिये जब उसने देश का शासन अपने हाथ में लिया, तब ऐसा ढंग निकाला जिससे साधारण भारतवासी यह न समझें कि विजातीय तुर्क और विधर्मी मुसलमान कहीं से आकर हमारा शासक बन गया है। इसलिये देश के लाभ और हित पर उसने किसी प्रकार का कोई बंधन नहीं लगाया। उसका साम्राज्य एक ऐसी नदी था, जिसका किनारा हर जगह से घाट था। आओ और

खूब अघाकर पानी पीओ। भला संसार में ऐसा कौन है जो जान रखता हो और नदी के किनारे न आवे!

जब देशों पर विजय प्राप्त करने के उपरांत बहुत से झगड़े मिट गए, और रौनक तथा सजावट को इसका दरबार सजाने का अवसर मिला, तब हजारों राजा, महाराज, ठाकुर और सरदार आदि हाजिर होने लगे। दरबार उन जवाहिर की पुतलियों से जगमगा उठा। उदार बादशाह ने उनकी प्रतिष्ठा और पद आदि का बहुत ध्यान रखा। वह सद्व्यवहार का पुतला था, मिलनसारी उसका एक अंग थी। उन सब लोगों के साथ उसने इस प्रकार व्यवहार किया, जिससे उन लोगों को आगे के लिये उससे बहुत बड़ी बड़ी आशाएँ बँध गईं। बल्कि उन लोगों के साथ और जो लोग आए, उनके साथ भी ऐसा व्यवहार किया कि जमाना उसकी ओर झुक पड़ा। भारत के पंडित, कवीश्वर, गुणी, जो आए, वे ऐसे प्रसन्न होकर गए कि कदाचित् अपने राजाओं के दरबार से भी ऐसे प्रसन्न होकर न निकलते होंगे। साथ ही सब लोगों को यह भी मालूम हो गया कि इसका यह व्यवहार हमें केवल फुसलाने के लिये नहीं है। इसका अभिप्राय यही है कि हमें अपना बना ले और आप हमारा हो रहे। और अकबर की उदारता और दिन रात का अपनायत का व्यवहार सदा उनके इस विचार का समर्थन किया करता था।

बढ़ते बढ़ते यहाँ तक नौबत पहुँची कि अपनी जाति और पराई जाति में कोई अंतर ही न रह गया। सेना और शासन विभाग के बड़े बड़े पद तुर्कों के समान ही हिंदुओं को भी मिलने लगे। दरबार में हिंदू और मुसलमान सब बराबर बराबर दिखाई देते थे[1]। राज-

---

१ परिशिष्ट में राजा टोडरमल का हाल देखो। जब राजा साहब को प्रधान सचिव के अधिकार मिले, तब लोगों ने कैसी शिकायतें कीं और नेकनीयत बादशाह ने उन लोगों को क्या उत्तर दिया।

दूतों का प्रेम उनकी प्रत्येक बात को बल्कि रीति रसम और पहनावे को भी अकबर की आँखों में सुंदर दिखाने लगा। उसने चोगा और अम्मासा उतारकर जामा और खिड़कीदार पगड़ी पहनना आरम्भ कर दिया। दाढ़ी को छुट्टी दे दी और तख्त तथा देहीम या मुसलमानी ढंग के ताज को छोड़कर वह सिंहासन पर बैठने और हाथी पर चढ़ने लगा। फर्श, सवारियाँ और दरबार के सब सामान हिंदुओं के से हो गए। हिंदू और हिंदुस्तानी हर समय सेवा में लगे रहते थे। जब बादशाह का यह रंग हुआ, तब उसके अमीरों और सरदारों, ईरानियों और तूरानियों सब का वही ढंग और वही पहनावा हो गया, और तब पान की गिलौरी उसका आवश्यक शृंगार हो गई[1]। तुर्कों का दरबार इंद्रसभा का तमाशा था।

नौरोज (नव वर्षारंभ) के समय आनंदोत्सव करना तो ईरान और तूरान की प्राचीन प्रथा है ही; पर उसने उसे भी हिंदुओं की प्रथा का रंग देकर हिंदू बना डाला। सौर और चांद्र दोनों गणनाओं के अनुसार जब जब उसकी बरसगाँठ पड़ती थी, तब तब उत्सव होता था। उस समय तुलादान भी होता था। बादशाह सात अनाजों और सात धातुओं आदि का तुलादान करता था। ब्राह्मण बैठकर हवन करते थे और सब चीजों की गठरियाँ बाँधकर आशीर्वाद देते हुए घर जाते थे। दशहरे पर भी आते थे, आशीर्वाद देते थे, पूजन कराते थे और माथे पर टीका लगाते थे। जड़ाऊ राखी बादशाह के हाथ में बाँधते थे। बादशाह हाथ पर बाज बैठाता था। किले के बुरजों पर शराब रखी जाती थी। बादशाह के साथ साथ उसके दरबारी भी इसी रंग में रँगे गए और पान के बीड़ों ने सब के मुँह लाल कर दिए। गोमांस, लहसुन, प्याज आदि अनेक पदार्थ हराम हो गए और बहुत से

---

१ देखो अलीकुलीखाँ का हाल, उसका कटा हुआ सिर किस प्रकार पहचाना गया था।

दूसरे पदार्थ हलाल हो गए। प्रातः काल जमना के किनारे पूर्व ओर की खिड़कियों में बादशाह बैठता था, जिसमें सूर्य के दर्शन हों। भारत-वासी प्रातः काल के समय राजा के दर्शनों को बहुत शुभ समझते हैं। जो लोग जमना में स्नान करने आते थे, वे सब स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे हजारों की संख्या में सामने आते थे, हाथ जोड़ते थे और "महाबली बादशाह सलामत" कहकर प्रसन्न होते थे। वह भी उनको अपनी संतान से बढ़कर समझता था और उनको देखकर बहुत प्रसन्न होता था; और उसका प्रसन्न होना भी उचित ही था। जिसके दादा बाबर[1] को उसकी जाति के लोग इस दुर्दशा के साथ उसके पैतृक देश से निकालें, और पाँच छः पीढ़ियों की सेवाओं पर जो इस प्रकार मिट्टी डालें, उसके साथ जब विदेशी और विजाती इस प्रकार प्रेमपूर्वक व्यवहार करें, तो उनसे बढ़कर प्रिय और कौन हो सकता था। और वह यदि इनको देखकर प्रसन्न न होता, तो और किसको देखकर प्रसन्न होता!

अकबर ने तो सब कुछ किया ही, पर राजपूतों ने ने भी निष्ठा, सेवा और भक्ति की पराकाष्ठा कर दी। यह सैकड़ों में से एक बात है, जो जहाँगीर ने भी अपनी तुजुक जहाँगीरी में लिखी है। अकबर ने आरंभ में भारतीय प्रथाओं को केवल इस प्रकार ग्रहण किया था कि मानों एक नए देश का नया मेवा है या नए देश का नया शृंगार है। अथवा यह कि अपने प्यारे और प्यार करनेवालों की प्रत्येक बात प्रिय जान पड़ती है। पर इन बातों ने उसे उसके धार्मिक जगत् में बहुत बदनाम कर दिया और उसपर धर्मभ्रष्ट होने का कलंक इस प्रकार लगाया गया कि आज तक अन-जान और निर्दय मुल्ला उस बदनामी का पाठ उसी प्रकार पढ़े जाते हैं। इस अवसर पर वास्तविक कारण न लिखना और उस बादशाह के

---

१ परिशिष्ट में देखो तैमूरी शाहजादों का हाल।

साथ अन्याय करना मुझ से नहीं देखा जाता। मेरे मित्रो, कुछ तो तुमने समझ लिया और कुछ आगे चलकर समझ लोगे कि उन लोभी विद्वानों के कलुषित हृदय ने कितना शीघ्र उनकी और उनके द्वारा इस्लाम धर्म की दुर्दशा कर दिखाई।

इन अयोग्यों का रंग ढंग देखकर उस नेकनीयत बादशाह को इस बात का अवश्य ध्यान हुआ होगा कि ईर्ष्या और द्वेष आदि केवल पुस्तकें पढ़नेवाले विद्वानों का प्रधान अंग हैं। अच्छा, अब इनको तलाश करूँ और जो लोग शुद्ध हृदय के और उदार कहलाते हैं, उनमें टटोलूँ; कदाचित् उनमें ही कुछ मिल जायँ। इसलिये आस पास के सभी देशों से अच्छे अच्छे और प्रसिद्ध त्यागी तथा फकीर आदि बुलवाए। प्रत्येक से अलग अलग एकांत में बहुत कुछ वार्तालाप किया। पर जिसको देखा, वह शरीर पर तो खाक लपेटे हुए था, पर उसके अंदर ख़ाक न था। खुशामद करता था और आप ही दो चार बीघा मिट्टी माँगता था। अकबर तो इस बात की आकांक्षा रखता कि यह कोई त्याग-मार्ग की बात करेगा अथवा परमार्थ का कोई मार्ग दिखलावेगा। उन्हें देखा तो वे स्वयं उससे माँगने आते थे। कहाँ की बात और कहाँ की करामात। बाकी रहा व्यवहार, संतोष, ईश्वर का भय, सहानुभूति, उदारता, साहस आदि ऊपरी बातें, सो इनसे भी उनको ख़ाली पाया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे अनेक प्रकार के संदेह होने लगे और उसकी आशंकाएँ न जाने कहाँ से कहाँ दौड़ गईं।

सरहिंद के रहनेवाले शेख अब्दुलअजीज देहलवी के संबंध में मुल्ला साहब लिखते हैं कि वे बहुत प्रसिद्ध फकीरों में से थे, इसलिये बुलवाए गए। उन्हें बहुत आदरपूर्वक इबादतखाने (प्रार्थना-मंदिर) में उतारा। उन्होंने नमाज माकूस (उलटी नमाज, अर्थात् अंत की ओर से आरंभ की ओर पढ़ना) दिखाई और सिखाई; और बादशाह के हाथ बेच भी डाली! महल में कोई स्त्री गर्भवती थी। कहा कि पुत्र

होगा ; वहाँ कन्या हुई। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई अनुचित व्यवहार भी किए, जिनके लिये दुःख प्रकट करने के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता।

पंजाब से शेख नत्थी नामक एक अफगान बादशाह के बुलवाने पर आए थे। पर इस प्रकार कि बादशाह की आज्ञा सुनते ही उसके पालन के विचार से तुरंत उठ खड़े हुए और चल पड़े। उनके लिये जो सवारी भेजी गई थी, वह तो पीछे रह गई और आप अदब के विचार से पचीस तीस पड़ाव बादशाही प्यादों के साथ पैदल आए; और फतहपुर पहुँचकर शेख जमाल बख्तियारी के यहाँ उतरे। कहला भेजा कि मैंने बादशाह की आज्ञा का पालन तो कर दिया है, पर मेरी मुलाकात किसी बादशाह के लिये अभी तक शुभ नहीं हुई। बादशाह ने तुरंत उनके लिये कुछ इनाम भेज दिया और कहला दिया कि यदि यही बात थी, तो आपको यहाँ तक कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी। बहुत से लोग तो ऐसे भी थे, जो दूर ही दूर से अलग हो गए। ईश्वर जाने, उनमें कुछ गुण था भी या नहीं।

एक महात्मा बहुत प्रसिद्ध और उच्च कुल के थे। बादशाह ने खड़े होकर उनका स्वागत किया था और उनके साथ बहुत ही प्रतिष्ठापूर्ण व्यवहार किया था। पर जब बादशाह ने उनसे कुछ पूछा, तब उन्होंने कानों की ओर संकेत करके कहा कि मैं कुछ ऊँचा सुनता हूँ। ब्रह्मज्ञान, धर्म, नीति आदि जो विषय छिड़ता था, आप चट कह देते थे—"मैं कुछ ऊँचा सुनाता हूँ।" अंत में वे भी बिदा किए गए। जिनको देखा, यही मालूम हुआ कि मसजिद या खानकाह में बैठकर केवल दूकानदारी किया करते हैं; और उनमें तत्व कुछ भी नहीं है।

कुछ दुष्टों ने यह प्रवाद फैला दिया था कि पुस्तकों में लिखा है कि प्राचीन काल से धर्मों में जो प्रभेद और विरोध चले आते हैं, उनको दूर करनेवाला आवेगा और सबको मिलाकर एक कर देगा। वही अब अकबर पैदा हुआ है। कुछ लोगों ने तो प्राचीन ग्रंथों के

संकेतों से यह भी प्रमाणित कर दिया कि यह घटना सन् ९९० हि० में होगी।

एक और विद्वान् फावे से आए थे, जो मक्के के शरीफ (प्रधान अधिकारी) का एक लेख लेकर आए थे। उसमें यहाँ तक हिसाब लगाया गया था कि पृथ्वी की आयु सात हजार वर्ष की है; सो वह पूरी हो चुकी। अब हजरत इमाम मेंहदी के प्रकट होने का समय है; सो अकबर ही हैं।

अब्दुल सलीम नाम के एक बहुत बड़े काजी थे, जिनका वंश सारे देश में बहुत प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध था। पर आपकी यह दशा थी कि दिन रात शराब पीते थे, बाजी लगाकर शतरंज खेलते थे, रिश्वतें खूब लेते थे और तमस्सुकों पर मनमाना सूद लिख देते थे और वसूल कर लेते थे[1]। कासिम खाँ फौजी ने उनके इन कृत्यों के संबंध में कुछ कविता भी की थी। सुशील और अनजान बादशाह, जो धर्म का तत्व जानना चाहता था, ऐसी ऐसी बातों को देखकर परेशान हो गया।

गुजरात प्रांत के नौसारी नामक स्थान से कुछ अग्निपूजक पारसी आए थे। वे अपने साथ जरतुश्त के धर्म की पुस्तकें भी लाए थे। बादशाह उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। उनसे पारसी धर्म की बहुत सी बातें सुनीं और जानीं। मुल्ला बदायूनी कहते हैं कि महल के पास ही अग्नि-मंदिर बनवाया था और आज्ञा दी थी की उसमें की अग्नि कभी बुझने न पावे; क्योंकि यह ईश्वर की सबसे बड़ी देन और उसके प्रकाशों में से एक मुख्य प्रकाश है। सन् २५ जलूसी में अकबर ने निस्संकोच भाव से अग्नि को प्रणाम किया। संध्या समय जब दीपक आदि जलाए जाते थे, तब आदर के लिये बादशाह और

१ मुसलमानों में सूद लेना हराम है। पर जो लोग सूद लेना चाहते थे, वे इन काजी साहब से धार्मिक व्यवस्था ले लिया करते थे।

उसके पास रहनेवाले सब मुसाहब उठ खड़े होते थे। इस संबंध की सारी व्यवस्था शेख अब्बुलफजल को सौंपी गई थी। इन पारसियों को नौसारी में जागीर के रूप में चार सौ बीघा जमीन दी गई थी, जो अब तक उनके अधिकार में चली आती है। अकबर और जहाँगीर के प्रमाणपत्र उनके पास हैं, जो इस ग्रंथ के मूल लेखक हजरत आजाद ने स्वयं देखे थे।

युरोपियनों का आगमन और उनका आदर-सत्कार

यद्यपि अकबर ने विद्या और शिल्प-कला संबंधी ग्रंथ आदि नहीं पढ़े थे, तथापि वह अच्छे अच्छे विद्वानों से भी बढ़कर विद्या और कला आदि का प्रेमी था और सदा नई नई बातों और आविष्कारों के मार्ग ढूँढ़ता रहता था। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि जिस प्रकार मैं वीरता, दानशीलता और देशों पर विजय प्राप्त करने में प्रसिद्ध हूँ, और जिस प्रकार मेरा देश प्राकृतिक दृष्टि से सब प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करने और उपजाऊ होने के लिये प्रसिद्ध है, उसी प्रकार विद्या और कला आदि में भी मेरी प्रसिद्धि हो। उसे यह भी मालूम हो गया था कि विद्या और कला के सूर्य ने युरोप में सबेरा किया है। इसलिये वह वहाँ के विद्वानों और दक्षों की चिंता में रहा करता था। यह एक प्राकृतिक नियम है कि जो ढूँढ़ता है, वही पाता भी है। उसके लिये साधन आप से आप उत्पन्न हो जाते हैं। इस संबंध में जो सुयोग आए थे, उनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जाता है।

सन् ९७९ हि० में इब्राहीम हुसैन मिरजा ने विद्रोह करके सूरत बंदर के किले पर अधिकार कर लिया। बादशाही सेना ने वहाँ पहुँचकर घेरा डाला। स्वयं अकबर भी चढ़ाई करके वहाँ पहुँचा। उन दिनों युरोप के व्यापारियों के जहाज वहाँ आया जाया करते थे।

मिरज़ा ने उन्हें लिखा कि यदि तुम लोग इस समय आकर मेरी सहायता करो, तो मैं तुम्हें यह किला दे दूँगा। वे लोग आए, पर बड़े ढंग से आए। अपने साथ बहुत से विलक्षण और नए नए पदार्थ भेंट के रूप में लाए। जब लड़ाई के मैदान में पहुँचे, तब देखा कि सामने का पल्ला भारी है; इनके मुकाबले में हम विजयी न हो सकेंगे; इसलिये झट रंग बदलकर राजदूत बन गए और कहने लगे कि हम तो अपने राज्य की ओर से दूतत्व करने के लिये आए हैं। दरबार में पहुँचकर उन्होंने बहुत से पदार्थ भेंट किए और बहुत सा इनाम तथा पत्र का उत्तर लेकर चलते बने।

अकबर की आविष्कार-प्रिय प्रकृति कभी निश्चल न रहती थी। आज कल के कलकत्ते और बंबई की भाँति उन दिनों गोआ और सूरत ये दो बंदर थे, जहाँ एशिया और युरोप के देशों के जहाज़ आकर ठहरा करते थे। उक्त युद्ध के कई वर्षों के उपरांत अकबर ने हाजी हबीबुल्ला काशी को बहुत सा धन देकर गोआ भेजा। उनके साथ अनेक विषयों के अच्छे अच्छे पंडित और शिल्पकार भी थे। ये लोग इसलिये भेजे गए थे कि गोआ में जाकर कुछ दिनों तक रहें और वहाँ से युरोप की बनी हुई अच्छी अच्छी चीजें लेकर आवें। इन लोगों से यह भी कह दिया गया था कि यदि युरोप के कुछ कारी-गर और शिल्पी यहाँ आ सकें, तो उनको भी अपने साथ लेते आना। सन् ९८४ हि० में ये लोग वहाँ से लौटे। इनके साथ अनेक प्रकार के नए और विलक्षण पदार्थों के अतिरिक्त बहुत से कारीगर और शिल्पी भी थे। जिस समय इन लोगों ने नगर में प्रवेश किया था, उस समय मानों विलक्षण वस्तुओं और विलक्षण मनुष्यों की एक बारात सी बन गई थी। नगर के हजारों युवक और वृद्ध इनके साथ साथ चल रहे थे। बीच में बहुत से युरोपियन अपने देश के वस्त्र पहने हुए थे। वे लोग अपने देश के बाजे बजाते हुए नगर में घूसकर दरबार में उपस्थित हुए। अरगन बाजा पहले पहल उन्हीं के साथ भारत में आया था।

उस समय के इतिहासकार लिखते हैं कि इस बाजे को देखकर सब लोग चकित हो गए थे।

इन कारीगरों और शिल्पियों ने अकबर के दरबार में जो आदर और प्रतिष्ठा पाई होगी, उसका समाचार युरोप के प्रत्येक देश में पहुँचा होगा। वहाँ भी बहुत से लोगों के मन में आशाओं का संचार हुआ होगा। उनमें ने कुछ लोग हुगली बंदर तक भी आ पहुँचे होंगे। अमीरों और दरबारियों की कारगुजारी जिधर बादशाह का शौक देखती है, उधर ही पसीना टपकाती है। अब्बुलफजल ने अकबरनामे में लिखा है कि सन् २३ जलूसी में हुसैनकुली खाँ ने कूचबिहार के राजा से अधीनतासूचक पत्र लिखवाकर भेजा और उसके साथ ही उस देश के बहुत से नए और अद्भुत पदार्थ भेजे। ताब बारसो[1] नामक युरोपियन व्यापारी भी दरबार में उपस्थित हुआ; और बासोबार्न[2] तो बादशाह की सुशीलता और गुण देखकर चकित रह गया। अकबर ने भी उन लोगों की बुद्धिमत्ता और सभ्यता का अच्छा आदर किया।

सन् ३५ जलूसी के हाल में अब्बुलफजल लिखते हैं कि पादरी फरैबतोन[3] गोआ बंदर से उतरकर दरबार में उपस्थित हुए। वे अच्छे बुद्धिमान् और बहुत से विषयों के पंडित थे। होनहार शाहजादे उनके शिष्य बनाए गए। अनेक यूनानी ग्रंथों के अनुवाद की सामग्री एकत्र की गई और शाहजादों को सब बातों की जानकारी

---

१ यह नाम संदिग्ध है। ईलियट के अनुसार मूल में "परताब बार" है। Elliot's History of India, Vol. VI, p. 59.

२ इस नाम में भी संदेह है। ईलियट के अनुसार मूल में 'बसूर बा" है। Ibid.

३ यह नाम भी ठीक नहीं जान पड़ता। ईलियट के अनुसार मूल में "फरमलियून" (فرملیون) हैं। Ibid, p. 85.

कराने की व्यवस्था की गई। इन पादरी महाशय के अतिरिक्त और भी बहुत से फिरंगी, जरमन और हबशी आदि अपने अपने देश से भेंट करने के लिये अनेक उत्तमोत्तम पदार्थ लाए थे। अकबर देर तक इन सबको देखकर प्रसन्न होता रहा।

सन् ४० जलूसी में फिर कुछ लोग उसी बंदर से आए थे और अपने साथ अनेक नवीन और अद्भुत पदार्थ लाए थे। उनमें कुछ बुद्धिमान् ईसाई पादरी भी थे, जिनपर बादशाह ने बहुत कृपा की थी।

मुल्ला साहब लिखते हैं कि ईसाइयों के धार्मिक आचार्य पादरी लोग आए। ये लोग समय को देखकर आज्ञाओं में परिवर्तन कर सकते हैं और बादशाह भी इनकी आज्ञाओं का विरोध नहीं कर सकता। ये लोग अपने साथ इंजील लाए थे और इन्होंने अनेक प्रमाणों तथा युक्तियों से अपने धार्मिक सिद्धांतो का समर्थन करके ईसाई धर्म का प्रचार आरंभ किया। इन लोगों का बहुत आदर सत्कार हुआ। बादशाह इन लोगों को प्रायः दरबार में बुलाया करता था और धार्मिक तथा सांसारिक विषयों पर इनकी बातें सुना करता था। वह उनसे तौरेत और इंजील के अनुवाद भी कराना चाहता था। अनुवाद का कार्य आरंभ भी हो गया था, पर पूरा न हो सका। शाहजादा मुराद को उनका शिष्य भी बना दिया। एक और स्थान पर मुल्ला साहब फिर लिखते हैं कि जब तक ये लोग रहे, तब तक अकबर इनपर बहुत कृपा रखता था। ये लोग अपनी ईश-प्रार्थना के समय कई प्रकार के बाजे बजाते थे, जो अकबर ध्यान से सुनता था। मालूम नहीं, शाहजादे जो भाषा सीखते थे, वह रूमी थी या इब्रानी। मुल्ला साहब ने यद्यपि सन् नहीं लिखा है, तथापि लक्षणों से जान पड़ता है कि शाहजादा मुराद पादरी फरेबतोन का ही शिष्य बनाया गया था। शायद वे उसे अपनी यूनानी भाषा सिखाते होंगे, जिसका कुछ संकेत अब्बुलफ़ज़ल ने भी किया है। यह सब कुछ है, पर हमारी पुस्तकों से यह पता नहीं चलता कि इन लोगों के द्वारा किन किन पुस्तकों

के अनुवाद हुए थे। हाँ, खलीफा सैयद मुहम्मद हसन साहब के पुस्तकालय में मैंने एक पुस्तक अवश्य ऐसी देखी थी, जो अकबर के समय में लैटिन भाषा से भाषांतरित हुई थी।

मुल्ला साहब लिखते हैं कि एक अवसर पर शेख कुतुबुद्दीन जालेसरी को, जो बड़े विकट खुराफाती थे, लोगों ने पादरियों के साथ वाद-विवाद करने के लिये खड़ा किया। शेख साहब बहुत ही आवेशपूर्वक सामने आ खड़े हुए और बोले कि खूब ढेर सी आग सुलगाओ; और जिसे दावा हो, वह मेरे साथ आग में कूद पड़े। जो उसमें से जीवित निकल आवे, उसी का धार्मिक सिद्धांत ठीक समझा जाय। आग सुलगाई गई। उन्होंने एक पादरी की कमर में हाथ डालकर कहा—"हाँ, आइए।" पादरियों ने कहा कि यह बात बुद्धिमत्ता के विरुद्ध है। अकबर को भी शेख की यह बात बुरी लगी। और वास्तव में यह बात ठीक भी नहीं थी। ऐसी बात कहना मानों अप्रत्यक्ष रूप से यह मान लेना है कि हम कोई बुद्धिमत्तापूर्ण तर्क नहीं कर सकते। और फिर अतिथियों का चित्त दुःखी करना न तो धर्मिक दृष्टि से ही ठीक है और न नैतिक दृष्टि से ही।

अकबर तिब्बत और खता के लोगों से भी वहाँ के हाल सुना करता था। जैनियों और बौद्धों के भी ग्रंथ सुना करता था। हिंदुओं के भी सैकड़ों संप्रदाय और हजारों धर्मग्रंथ हैं। वह सब कुछ सुनता था और सब के संबंध में वाद-विवाद करता था।

कुछ ऐसे दुष्ट मुसलमान भी निकल आए थे, जिन्होंने एक नया संप्रदाय खड़ा कर लिया था। इन लोगों ने नमाज, रोजा आदि सब कुछ छोड़ दिया था और दिन रात शराब-कबाब और नाच-रंग में मस्त रहना आरंभ कर दिया था। विद्वानों और मौलवियों आदि ने उन्हें बुलाकर समझाया कि अपने इन असभ्य व्यवहारों से तोबा करो। उन लोगों ने उत्तर दिया कि हम लोगों ने पहले तोबा कर ली है, तब यह संप्रदाय ग्रहण किया है।

इन्हीं दिनों कुछ मौलवी और मुल्ला आदि भी साम्राज्य से निर्वासित करने के लिये चुने गए थे। कुछ व्यापारी कंधार की ओर जानेवाले थे। इन लोगों को भी इन्हीं के साथ कर दिया गया और व्यापारियों के प्रधान से कह दिया गया कि इन लोगों को वहीं छोड़ आना। वे व्यापारी कंधार से विलायती घोड़े ले आए, जो बहुत ही उपयोगी थे; और इन लोगों को वहीं छोड़ आए; क्योंकि ये निकम्मे थे, बल्कि काम बिगाड़नेवाले थे। जब समय बदलता है, तब इसी प्रकार के परिवर्तन किया करता है।

इन सब बातों का तात्पर्य यह है कि भिन्न भिन्न प्रकार के ज्ञानों का भंडार एक ऐसे अशिक्षित मस्तिष्क में भरा, जिसमें आरंभ से अब तक कभी सिद्धांत और नियम आदि का प्रतिबिंब भी न पड़ा था। अब पाठक स्वयं ही समझ लें कि उसके विचारों की क्या दशा होगी। इतना अवश्य है कि उसकी नीयत कभी किसी प्रकार की बुराई की ओर नहीं थी। वह यह भी समझता था कि सभी धर्मों के आचार्य अच्छी नीयत से लोगों को सत्य के उपासक बनाना चाहते हैं और उनको अच्छे मार्ग पर लाना चाहते हैं; और उन्होंने अपने अपने धार्मिक सिद्धांत, विश्वास और व्यवस्थाएँ आदि अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अपने समय को देखते हुए भलाई, सुशीलता और सभ्यता की नींव पर स्थित किए थे। यह नेक-नीयत बादशाह जिस बात को सब से बढ़कर समझता था, वह यह थी कि परमात्मा सब का स्वामी है और सब कुछ कर सकता है। यदि समस्त सत्य सिद्धांत किसी एक ही धर्म की कोठरी में बंद होते, तो ईश्वर उसी धर्म को पसंद करता और उसी को संसार में रहने देता, बाकी सब को नष्ट-भ्रष्ट कर देता। परंतु जब उसने ऐसा नहीं किया, तब इससे यही सिद्ध होता है कि उसका कोई एक धर्म नहीं है, बल्कि सब धर्म उसी के हैं। बादशाह ईश्वर की छाया होता है; इसलिये उसे भी यही समझना चाहिए कि सभी धर्म मेरे हैं।

इस वास्ते उसे इस बात का शौक नहीं था कि सारा संसार मुसलमान हो जाय और इस पृथ्वी पर मुसलमान के अतिरिक्त और किसी धर्म का कोई आदमी दिखाई ही न दे। इसीलिये इसके दरबार में इस धार्मिक झगड़े के बहुत से मुकदमे उपस्थित होते थे। उनमें से एक मुकदमा तो यहाँ तक बढ़ा कि शेख सदर या प्रधान धार्मिक विचारपति की जड़ ही उखड़ गई।

हिंदू हर दम अकबर के साथ लगे रहते थे। उनसे हर एक बात पूछने का अवसर मिलता था। वे भी बहुत दिनों से ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि कोई पूछनेवाला उत्पन्न हो। अकबर को सब बातें जानने का शौक था, इसलिये उसे इनकी ओर प्रवृत्त होने का और भी अधिक अवसर मिला। सत्य का अन्वेषक बादशाह गौतम नामक एक ब्राह्मण पंडित को, जिससे आरंभ में सिंहासन-बत्तीसी का अनुवाद कराया गया था, प्रायः बुलवाकर बहुत सी बातें पूछा और जाना करता था। मुल्ला साहब कहते हैं कि महल के ऊपरी भाग में एक कमरा था, जो ख्वाबगाह (शयनागार) कहलाता था। अकबर उसकी खिड़की में बैठता था और एकांत के समय देवी नामक ब्राह्मण को, जो महाभारत का अनुवाद कराया करता था, एक चारपाई पर बैठाकर रस्सियों से ऊपर खिंचवा लिया करता था। इस प्रकार वह ब्राह्मण अधर में लटकता रहता था, न जमीन पर रहता था और न आसमान पर। अकबर उससे अग्नि, सूर्य, ग्रह प्रत्येक देवी और देवता, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कृष्ण, राम आदि की पूजाओं के प्रकार और मंत्र आदि सीखा करता था और हिंदुओं के धार्मिक सिद्धांत तथा पौराणिक कथाएँ आदि बहुत ही ध्यान और शौक से सुना करता था और चाहता था कि हिंदुओं के सभी धार्मिक ग्रंथों के अनुवाद हो जायँ।

मुल्ला साहब कहते हैं कि सन् २० जलूसी के उपरांत जमाने का रंग बिलकुल बदल गया; क्योंकि कुछ धर्म-विक्रेता मुल्ला भी अकबर के साथ मिल गए थे। यदि किसी भविष्यद्वाणी की चर्चा होती, तो

अकबर उस पर आपत्ति करता था। यदि दैवी आभास की बात छिड़ती थी, तो वह चुप हो जाता था; यदि किसी करामात, देव, जिन, परी आदि ऐसी चीजों का जिक्र होता था, जो कभी आँख से दिखाई न पड़ती थीं, तो वह उनकी बातें बिलकुल नहीं मानता था। यदि कोई कहता था कि कुरान शाश्वत है अथवा स्वयं ईश्वर का कहा हुआ है, तो अकबर उसके लिये प्रमाण माँगा करता था।

पुनर्जन्म आदि के संबंध में निबंध लिखे गए और यह निश्चय हुआ कि यदि मरने के उपरांत भी पाप या पुण्य बना रहता है, तो वह पुनर्जन्म और परजन्म बिना हुए हो ही नहीं सकता। इस संबंध में बहुत वादविवाद हुआ करता था।

जब खान आजम काबे से लौटे, तब संसार देख आने के कारण उन्हें कुछ बुद्धि आ गई थी। पहले उन्होंने जो दाढ़ी बढ़ाई थी, वह अकबर के सामने पहुँचकर मुँड़वा डाली। इन्हीं खान आजम की दाढ़ी के संबंध में पहले बड़ी बड़ी बातें हुई थीं, जो इनके विवरण में दी गई हैं। सन् ९९० हि० में ये एक युद्ध से लौटे थे। बादशाह बैठा हुआ बहुत प्रसन्नतापूर्वक इनसे बातें कर रहा था। इसी बीच में उसने कहा कि हमने जन्मांतर के संबंध में बहुत से तर्क-पूर्ण सिद्धांत स्थिर किए हैं। शेख अब्बुलफजल तुमको समझा देंगे और तुम उनको मान लोगे। बेचारे खान आजम मानने के सिवा और कर ही क्या सकते थे।

एक बहुत बड़े खानदानी शेख थे। देवी पंडित् को ख्वाबगाह में जाते देखकर उन्हें भी शौक चर्राया। छल-कपट की कमंद लगाकर वह भी ख्वाबगाह तक पहुँचने लगे। उन्होंने कुरान और पुराणों की बहुत सी बातों का सामंजस्य स्थापित करके दिखलाया; ब्रह्म की एकता की नींव रखकर उस पर "सोऽहं" की मीनार खड़ी की और परम नास्तिक फरऊन[१] को भी परम आस्तिक प्रमाणित करके सिद्ध कर दिया कि

१ बल्ख का रहनेवाला एक प्रसिद्ध अभिमानी और नास्तिक जो अपनी धूर्त्तता के कारण मिस्र का बादशाह हो गया था और जो अपने आप को

सभी लोग किसी न किसी रूप में आस्तिक और धार्मिक होते हैं। बल्कि उन्होंने बादशाह को यह भी विश्वास दिला दिया कि पाप के दुष्परिणाम का भय सदा मुक्ति की आशा के सामने दबा रहता है। मुक्ति की आशा सभी को रहती है; और इसीलिये वे पाप से डरते रहते हैं। उन्होंने यह भी प्रमाणित कर दिया कि पहले जो पैगंबर थे, वही अब खलीफा हैं। और नहीं तो कम से कम उनके प्रतिबिंब तो अवश्य हैं। वही सब की आवश्यकताएँ और इच्छाएँ पूरी किया करते हैं; उनके आगे सब को सिर झुकाना चाहिए; सबको उनका अभिवादन करना चाहिए; आदि आदि अनेक प्रकार की बातें गढ़ी जाया करती थीं और पथभ्रष्ट करने के उद्योग हुआ करते थे।

मुल्ला साहब बहुत बिगड़कर कहते हैं कि बीरबल ने यह समझाया कि सूर्य ईश्वर की पूर्ण सत्ता का प्रकाशक है। हरियाली उगाना, अनाज लाना, फूल खिलाना, फल फलाना, संसार में प्रकाश करना, सब को जीवन देना उसी पर निर्भर है; इसलिये वही सब से अधिक पूज्य है। वह जिधर उदित होता हो, उधर ही मुँह करना चाहिए, न कि जिधर वह अस्त होता हो, उधर। इसी प्रकार आग, पानी, पत्थर, पीपल और उसके साथ सब वृक्ष भी ईश्वर की सत्ता के प्रकाशक बन गए। यहाँ तक कि गौ और गोबर भी ईश्वर की सत्ता के द्योतक हो गए। इसी के साथ तिलक और यज्ञोपवीत की भी प्रतिष्ठा होने लगी। मजा यह कि बड़े बड़े मुसलमान विद्वान् और मुसाहब भी इन बातों का समर्थन करने लगे और कहने लगे कि वास्तव में सूर्य सारे संसार को प्रकाशित करता है, सारे संसार को सब कुछ देता है और बादशाहों का तो मित्र और संरक्षक ही है। जितने प्रतापी

"ईश्वर" कहा करता था। इसने बनी इसराईल जाति तथा हजरत मूसा को बहुत तंग किया था। कहते हैं कि यह ईश्वर के कोप के कारण नील नदी में डूबकर मरा था।

बादशाह हुए हैं, सब इसका प्रभुत्व स्वीकृत करते रहे हैं। इस प्रकार की प्रथाएँ हुमायूँ के समय में भी प्रचलित थीं। तुर्क लोग प्राचीन काल से नौरोज़ के दिन ईद मनाते थे और थालों में पकवान तथा मिठाइयाँ आदि भरकर लूटते लुटाते थे। प्रत्येक मुसलमान बादशाह ने भी इसे कहीं कम: और कहीं अधिक ईद का दिन समझा है। और वास्तव में जिस दिन से अकबर सिंहासन पर बैठा था, उस दिन से वह नौरोज को बहुत ही शुभ और सारे संसार के त्योहार का दिन समझकर बहुत कुछ उत्सव मनाता और जशन करता था। उसी के रंग के अनुसार सारा दरबार भी रँगा जाता था। पर हाँ; अब वह भारतवर्ष में था, इसलिये भारत की रीत-रस्में भी बरत लिया करता था।

अकबर ने ब्राह्मणों से सूर्य की सिद्धि का मंत्र सीखा था, जिसे वह सूर्योदय और आधी रात के समय जपा करता था। मझोला के राजा दीपचंद ने एक जलसे में कहा कि हुजूर, यदि गौ ईश्वर की दृष्टि में पूज्य न होती, तो कुरान में सब से पहले उसी का सूरा (मंत्र) क्यों होता? उसका मांस हराम कर दिया गया और आग्रहपूर्वक कह दिया गया कि जो कोई उसे मारेगा, वह मारा जायगा। इसका समर्थन करने के लिये बड़े बड़े हकीम अपने हिकमत के ग्रंथ लेकर उपस्थित हुए और कहने लगे कि इसके मांस से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं; वह रद्दी और गरिष्ठ होता है; इत्यादि इत्यादि।

मुल्ला साहब इन बातों को चाहे जहाँ तक बिगड़कर दिखलावें पर वास्तविक बात यह है कि अकबर इस्लाम धर्म के सिद्धांतों से सर्वथा हीन नहीं था। वह अपने पूर्वजों के धर्म को भी बहुत कुछ मानता था। मीर अबू तुराब हाजियों के प्रधान होकर मक्के गए थे। जब सन ९८७ हि० में वे लौटकर आए, तब अपने साथ एक ऐसा भारी पत्थर लाए जो हाथी से भी न उठ सके। जब पास पहुँचे, तब बादशाह को लिख भेजा कि फीरोज शाह के समय में एक बार कदम-

शरीफ[1] आया था। अब हुजूर के शासन-काल में सेवक यह पत्थर लाया है। अकबर ने समझ लिया था कि इस सीधे सादे सैयद ने यह भी एक दूकानदारी की है। पर इस समय ऐसा काम करना चाहिए जिससें इस बेचारे की भी हँसी न हो; और मुझे जो लोग इस्लाम धर्म से च्युत बतलाते हैं, उनके भी दाँत टूट जायँ। इसलिये उसने आज्ञा दो कि दरबार भली भाँति सजाया जाय। उक्त सैयद के पास आज्ञापत्र पहुँचा कि शहर से चार कोस पर ठहर जाओ। अकबर सब शाहजादों और अमीरों को अपने साथ लेकर अगवानी के लिये गया। कुछ दूर पहले से ही सवारी पर से उतरकर पैदल हो लिया। बहुत आदर तथा नम्रतापूर्वक स्वयं पत्थर को कंधा दिया और कुछ दूर तक चलकर कहा कि धर्मनिष्ठ अमीर इसी प्रकार इसे दरबार तक लावें और पत्थर मीर के ही घर पर रखा जाय।

मुल्ला साहब कहते हैं कि सन् ९८७ हि० में तो आफत ही आ गई। और यह वह समय था जब कि चारों ओर से निश्चिंतता हो गई थी। विचार यह हुआ कि लोग "ला इलह इल् अल्लाह" (ईश्वर एक ही है) के साथ "अकबर खलीफतुल्लाह" (अकबर खलीफा या मुहम्मद का उत्तराधिकारी है) भी कहा करें। फिर भी लोगों के उपद्रव करने की आशंका थी, इसलिये कहा जाता था कि बाहर नहीं, महल में कहा करो। सर्व साधारण प्रायः "अल्लाह अकबर" के सिवा और कुछ कहते ही न थे। प्रायः लोग अभिवादन के समय सलाम अलैक के बदले "अल्लाह अकबर" और उसके उत्तर में "जल्ले जलालहू" कहा करते थे। अब तक हजारों रुपए ऐसे मिलते हैं, जिनके दोनों ओर यही वाक्य पाए जाते हैं। यद्यपि सभी अमीर आज्ञाकारी और विश्वसनीय समझे जाते थे, तथापि विचार यह हुआ कि इनमें से पहले कोई एक आरंभ करे। इसलिये पहले कुतुब उद्दीन खाँ कोका

---

१ मुहम्मद साहब के पद-चिह्नों से अंकित पत्थर।

को संकेत किया गया कि यह पुराना और अनुकरण-मूलक धर्म छोड़ दो। उसने शुभचिंतन के विचार से कुछ दुःख प्रकट करते हुए कहा कि और और देशों के बादशाह, जैसे रूम के सुलतान आदि, सुनेंगे तो क्या कहेंगे। सब का धर्म तो यही है, चाहे अनुकरणमूलक हो और चाहे और कुछ हो। बादशाह ने बिगड़कर कहा कि तू अप्रत्यक्ष रूप से रूम के सुलतान की ओर से लड़ता है और अपने लिये स्थान बनाता है, जिसमें यहाँ से जाने पर वहाँ प्रतिष्ठा पावे। जा, वहीं चला जा। शाहबाज खाँ कंबोह ने भी प्रश्नोत्तर में कुछ कड़ी बातें कही थीं। बीरबल अवसर देखकर कुछ बोले, पर उनको उसने ऐसी कड़ी धमकी दी कि उस समय की सब बात-चीत ही बेमजे हो गई और सब अमीर आपस में काना-फूसी करने लगे। बादशाह ने शहबाज खाँ को विशेष रूप से तथा दूसरे लोगों को सुगम कहा कि क्या बकते हो, तुम्हारे मुंह पर गू में जूतियाँ भरकर लगवाऊँगा। मुल्ला शीरीं ने इस संबंध में कुछ कविता भी की थी।

इन्हीं दिनों में यह भी निश्चय हुआ कि जो व्यक्ति अकबर के चलाए हुए नए धर्म में, जिसका नाम "दीन इलाही अकबरशाही" था, संमिलित हो, उसके लिये चार बातें आवश्यक हैं—धन की ओर से उदासीनता, जीवन की ओर से उदासीनता, प्रतिष्ठा की ओर से उदासीनता और धर्म की ओर से उदासीनता। जो इन चारों बातों से उदासीन हो, वह पूरा और नहीं तो तीन-चौथाई, आधा या चौथाई अनुयायी माना जाता था। धीरे धीरे सभी लोग दीन इलाही अकबरशाही में आ गए। इस नए धर्म के संबंध में सूचनाएँ और व्यवस्थाएँ देने तथा नियम आदि निर्धारित करने के लिये कई खलीफा भी नियुक्त हुए थे। उनमें से पहले खलीफा शेख अब्बुलफज़ल थे। जो व्यक्ति दीन इलाही में आता था, वह इस आशय का एक इकरारनामा लिख देता था कि मैं अपनी इच्छा से और अपनी आत्मा की प्रेरणा से अपना वह कृत्रिम और अनुकरण-मूलक इसलाम धर्म छोड़ता हूँ, जो मैंने

अपने पूर्वजों से सुना था और जिसका पालन करते हुए उन्हें देखा था; और अब मैं दीन इलाही अकबरशाही में आकर संमिलित हुआ हूँ; और धन, जीवन, प्रतिष्ठा और दीन की ओर से उदासीन रहता और उनका त्याग करना मंजूर करता हूँ। इस दीन इलाही में बड़े बड़े अमीर और देशों के शासक संमिलित होते थे। ठट्ठे का हाकिम मिरजा जानी भी इसमें संमिलित हुआ था। सब लोगों के इकरारनामे अब्बुलफजल को दे दिए जाते थे और वे सब लोगों के विश्वास के अनुसार उन पत्रों को क्रम से लगाकर रखते थे। यही शेख दीन इलाही के प्रधान खलीफा थे।

अमीरों में से जो लोग दीन इलाही अकबरशाही में संमिलित हुए थे, इतिहासों आदि के आधार पर उनकी जो सूची तैयार की गई है, वह इस प्रकार है—

(१) अब्बुलफजल, खलीफा।
(२) फैजी, दरबार का प्रधान कवि।
(३) शेख मुबारक नागौरी।
(४) जाफरबेग आसफ खाँ, इतिहास-लेखक और कवि।
(५) कासिम काबुली, कवि।
(६) अब्दुलसमद, दरबार का चित्रकार और कवि।
(७) आजमखाँ कोका, मक्के से लौटने पर।
(८) मुल्ला शाह मुहम्मद शाहाबादी, इतिहास-लेखक।
(९) सूफी अहमद।
(१०) सदर जहान, सारे भारत के प्रधान मुफ्ती और
(११-१२) इनके दोनों पुत्र।
(१३) मीर शरीफ अमली।
(१४) सुलतान ख्वाजा सदर।
(१५) मिरजा जानी, ठट्ठे का हाकिम।
(१६) नकी शोस्तरी, कवि और दो-सदी मंसबदार।

(१७) शेखजादा गोशाला बनारसी।
(१८) बीरबल।

इसी संबंध में मुल्ला साहब कहते हैं कि एक दिन यों ही सब लोग बैठे हुए थे। अकबर ने कहा कि आज कल के जमाने में सब से अधिक बुद्धिमान् कौन है; बादशाहों को छोड़कर और लोगों के नाम बतलाओ। हकीम हमाम ने कहा कि मैं तो यह कहता हूँ कि सबसे अधिक बुद्धिमान् मैं हूँ। अब्बुलफजल ने कहा कि सबसे अधिक बुद्धिमान् मेरे पिता हैं। इसी प्रकार सब लोगों ने अपनी अपनी बुद्धिमत्ता प्रकट की।

अकबर के सारे इतिहास में यह बात स्वर्णाक्षरों में लिखने के योग्य है कि इन सब बातों के होते हुए भी इस साल में उसने स्पष्ट आज्ञा दे दी कि हिंदुओं पर लगनेवाला जजिया नामक कर बिलकुल माफ कर दिया जाय। इस कर से कई करोड़ रुपए वार्षिक की आय होती थी।

जजिया की माफी

पहले भी कुछ ऐसे बादशाह हो गए थे जो हिंदुओं से जजिया लिया करते थे। राज्यों के उलट-फेर में कभी तो यह कर बंद हो जाता था और कभी फिर नियत हो जाता था। जब अकबर के साम्राज्य ने जोर पकड़ा, तब मुल्लाओं ने फिर स्मरण दिलाया। मुल्ला साहब ठीक सन् तो नहीं बतलाते, पर लिखते हैं कि इन्हीं दिनों में शेख अब्दुल गनी और मखदूमुलमुल्क को आज्ञा हुई कि जाँच करके हिंदुओं पर जजिया लगाओ। पर यह आज्ञा पानी पर लिखे हुए लेख के समान तुरंत व्यर्थ हो गई। सन् ९८७ हि० में लिखते हैं कि इस साल जजिया, जिससे कई करोड़ वार्षिक की आय होती थी, बिलकुल माफ कर दिया गया और इस संबंध में कड़े आज्ञापत्र निकाले गए। मुल्ला साहब

अपने लेख से लोगों पर यह प्रकट करना चाहते हैं कि धर्म की ओर से उदासीन होने, बल्कि इस्लाम धर्म के साथ शत्रुता रखने के कारण अकबर का धार्मिक भाव ठंढा पड़ गया था। वास्तव में बात यह है कि सिंहासन पर बैठते ही पहले वर्ष अकबर के मन में जजिया माफ़ कर देने का विचार उठा था। पर उस समय उसकी युवावस्था थी। कुछ तो लापरवाही और कुछ अधिकार के अभाव के कारण इस संबंध में उसकी आज्ञा का पालन न हो सका। सन् ९ जुलूसी में फिर इस विषय में वादविवाद हुआ। बड़े बड़े मुल्लाओं और मौलवियों का पूरा पूरा जोर था; इसलिये बड़ी बड़ी आपत्तियाँ हुईं। उन्होंने कहा कि जजिया लेना धर्म की आज्ञा है, जरूर लेना चाहिए। इसलिये उन दिनों कहीं तो लिया जाता था और कहीं नहीं लिया जाता था। सन् ९८८ हि० सन् २५ जुलूसी में नीतिज्ञ बादशाह ने फिर इस संबंध में अपना विचार दृढ़ किया और कहा कि प्राचीन काल में इस संबंध में जो निश्चय हुआ था, उसका कारण यह था कि उन लोगों ने अपने विरोधियों की हत्या करना और उन्हें लूटना ही अधिक उपयुक्त समझा था। वे लोग प्रकट रूप में ठीक प्रबंध भी रखना चाहते थे। वे सोचते थे कि जो इस समय हाथ के नीचे हैं, उन पर अपना दबाव बना रहे, वे दबे रहें; और जो बाहर हैं, उनपर भी अपना कुछ न कुछ दबाव बना रहे; और अपनी आवश्यकताएँ पूरी करने के लिये कुछ मिलता भी रहे। इसीलिये उन्होंने एक कर बाँध दिया और उसका नाम जजिया रख दिया। अब हमारे प्रजापालन और उदारता आदि के कारण दूसरे धर्मों के अनुयायी भी हमारे सहधर्मियों की ही भाँति हमारे साथ मिलकर हमारे लिये जान देते हैं। वे सब प्रकार से हमारा भला चाहते हैं और सदा हमारे लिये जान देने को तैयार रहते हैं। ऐसी दशा में यह कैसे हो सकता है कि हम उन्हें अपना विरोधी समझकर अप्रतिष्ठित करें, उनकी हत्या करें और उनका नाश करें! इनके पूर्वजों में और हमारे पूर्वजों में पहले घोर शत्रुता थी

और इनका रक्त बहाया गया था। पर अब वह रक्त ठंढा हो गया है। उसे फिर से गरमाने की क्या आवश्यकता है? जजिया लेने का मुख्य कारण यह था कि पहले के साम्राज्यों का प्रबंध करनेवालों के पास धन और सांसारिक पदार्थों की कमी रहती थी और वे ऐसे उपायों से अपनी आय की वृद्धि करते थे। अब राजकोष में हजारों लाखों रुपए पड़े हैं; बल्कि साम्राज्य का एक एक सेवक आर्थिक दृष्टि से आवश्यकता से अधिक सुखी है। फिर विचारशील और न्यायी मनुष्य कौड़ी कौड़ी चुनने के लिये अपनी नीयत क्यों बिगाड़े। एक कल्पित लाभ के लिये प्रत्यक्ष हानि करना ठीक नहीं, आदि आदि बातें कहकर जजिया रोका गया था। यद्यपि देनेवालों को कुछ पैसे, आने या रुपए ही देने पड़ते थे, तथापि इस आज्ञापत्र के प्रचलित होते ही घर घर समाचार पहुँच गया और सब लोग अकबर को धन्यवाद देने लगे। जरा सी बात ने लोगों के दिलों और जानों को ले लिया। यदि हजारों आदमियों का रक्त बहाया जाता और लाखों आदमियों को गुलाम बनाया जाता, तो भी यह बात नहीं हो सकती थी। हाँ, मसजिदों में बैठनेवाले मुल्ला, जिन्होंने मसजिदों में ही बैठकर अपना पेट पाला था और कोरी पुस्तकें रटी थीं, यह बात सुनते ही विकल हो गए। उन्होंने समझ लिया कि आता हुआ रुपया बंद हो गया। उनकी जान तड़प गई, ईमान लोट गए।

एक जलसे में एक मुल्ला साहब भी आ गए थे। उस समय चर्चा यह हो रही थी कि मौलवियों में गणित की बहुत कम योग्यता होती है। इस पर मुल्ला साहब उलझ पड़े। किसी ने पूछा—"अच्छा बताओ, दो और दो कितने होते हैं?" मुल्ला घबराकर बोले—"चार रोटियाँ।" बस ईश्वर ही रक्षक है! ये मसजिदों के बादशाह सबेरे का भोजन दोपहर बीत जाने पर और रात का भोजन आधी रात बीत जाने पर केवल यही समझकर करते हैं कि कदाचित् कोई अच्छी चीज आ जाय, इससे भी और अच्छी चीज आ जाय। कदाचित् कोई बुलाने ही आ जाय। आधी रात तक बैठे बैठे घड़ियाँ गिनते रहते हैं। यदि हवा के कारण

भी सिकड़ी हिली, तो किवाड़ की ओर देखने लगते हैं कि कोई आया, कोई कुछ लाया। मसजिद में बिल्ली की आहट हुई कि चौकन्ने होकर देखने लगे कि क्या आया। ऐसे लोग राजनीति को क्या समझें! वे बेचारे क्या जानें कि यह कैसी बात है और इसका क्या फल होगा।

फिर मुल्ला साहब कहते हैं कि अभी सन् ९९० हि० ही हुआ था कि लोगों के ध्यान में यह बात समा गई कि सन् १००० हो चुका। अब इस्लाम धर्म का समय समाप्त हो चुका, और नए धर्म का प्रचार होगा। इसलिये अकबर के दीन इलाही अकबरशाही को, जो केवल नीतिमूलक था, महत्व देना आरंभ कर दिया। इसी सन् में आज्ञा दी गई कि सिक्कों पर सन् अलिफ (हजार की संख्या का सूचक वर्ण) दिया जाय और सब लोग अकबर को झुककर अभिवादन किया करें। इसके लिये जमीन-बोसी की प्रथा चलाई गई; अर्थात् यह निश्चित हुआ कि बादशाह के सामने पहुँचकर लोग जमीन चूमा करें। शराब के लिये जो बंधन था, वह खुल गया। मगर इसके लिये भी कई नियम थे। उतनी ही मात्रा में पीओ, जितनी से लाभ हो। यदि रोग की दशा में हकीम बतावे तो पीओ। इतनी न पीओ कि बदमस्ती करते फिरो। जो कोई शराब पीकर बदमस्त हो जाता था, उसे दंड दिया जाता था। दरबार के पास ही आबकारी की दूकान थी और भाव सरकार की ओर से नियत था। जिसे आवश्यकता होती थी, वह वहाँ जाता था; अपने बाप-दादा का नाम और जाति आदि लिखवाता था और ले आता था। पर शौकीन लोग किसी छोटे मोटे आदमी को भेज दिया करते थे, कल्पित नाम लिखवाकर मँगा लिया करते थे और उसे माँ के दूध की तरह पीते थे। ख्वाजा खातून दरबान इस विभाग का दारोगा था; पर वह भी वास्तव में कलाल का ही वंशज था। इतना बंधन होने पर भी अनेक प्रकार के उपद्रव होते थे, सिर फूटते थे, न्यायालयों से लोगों को दंड दिए जाते थे। पर कौन ध्यान देता था!

लश्कर खाँ मीर-बख्शी एक दिन दरबार में शराब पीकर आया और बदमस्ती करने लगा। अकबर बहुत बिगड़ा। उसने उसे घोड़े की दुम में बँधवाकर सारे लश्कर में फिरवाया। सारा नशा हरन हो गया। इन्हीं लश्कर खाँ को अस्कर खाँ ख़िताब मिला था; लोगों ने अस्तर (खच्चर) खाँ बना दिया।

मुल्ला साहब के रोने का स्थान तो यह है कि सन् ९९८ हि० के जशन में दरबार खास था। सब लोग शराब पी रहे थे। इतने में सारे भारत के मुफ्तियों के प्रधान मीर अब्दुलहो सदरजहान ने स्वयं अपनी इच्छा और बड़े उत्साह से शराब का प्याला सँगाकर पीया। अकबर ने मुस्कराकर ख्वाजा हाफिज का एक शेर पढ़ा, जिसका आशय यह था कि अपराधों को क्षमा करनेवाले और दोषों को छिपानेवाले बादशाह के शासन-काल में काजी लोग प्याले पर प्याला चढ़ाते हैं और मुफ्ती लोग करावे के करावे पी जाते हैं [1]।

इन सदर जहान महाशय का हाल परिशिष्ट में दिया गया है। यही महाशय हकीम हुम्माम के साथ अब्दुल्लाखाँ उजबक के दरबार में राजदूत बनाकर भेजे गए थे। इनके हाथ जो पत्र भेजा गया था, उसमें इनके संबंध में बहुत बड़े बड़े प्रशंसात्मक विशेषण लगाए गए थे। यह समय का ही प्रभाव था कि लोगों की दशा क्या से क्या हो गई थी। इसमें अकबर का क्या दोष था?

बाजारों के बरामदों में इतनी वेश्याएँ दिखाई देने लग गई थीं, जितने आकाश में तारे भी न होंगे। विशेषतः राजधानी में तो इनकी और भी अधिकता थी। इन सब को नगर के बाहर एक स्थान पर रख दिया गया और उसका नाम शैतानपुरा रख दिया। इसके लिये भी नियम बनाए गए थे। दारोगा, मुंशी, चौकीदार आदि सब वहाँ उप-

स्थित रहते थे। जब कभी कोई किसी वेश्या के पास जाकर रहता था या उसे अपने घर ले जाता था, तो रजिस्टर में उसे अपना नाम लिखाना पड़ता था। बिना इसके कुछ भी नहीं हो सकता था। वेश्याएँ अपने यहाँ नई नौचियाँ नहीं बैठा सकती थीं। हाँ, यदि कोई अमीर किसी नई स्त्री को अपने यहाँ रखना चाहता था, तो उसे सरकार में सूचना देनी पड़ती थी और आज्ञा लेनी पड़ती थी। फिर भी अंदर ही अंदर बहुत से काम हो जाया करते थे। यदि पता लग जाता था, तो अकबर उस वेश्या को अपने पास एकांत में बुलाकर पूछता था कि यह किसका काम है। वे बता भी दिया करती थीं। जब अकबर को पता लग जाता था। तब वह उस अमीर को एकांत में बुलाकर उसे बहुत बुरा भला कहता था। बल्कि ऐसे कुछ अमीरों को उसने कैद भी कर दिया था। आपस में बड़े बड़े उपद्रव हुआ करते थे। लोगों के सिर फूटते थे, हाथ-पैर टूटते थे, पर कौन मानता था। एक बार यहाँ बीरबल की भी चोरी पकड़ी गई थी। उस समय वे अपनी जागीर पर भाग गए।

दाढ़ी की, जो मुसलमानों में खुदा का नूर (प्रकाश) कहलाती है, बड़ी दुर्दशा हुई। सब लोग दाढ़ी मुँड़वाने लग गए थे। इसके समर्थन में पाताल तक से प्रमाण ला-लाकर एकत्र किए गए थे।

पानीपतवाले शेख मान के भतीजे बड़े विद्वान् और अच्छे मौलवी थे। एक दिन वे अपने चचा के पुस्तकालय से एक पुरानी और कीड़ों की खाई हुई पुस्तक ले आए। उसमें इस आशय का एक प्रसंग दिखलाया कि मुहम्मद साहब की सेवा में उनके एक साथी गए थे। उनका लड़का भी उनके साथ था, जिसकी दाढ़ी मुँडी हुई थी। मुहम्मद साहब ने देखकर कहा कि बहिश्त (स्वर्ग) में रहनेवालों की ऐसी ही आकृति होगी। कुछ जालसाज धर्माचार्यों ने अपने ग्रंथों में से एक वाक्य ढूँढ निकाला और एक स्थान पर उसका पाठ थोड़ा सा परिवर्तित करके दाढ़ी मुँडाने का समर्थन कर दिया। बस सारा

दरबार मुँडकर सफाचट हो गया। यहाँ तक कि ईरान और तूरानवाले भी, जिनकी दाढ़ियाँ बहुत सुंदर होती थीं, अपनी अपनी दाढ़ी मुँडा बैठे। उनके गाल भी सफाचट मैदान हो गए।

मुल्ला साहब फिर चोट करते हैं कि हिंदुओं का एक प्रसिद्ध सिद्धांत है कि ईश्वर ने दस पशुओं के रूप में अवतार धारण किया था। उनमें से एक रूप सूअर (वाराह) भी है। बादशाह ने भी इस बात पर ध्यान दिया और अपने झरोखे के नीचे तथा कुछ ऐसे स्थानों पर, जहाँ से हिंदू लोग स्नान आदि करके आया जाया करते थे, कुछ सूअर पलवा दिए। कुत्ते का महत्व[1] स्थापित करने के लिये यह तर्क उपस्थित किया गया कि इसमें दस गुण ऐसे हैं, जिनमें से एक भी यदि मनुष्य में हो, तो वह बहुत बड़ा महात्मा हो जाय। बादशाह के कुछ पार्श्ववर्तियों ने, जो विद्या-बुद्धि आदि में अद्वितीय थे, कुछ कुत्ते पाले। उनको वे अपनी गोद में बैठाते थे; अपने साथ खिलाते थे; उनका मुँह चूमते थे; और भारत तथा इराक के कुछ कवि बड़े गर्व से उनकी जबानें मुँह में लेते थे।

मुल्ला साहब सदा शेख फैजी के कुत्तों की ताक में रहते हैं। जहाँ अवसर पाते हैं, चट एक पत्थर खींच मारते हैं। यहाँ भी उन्होंने मुँह मारा है। पर वास्तविक बात यह है कि शिकार के लिये प्रायः राजा महाराज और रईस लोग कुत्ते पालते हैं। तुर्किस्तान और खुरासान में यह एक साधारण सी प्रथा है। अकबर ने भी कुत्ते रखे थे। यह एक नियम है कि बादशाह को जिस बात का शौक होता है, उसके पार्श्ववर्तियों को भी उसका शौक करना पड़ता है। इसलिये फैजी ने कुत्ते रखे होंगे। मुल्ला साहब यह प्रमाणित करना चाहते हैं कि वे धार्मिक कर्तव्य समझकर कुत्ते पालते थे।

जब जबानें खुल जाती हैं और विचार-क्षेत्र विस्तृत हो जाता है,

---

१ मुसलमानों में कुत्ता बहुत ही अपवित्र और अस्पृश्य समझा जाता है।

तब समझदारी की एक बात में हजार ना-समझी की बातें निकलती हैं। मुल्ला साहब कहते हैं और ठीक कहते हैं कि स्त्री-संभोग के उपरांत स्नान करने की क्या आवश्यकता है[1]? इससे तो मनुष्य की, जो सब प्राणियों में श्रेष्ठ समझा जाता है, सृष्टि होती है। इसी के द्वारा अच्छे अच्छे विद्वानों, बुद्धिमानों और विचारशीलों का जन्म होता है। बल्कि यदि सच पूछो तो स्नान करके यह क्रिया करनी चाहिए। और फिर जरा सी चीज निकल जाने पर स्नान करना क्यों आवश्यक है? इससे दस गुनी और बीस गुनी अधिक निकृष्ट वस्तुएँ दिन भर में कई कई बार शरीर से बाहर निकल जाती हैं और उनके लिये कुछ भी नहीं होता।

कुछ लोग ऐसे भी थे जो यह कहा करते थे कि शेर और सूअर का मांस खाना चाहिए; क्योंकि ये जानवर बहुत बहादुर होते हैं; और इनका मांस खानेवालों की तबीयत में अवश्य बहादुरी पैदा करता होगा।

कुछ लोग कहते थे कि चाचा और मामा की कन्या से विवाह न होना चाहिए; क्योंकि आपस में प्रसंग करने की प्रवृत्ति कम होती है, जिसका फल यह होता है कि संतान दुर्बल होती है। प्रमाण यह है कि खच्चर में घोड़े की अपेक्षा अधिक बल होता है। बात भी कुछ ठीक जान पड़ती है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी लिखा है कि मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जिस रक्त से स्वयं उसका जन्म होता है, उसी रक्त से उत्पन्न दूसरे व्यक्ति की ओर प्रसंग के लिये उसकी उतनी प्रवृत्ति नहीं होती, जितनी दूसरे रक्त से उत्पन्न मनुष्य की ओर होती है। कोई कहता था कि जब तक वर की अवस्था सोलह वर्ष की और कन्या की चौदह वर्ष की न

---

१ मुसलमान धर्मानुसार संभोग के उपरांत शुद्ध होने के लिये स्नान करना आवश्यक होता है।

हो जाय, तब तक विवाह नहीं करना चाहिए; क्योंकि इससे संतान दुर्बल होगी

विवाह

आईन अकबरी में अब्बुलफजल ने विवाह के संबंध में जो कुछ लिखा है, उसका आशय यह है कि विवाह-प्रथा का मुख्य उद्देश्य यह है कि मनुष्य जाति सदा बढ़ती रहे; उसका नाश न होने पावे; इस संसार रूपी महफिल की शोभा हो; जिनका चित्त डाँवाडोल रहता है, उनका ठिकाने आ जाय; और घर बसे। बादशाह छोटे बड़े सब का रक्षक है, इसलिये इस विषय में वह विशेष सतर्क रहता है। छोटी उम्र का वर और कन्या उसे पसंद नहीं; क्योंकि इससे लाभ कुछ भी नहीं है और हानियाँ बहुत अधिक हैं। प्रायः स्त्रियों और पुरुषों की प्रकृति विरुद्ध पड़ती है और घर नहीं बसते। भारत लज्जाशीलता का घर है। जब विवाहिता स्त्री दूसरा पति नहीं कर सकती, तब और भी कठिनता होती है। बादशाह यह आवश्यक समझता है कि विवाह के संबंध में वर और कन्या तथा उनके माता-पिता की खुशी का ध्यान रखा जाय। बहुत पास के संबंधियों में विवाह करना अनुचित समझता है; और जब वह इस संबंध में यह तर्क उपस्थित करता है कि सृष्टि की आरंभिक अवस्था में यमज कन्या का विवाह उसके साथ के जनमे हुए बालक के साथ नहीं होता था, तब आपत्ति करनेवालों की जबानें बंद हो जाती हैं। वह महर[1] की अधिकता को पसंद नहीं करता; क्योंकि उसमें झूठ करार करना पड़ता है। बादशाह कहा करता था कि महर का बढ़ाना संबंध का तोड़ना है। वह एक स्त्री से अधिक नहीं पसंद करता; क्योंकि इससे आदमी परेशान हो जाता है और उजड़ जाता है। वृद्ध को युवा स्त्री के साथ विवाह नहीं

१ वह धन जो मुसलमानों में विवाह के समय वर की ओर से कन्या को, उसके कठिन समय के लिये, देना निश्चित होता है।

करना चाहिए; क्योंकि यह निर्लज्जता है। उसने दो ईमानदार आदमी नियुक्त कर रखे थे। इनमें से एक पुरुषों की जाँच करता था और दूसरा स्त्रियों की। ये लोग "तवे-बेगी" कहलाते थे। इनके शुकराने में दोनों पक्षों को नीचे लिखे हिसाब से नजराना भी देना पड़ता था—

पंच-हजारी से हजारी तक.........१० अशरफी
हजारी से पाँच-सदी तक......... ४ अशरफी
पाँच-सदी से दो-सदी तक......... २ अशरफी
दो-सदी से दो-बीस्ती तक......... १ अशरफी
तरकशबंद से दह-बाशी तक दूसरे मंसबदार...४ रुपए
मध्यम अवस्था के लोग...१ रुपया
सर्व साधारण............१ दाम

अब यह दशा हो गई थी कि दरबार के अमीर तो दूर रहे, वही मुफ्तियों के प्रधान सदर जहान, जिन्होंने नौरोज के जलसे में मद्य पान किया था, अतलस के कपड़े पहनने लगे[1]। मुल्ला साहब ने एक दिन उनके ऐसे कपड़े देखकर पूछा कि इनके लिये भी आपको कोई नया प्रमाण या आधार मिला होगा। उत्तर दिया—हाँ; जिस नगर में इसकी प्रथा चल जाय, उस नगर में पहनना अनुचित नहीं है। मुल्ला साहब ने कहा कि कदाचित् इसके लिये यह आधार होगा कि बादशाह की आज्ञा का पालन न करना अनुचित है। उत्तर दिया—इसके अतिरिक्त और भी कुछ। मुल्ला मुबारक बहुत बड़े विद्वान् थे। उनका पुत्र शेख अब्बुल-फजल का शिष्य था। उसने एक बहुत ही हास्यपूर्ण लेख लिखकर उपस्थित किया कि नमाज-रोजा, हज आदि सब बातें निरर्थक और व्यर्थ हैं। जरा न्याय करो; जब विद्वानों की यह दशा हो, तब अशिक्षित बादशाह क्या करे!

जब बादशाह की माता मरियम मकानी का देहांत हुआ, तब दर-

---

१ मुसलमानों मे इस प्रकार के कपड़े पहनना धर्म-विरुद्ध है।

बार के अमीरों आदि पंद्रह हजार आदमियों ने बादशाह के साथ सिर मुँड़वाया था। अब अन्ना अर्थात् खान आजम मिरजा अजीज कोकल-ताश खाँ की माता का देहांत हुआ, तब स्वयं बादशाह तथा खान आजम ने सिर मुँडाया था। अकबर अन्ना का बहुत अधिक आदर करता था, इसलिये उसने स्वयं तो सिर मुँड़ा लिया था; पर जब सुना कि और लोग भी मुंडन करा रहे हैं, तब कहला भेजा कि सिर मुँडाने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर इतनी ही देर में वहाँ चार सौ सिर और मुँह सफाचट हो गए थे। बात यह है कि लोगों के लिये यह भी एक खेल था। वे सोचते थे कि जहाँ और हजारों दिल्लगियाँ हैं, वहाँ एक यह भी सही। इससे धर्म का क्या संबंध! मुल्ला साहब इसपर व्यर्थ ही नाराज होते हैं। कोई पूछे कि जब आपने बीन बजाना[1] सीखा था, तब क्या नमाज की तरह धार्मिक कर्तव्य समझकर सीखा था? कदापि नहीं। एक दिल-बहलाव था। इन लोगों ने इन्हीं बातों को दरबार का दिल-बहलाव समझ लिया था।

अकबर को इस बात का भी अवश्य ध्यान रहता था कि यह देश हिंदुस्तान है। हिंदुओं के दिल में कहीं इस बात का खयाल न हो जाय कि एक कट्टर मुसलमान हम लोगों पर शासन कर रहा है। इसलिये वह राज्य के शासन, मुकदमों तथा आज्ञाओं में, बल्कि नित्य की साधारण बातों में भी इस तत्व का ध्यान अवश्य रखता होगा। और ऐसा ही होना भी चाहिए था। पर खुशामद करनेवालों से कोई स्थान खाली नहीं है। लोग खुशामदें कर-करके अकबर को भी बढ़ाते होंगे। भला अपने बड़प्पन या बुद्धिमानी की प्रशंसा अथवा इन बातों का ध्यान रखना किसे अच्छा नहीं मालूम होता? अकबर भी इन बातों से प्रसन्न होता था और कभी कभी मध्यम मार्ग से बहुत बढ़ भी जाता था। जब बड़े बड़े विद्वानों और मौलवियों आदि के हाल

१ मुसलमानी धर्म के अनुसार नाना-बजाना भी निषिद्ध है।

आप सुन चुके, तब फिर अकबर का तो कहना ही क्या है! वह तो एक अशिक्षित बादशाह था।

मुल्ला साहब लिखते हैं कि लेखों आदि में हिजरी सन् का लिखा जाना बंद हो गया और उसके स्थान पर सन् इलाही अकबर-शाही लिखा जाने लगा। सूर्य के हिसाब से वर्ष में चौदह ईदें होने लगीं। नौरोज की धूमधाम ईद और बकरीद की धूम धाम से भी अधिक होने लगी। मुल्ला साहब यह भी लिखते हैं कि बादशाह अरबी के ث, ح, ع, ص, ض, ط आदि के विलक्षण और विकट उच्चारणों से बहुत घबराता था। बात यह है कि कुछ विद्वान्, और विशेषतः वे जो एक बार हज भी कर आए हों, साधारण बातचीत में भी ع (ऐन) और ح (हे) का उच्चारण करते समय केवल गले से ही नहीं, बल्कि पेट तक से शब्द निकालने का प्रयत्न करते हुए देखे जाते हैं। दरबार में ऐसे लोगों की बात चीत पर अवश्य ही लोग चुटकियाँ लेते होंगे। मुल्ला साहब इस बात पर भी बिगड़े हैं कि जब लोग ع (ऐ यना) ح (हे) का साधारण अ या ह के समान उच्चारण करते थे, तब बादशाह प्रसन्न होता था।

इस्लाम धर्म के आरंभ में जब मुसलमान लोग चारों ओर विजय प्राप्त करते हुए बढ़ते चले जाते थे, तब ईरान पर भी मुसलमानी सेना पहुँची थी। पारस देश पर विजय प्राप्त होती जाती थी। हजारों वर्षों का पुराना राज्य नष्ट हो रहा था। फिरदौसी ने उस समय की दशा का बहुत ही करुणापूर्ण पर सुंदर वर्णन किया है। उसमें उसने एक स्थान पर खुसरो की माँ की जबानी कुछ शेर कहलाए हैं, जिनमें अरबवालों की कुछ निंदा है। मुल्ला साहब कहते हैं कि अकबर उनमें से दो शेरों को बार बार पढ़वाकर प्रसन्न होता है। जो बातें इसलाम धर्म के धार्मिक विश्वास के आधार पर सिद्धांत सी बन चुकी हैं, उन पर नित्य आपत्ति की जाती है और उनकी छान बीन होती है। केवल बुद्धि-जन्य तर्क से बात चीत होती है। विद्या संबंधी सभाएँ

होती हैं और मुसाहबों में चालीस आदमी चुने जाते हैं। आज्ञा है कि जो चाहे, सो प्रश्न करे; और प्रत्येक विद्या के संबंध में बात चीत हो। यदि किसी विषय पर धर्म की दृष्टि से प्रश्न किया जाय, तो कहते हैं कि यह बात मुल्लाओं से जाकर पूछो। हम से केवल वही बात पूछो, जो बुद्धि और विचार से संबंध रखती हो। यदि किसी पुराने महात्मा के वचन प्रमाण स्वरूप कहे जायँ, तो सुने ही नहीं जाते। कहा जाता है कि वह कौन था। उसने तो अमुक अमुक अवसर पर स्वयं यह यह बातें कही थीं और यह किया था, वह किया था। बस मदरसों और मसजिदों में स्थान स्थान पर इसी प्रकार की बातें हुआ करती हैं।

सन् ९९९ हि० के जशन में बहुत ही विलक्षण नियम और कानून बने थे। स्वयं अकबर का जन्म आबान मास में रविवार के दिन हुआ था; इसलिये आज्ञा हुई कि सारे साम्राज्य में रविवार के दिन पशुओं की हत्या न हो। आबान मास भर और नौरोज के जशन के अठारह दिन भी पशुओं की हत्या न हो। जो इन दिनों में पशुओं की हत्या करे, वह सजा पावे, जुरमाना भरे और उसका घर लुट जाय। स्वयं अकबर ने भी कुछ विशिष्ट दिनों में मांस खाना छोड़ दिया था। यहाँ तक कि मांस खाने के दिन वर्ष में छः महीने, बल्कि इससे भी कम रह गए थे। और उसने विचार किया था कि मैं मांस खाना एक दम से छोड़ दूँ।

सूर्य की उपासना के लिये दिन रात में चार समय नियत थे—प्रातःकाल, संध्या, दोपहर और आधी रात। दोपहर को सूर्य की ओर मुँह करके बहुत ही मनोयोगपूर्वक एक नाम का हजार जप करता था, दोनों कान पकड़कर चक्कफेरी लेता था, कानों पर मुक्के मारता जाता था और इसी प्रकार की और भी कई बातें करता जाता था। तिलक भी लगाता था। आज्ञा हुई कि सूर्योदय और आधी रात के समय नगाड़ा बजा करे। थोड़े ही दिनों बाद यह भी आज्ञा हुई कि एक स्त्री से अधिक के साथ विवाह न किया जाय। हाँ, यदि पहली स्त्री बाँझ हो, तो कोई हर्ज नहीं। यदि कोई स्त्री संतान से

निराश हो, तो विवाह न करे। विधवा यदि चाहे, तो विवाह कर ले; उसे कोई न रोके। बहुत सी हिंदू स्त्रियाँ बाल्यावस्था में ही विधवा हो जाती हैं। ऐसी स्त्रियाँ और वे, जिनका पुरुष के साथ संसर्ग न हुआ हो और विधवा हो गई हों, सती न हों। हिंदू इस पर अटके। बहुत कुछ वाद-विवाद हुआ। उनसे अकबर ने कहा कि अच्छी बात है। यदि यही बात है, तो फिर रँडुए पुरुष भी स्त्री के साथ सती हुआ करें। हठी लोग चिंतित हुए। अंत में उनसे कहा गया कि यदि तुम्हारा इतना ही आग्रह है, तो रँडुआ पुरुष सती न हो, पर साथ ही दूसरा विवाह भी न करे। इस बात का इकरार-नामा लिख दो। हिंदुओं के त्योहारों के संबंधमें भी कुछ आज्ञाएँ हुई थीं और आज्ञापत्र भी प्रकाशित हुए थे। विक्रमी संवत् के संबंध में कुछ परिवर्तन करना चाहा था, पर इसमें उसकी न चली। यह भी आज्ञा हुई कि बहुत छोटी जातियों के लोगों को विद्या न पढ़ाई जाय; क्योंकि वे विद्या पढ़ कर बहुत अनर्थ करते हैं। हिंदुओं के मुकदमों के निर्णय के लिये ब्राह्मण नियुक्त हों। उनके मामले-मुकदमे काजियों और मुफतियों के हाथ न पड़ें। देखा कि लोग गाजर मूली की तरह कसम खाते हैं; इसलिये आज्ञा दी कि लोहा गरम करके रखो; खौलते हुए तेल में हाथ डलवाओ; यदि उसका हाथ जल जाय तो वह झूठा है। या वह गोता लगावे और दूसरा आदमी तीर मारे यदि इस बीच में वह पानी में से सिर निकाल दे, तो झूठा समझा जाय। दो एक बरस बाद सती के कानून के संबंध में बहुत कड़ाई होने लगी। आज्ञा हुई कि यदि स्त्री स्वयं सती न हो, तो पकड़कर न जलाई जाय। मुसलमानों को आज्ञा दी गई कि बारह वर्ष की अवस्था तक खतना (मुसलमानी) न हो। इसके उपरांत फिर लड़के को अधिकार है। यदि वह चाहे तो खतना करावे; यदि न चाहे तो नहीं। यदि कोई कसाई के साथ बैठकर भोजन करे, तो उसके हाथ काट लो; और यदि उसके घरवालों में से कोई ऐसा करे, तो उसकी उँगलियाँ काट लो।

खैरपुरा और धर्मपुरा

इसी वर्ष नगर के बाहर दो बहुत बड़े महल बनवाए गए। एक का नाम था खैरपुरा और दूसरे का धर्मपुरा। एक में मुसलमान फकीरों के लिये भोजन बनता था और दूसरे में हिंदुओं के लिये। शेख अब्बुलफजल के आदमियों के हाथ में सारा प्रबंध था। जोगियों के जत्थे के जत्थे आने लगे; इसलिये एक और सराय बनी, जिसका नाम जोगीपुरा रखा गया। रात के समय अकबर अपने कुछ खिदमतगारों के साथ स्वयं वहाँ जाता था और एकांत में उन लोगों से बातें करता था। उनके धार्मिक विश्वासों और सिद्धांतों, योग के रहस्यों, योग-साधन की रीतियों, क्रिया-कलापों, यहाँ तक कि बैठने, उठने, सोने, जागने और काया-पलट आदि के सब रहस्यों आदि का पता लगाया और सब बातें सीखीं। बल्कि रसायन बनाना भी सीखा और सोना बनाकर लोगों को दिखलाया। शिवरात्रि की रात को उनके गुरु और महंतों के साथ बैठकर प्रसाद पाया। उन्होंने कहा कि अब आप की आयु साधारण से तिगुनी, चौगुनी अधिक हो गई है। और तमाशा यह कि दरबार के विद्वानों ने भी इसका समर्थन किया और कहा कि चंद्रमा का भोग-काल समाप्त हो चुका; उसकी आज्ञाएँ भी पूरी हो चुकीं; अब शनि का भोग-काल आरंभ हुआ है; अब इसी की आज्ञाएँ प्रचलित होंगी और लोगों की आयु बढ़ जायगी। यह बात तो पुस्तकों से भी प्रमाणित है कि प्राचीन काल में लोग सैकड़ों से लेकर हजारों वर्षों तक जीते थे। हिंदुओं की पुस्तकों में तो मनुष्यों की आयु दस दस हजार वर्ष की लिखी है। अब भी तिब्बत के पहाड़ों में खता देश के निवासियों के धर्माचार्य लामा हैं, जिनकी अवस्था दो दो सौ बरस से भी अधिक है। उन्हीं के विचार से खाने-पीने की बातों में सुधार किए गए थे और मांस खाना कम किया गया था। यहाँ तक कि उसने स्त्री के पास भी जाना छोड़ दिया था; और जो कुछ वह पहले कर चुका

था, उसके संबंध में भी उसे पश्चात्ताप होता था। खोपड़ी के बीच में तालू पर के बाल मुँडवा डाले थे, इधर उधर के रहने दिए थे। उसका खयाल यह था कि अच्छे आदमियों की आत्मा खोपड़ी के मार्ग से निकलती है। भ्रम-पूर्ण विचारों के आने का भी यही मार्ग है। मरने के समय ऐसा शब्द होता है कि मानों बिजली कड़की। यदि यह बात हो, तो समझो कि मरनेवाला बहुत नेक आदमी था और उसका अंत बहुत अच्छी तरह हुआ। वह आगे भी बहुत अच्छी तरह रहेगा और अब उसकी आत्मा कोई ऐसा शरीर धारण करेगी, जिसमें वह चक्रवर्ती राजा होगा। अकबर ने अपने इस संप्रदाय का नाम तौहीद इलाही रखा था। जो लोग इस संप्रदाय में संमिलित होते थे, वे जोगियों की परिभाषा के अनुसार चेले कहलाते थे। नीच जाति के और टुकड़-तोड़ लोग, जो किले में प्रवेश नहीं कर सकते थे, नित्य प्रातःकाल सूर्य की उपासना के समय झरोखे के नीचे आकर एकत्र होते थे। जब तक वे बादशाह के दर्शन न कर लेते थे, तब तक दातन, कुल्ला, स्नान, भोजन, पान कुछ न करते थे। रात के समय दरिद्र और दीन हिंदू, मुसलमान सब प्रकार के लोग, स्त्रियाँ, पुरुष, लूले, लँगड़े आदि सभी एकत्र होते थे। जब अकबर सूर्य के नाम का जप कर चुकता था, तब परदे में से निकल आता था। वे लोग उसे देखते ही झुककर अभिवादन करते थे।

इनमें बारह बारह आदमियों की एक टोली होती थी और एक एक टोली मिलकर बादशाह की शिष्य होती थी। इन लोगों को बादशाह अपनी तसवीर दे देता था; क्योंकि उसका पास रखना, सदा उसके दर्शन करते रहना बहुत ही शुभ और मंगलकारक समझा जाता था। वह चित्र वे लोग एक सुनहले और कामदार गिलाफ में रखते थे और उसी को सिर पर रखकर मानों मुकुटधारी बनते थे[1]। सुलतान

---

१ मुल्ला साहब ने बादशाह के चेलों को और उनके संबंध के नियमों को

ख्वाजा, जो हाजियों का प्रधान था, इनमें से सर्व-प्रधान शिष्य था। इस ख्वाजा की कब्र भी एक विलक्षण और नए ढंग से बनाई गई थी। चेहरे के सामने एक जाली बनाई गई थी, जिसमें सब पापों से मुक्त करनेवाले सूर्य की किरणें नित्य प्रातःकाल चेहरे पर पड़ा करें। गाड़ने के समय इसके होठों को भी आग दिखाई गई थी। बादशाह की आज्ञा थी कि कब्र में मेरे शिष्यों का सिर पूर्व की ओर और पैर पश्चिम को ओर रहें। वह स्वयं भी सोने में इस नियम का पालन करता था।

ब्राह्मणों ने बादशाह के एक हजार एक नाम बनाए थे। कहते थे कि यह सब भगवान् की लीला है। पहले कृष्ण और राम आदि के रूप में अवतार हुए थे; अब प्रभु ने इस रूप में अवतार लिया है। श्लोक बना बनाकर लाया करते थे और पढ़ा करते थे। पुराने पुराने कागजों पर लिखे हुए श्लोक दिखाते थे और कहते थे कि बहुत पहले से बड़े बड़े पंडित लोग लिखकर रख गए हैं कि इस देश में एक ऐसा चक्रवर्ती राजा होगा, जो ब्राह्मणों का आदर करेगा, गौओं की रक्षा करेगा और संसार को अन्याय से बचावेगा।

मुकुंद ब्रह्मचारी

अकबर के सामने एक प्राचीन लेख उपस्थित किया गया था, जिससे सूचित होता था कि इलाहाबाद में मुकुंद नामक एक ब्रह्मचारी

इसी रूप में चित्रित किया है। अब्बुलफजल ने सन् ९९१ के विवरण में लिखा है कि इस वर्ष दासों और दासियों को मुक्त करने की आज्ञा हुई; क्योंकि ईश्वर के बनाए हुए मनुष्यों पर दूसरे मनुष्यों का इस प्रकार का अधिकार बहुत ही अनुचित है। हाँ, बादशाह अपनी सेवा के लिये दास रखते थे, जो चेले कहलाते थे। सन् ९८५ में ऐसे बारह हजार दास थे, जो शरीर-रक्षक का काम करते थे और चेले कहलाते थे। ये लोग बहुत ही आनंद-पूर्वक रहते थे। दिल्ली में एक "चेलों का कूचा" है, जिसमें पहले इन्हीं के वंशज रहा करते थे।

हो गया था, जिसने अपने सारे शरीर के अंग अंग काटकर हवन-कुंड में डाले थे। वह अपने चेलों के लिये कुछ श्लोक लिखकर रख गया था, जिनका अभिप्राय यह था कि हम शीघ्र ही एक प्रतापी बादशाह बनकर फिर इस संसार में आवेंगे। उस समय भी हमारे सामने उपस्थित होना। उसी के अनुसार बहुत से ब्राह्मण वह लेख लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए थे। उन लोगों ने निवेदन किया कि हम लोग तब से श्रीमान् पर ध्यान लगाए बैठे हैं। जब गणना की गई, तब पता चला कि मुकुंद ब्रह्मचारी के मरने और बादशाह के जन्म लेने में केवल तीन चार मास का अंतर था। कुछ लोगों ने इस पर यह भी आपत्ति की कि एक ब्राह्मण का म्लेच्छ या मुसलमान के घर में जन्म लेना ठीक नहीं जँचता। इसका उत्तर उन लोगों ने यह दिया कि करनेवाले ने तो अपनी ओर से कोई बात छोड़ नहीं रखी थी, पर वह भाग्य को क्या करे! जिस स्थान पर उसने हवन किया था, उस स्थान पर कुछ हड्डियाँ और लोहा गड़ा हुआ था। इसी का यह फल हुआ कि उसे मुसलमान के घर में जन्म लेना पड़ा।

अब मुसलमानों ने सोचा कि हम लोग हिंदुओं से पीछे क्यों रह जायँ। हाजी इब्राहीम ने भी एक बहुत पुरानी, बिना नाम की, कीड़ों की खाई हुई, कभी की गड़ी-दबी पुस्तक ढूँढ निकाली। उसमें शेख इब्न अरबी के नाम से एक लेख लिखा हुआ था, जिसका अभिप्राय यह था कि हजरत इमाम मेंहदी की बहुत सी स्त्रियाँ होंगी और उनकी दाढ़ी मुँडी होगी। तात्पर्य यह कि वह भी आप ही हैं!

बादशाह के कुछ विशिष्ट अंग-रक्षक सैनिक होते थे, जो "एक्का" कहलाते थे। पीछे से ये लोग अहदी कहलाने लगे थे और अंत में यही चेले भी हुए। इन लोगों के संबंध में यह विश्वास किया जाता था कि यही लोग वास्तविक अहदी हैं; क्योंकि ये विश्व और ब्रह्म की एकता का पूरा ज्ञान रखते हैं; और समय पड़ने पर ये लोग पानी और आग किसी के मुकाबले में भी मुँह न फेरेंगे।

मुल्ला साहब जो चाहें, सो कहा करें; पर सच पूछिए तो इसमें बेचारे बादशाह का कोई दोष नहीं था। जब बड़े बड़े धार्मिक स्वयं ही अपना धर्म लाकर बादशाह पर न्योछावर करें, तो भला बतलाइए, वह क्या करे ! पंजाब के मुल्ला शीरीं एक बहुत बड़े विद्वान् और धर्माचार्य थे। किसी समय इन्होंने बहुत आवेश में आकर एक कविता लिखी थी, जिसमें बादशाह की, विधर्मी हो जाने के कारण, निंदा की गई थी। अब इन्होंने सूर्य की प्रशंसा में एक हजार पद कह डाले थे और उसका नाम "हजार शुआअ्" (सहस्र-रश्मि) रक्खा था। इससे बढ़कर एक और विलक्षण बात सुनिए। जब मीर सदर जहान की प्यास शराब से भी न बुझी, तब सन् १००४ हि० में वे अपने दोनों पुत्रों के साथ बादशाह के शिष्य हो गए। उसके हाथ चूमे और पैर छूए; और अंत में पूछा कि मेरी दाढ़ी के संबंध में क्या आज्ञा होती है। बादशाह ने कहा कि रहे, क्या हर्ज है। इनके संबंध में भी अकबर की एक बात प्रशंसनीय है। वह यह कि जब यह नियम हुआ कि जो लोग दरबार में आवें, वे अभिवादन करने के समय झुककर जमीन चूमें, तब बादशाह ने इन मीर सदर जहान को उस नियम के पालन से मुक्त कर दिया। वह स्वयं अपने मन में लज्जित होता होगा कि ये धार्मिक व्यवस्थाएँ देनेवालों में सर्व-प्रधान हैं; पैगंबर की गद्दी पर बैठे हैं; इनकी मोहर से सारे भारत के लिए व्यवस्थाएँ प्रचलित होती हैं। सिंहासन के सामने इनसे सिर झुकवाना ठीक नहीं। इस पर से इनकी ये करतूतें थीं ! कोई बतलावे कि वह कौन सी बात थी, जो अकबर को करनी चाहिए थी और उसने नहीं की। जब लोग स्वयं अपने अपने धर्म को सांसारिक सुखों पर न्योछावर किए देते थे, तब उस बेचारे का क्या अपराध था ?

एक विद्वान् को बादशाह ने आज्ञा दी थी कि शाहनामे को गद्य में लिख दो। उसने लिखना आरंभ किया। उसमें जहाँ सूर्य का नाम आता था, वहाँ वह उसके साथ वही विशेषण लगाता था, जो स्वयं ईश्वर के नाम के साथ लगाए जाते हैं।

शेख कमाल बियाबानी

अकबर प्रायः यही चाहता था कि कोई ऐसा पहुँचा हुआ आदमी मिले, जो कुछ अद्भुत कृत्य या करामात दिखलावे। पर उसे कोई ऐसा आदमी न मिला। सन् ९९७ हि० में कुछ दुष्ट लाहौर में एक बुड्ढे शैतान को पकड़ लाए और उसे रावी नदी के किनारे बैठाकर प्रसिद्ध कर दिया कि ये हजरत शेख कमाल बियाबानी (जंगली) हैं। इनमें यह विशेषता है कि नदी के इस किनारे खड़े खड़े बातें करते हैं और पल के पल में हवा की तरह पानी पर से होते हुए उस पार जा पहुँचते हैं। बहुत से लोगों ने इस कथन का समर्थन करते हुए यहाँ तक कह डाला कि हाँ, हमने स्वयं देख और सुन लिया है। इन्होंने पार खड़े होकर साफ आवाज दी है कि अजी फलाने, अब तुम घर जाओ। बादशाह उसे स्वयं अपने साथ लेकर नदी किनारे गया और धीरे से उससे कहा कि हम तो ऐसी ही बातें ढूँढा करते हैं। यदि तुम में कोई करामात हो, तो दिखलाओ। जो कुछ राज-पाट है, सब तुम्हारा हो जायगा; बल्कि हम भी तुम्हारे हो जायँगे। वह बेचारा चुपचाप खड़ा रह गया। क्या उत्तर देता। कुछ होता, तब तो कहता। अंत में बादशाह ने कहा कि अच्छा, इसके हाथ पैर बाँधकर इसे किले के बुर्ज पर से नीचे नदी में गिरा दो। यदि इसमें कोई विशेषता होगी, तो यह भला चंगा निकल आवेगा; नहीं तो जाय जहन्नुम में। यह सुनकर वह बेचारा डर गया और पेट की ओर संकेत करके बोला कि यह सब इसी नरक के लिये है। इतिहास के ज्ञाता समझ गए होंगे कि रावी नदी, जो आज किले से दो मील दूर हट गई है, उस समय किले के समन बुर्ज के नीचे लहरें मारती रही होगी।

बात यह थी कि वह व्यक्ति लाहौर का ही रहनेवाला था। उसका पुत्र भी उसके साथ था, जिसकी आवाज उसकी आवाज से बहुत मिलती जुलती थी। वह जिससे करामात दिखलाने का वादा

करता था, पुत्र उसका नाम सुन लिया करता था और पुत्र या नाव के द्वारा पार चला जाता था। जब अवसर आता था, तब पिता इस पार बात-चीत करता था और पुत्र सामने से सब बातें देखता रहता था। इधर पिता लोगों को जुल देकर किनारे से नीचे उतरता था और कहता था कि मैं हाथ पैर धोकर अमल (मंत्र) पढ़ता हूँ; और वहीं इधर उधर करारों में छिप जाता था। थोड़ी देर बाद पुत्र उस पार से आवाज़ दे देता था कि अजी फलाने, घर जाओ। आखिर भेड़िए का बच्चा भी तो भेड़िया ही होगा

जब बादशाह को उसका यह समाचार मिला, तब वह उस पर बहुत बिगड़ा और उसे भक्कर भेज दिया। उसने वहाँ पहुँचकर भी अपना जाल फैलाया और कहा कि मैं अब्दाल[1] हूँ। और एक शुक्रवार की रात को लोगों को दिखला दिया कि सिर अलग और हाथ पाँव अलग।

खानखानाँ एक युद्ध में भक्कर गए हुए थे। उनके साथ उनका सेनापति दौलत खाँ था। वही उनका शिक्षक और प्रतिनिधि भी था। वह इसे बहुत मानने लग गया। यदि उसने धोखा खाया, तो कोई बात ही नहीं; क्योंकि वह जंगली अफगान था। पर खानखानाँ भी इतने बुद्धिमान् और विचारशील होते हुए उसके फेर में आकर धोखा खा ही गए। हजरत बियाबानी ने इनसे कहा कि मैं हजरत ख्वाजा खिज्र[2] से आपकी भेंट करा देता हूँ। उस समय अटकी नदी के किनारे डेरे पड़े हुए थे। खानखानाँ स्वयं वहाँ आकर खड़े हुए। उनके पार्श्ववर्ती और मुसाहब आदि भी साथ आए। उस धूर्त ने पानी में उतरकर गोता

---

१ एक प्रसिद्ध मुसलमान त्यागी और साधु जिनके नाम से पेशावर के पास हसन अब्दाल नामक एक छोटा नगर बसा हुआ है।

२ एक प्रसिद्ध पैगंबर जो मुसलमानी धर्म के अनुसार जल के देवता और सब के मार्ग-दर्शक माने जाते हैं।

लगाया और सिर निकालकर कहा कि हजरत खिज्र आपको आशीर्वाद देते हैं। खानखानाँ के हाथ में सोने का एक गेंद था। उसने कहा कि हजरत खिज्र जरा यह गेंद देखने के लिये माँगते हैं। खानखानाँ ने दे दिया। उनसे वह गेंद पानी में डालकर फिर गोता लगाया और उसे बदलकर पीतल का दूसरा गेंद लाकर उनके हाथ में दे दिया। बातों बातों में और हाथों हाथों में सोने का गेंद उड़ा ले गया।

मूर्छा और मोह

एक दिन अकबर के साथ एक बहुत ही विलक्षण घटना हुई। वह पाकपटन[1] से जियारत (दर्शन) करके लौट रहा था। मार्ग में नंदना के इलाके में पहुँचकर शिकार खेलने लगा। जानवर घेरकर चार दिन में बहुत से शिकार मारकर गिरा दिए। जानवरों के चारों ओर डाला हुआ घेरा सिमटता सिमटता मिलना ही चाहता था कि अचानक बादशाह ऐसे आवेश में आ गया कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। किसी को कुछ भी पता न चला कि बादशाह को क्या दिखाई दिया। उसी समय शिकार बंद कर दिया गया। जिस वृक्ष के नीचे बादशाह की यह दशा हुई थी, वहाँ दीन-दुखियों और दरिद्रों को बहुत सा धन दिया और इस दैवी आभास की स्मृति में एक विशाल प्रासाद बनवाने और बाग लगवाने की आज्ञा दी। वहीं बैठकर सिर के बाल मुँडवाए। बहुत पास रहनेवाले कुछ मुसाहब आपसे आप खुशामद के उस्तरे से मुँड़ गए। यह घटना नगरों में बहुत ही विलक्षण रूपों में अतिरंजित होकर प्रसिद्ध हुई। यहाँ तक कि कुछ लोगों ने अकबर के जीवन के संबंध में उलटी सीधी और चिंताजनक बातें फैलाईं, जिनके कारण कुछ स्थानों में अराजकता भी फैल गई। अकबर पर इस घटना का ऐसा प्रभाव हुआ कि उसने उसी दिन से शिकार खेलना छोड़ दिया।

---

१ पंजाब के वर्त्तमान मांटगोमरी जिले का स्थान जो मुसलमानी धर्म्म का एक तीर्थ है।

जहाजों का शौक

एशिया के बादशाहों को कभी इस बात का शौक नहीं हुआ कि समुद्र पार के दूसरे देशों पर जाकर आक्रमण करें और उनपर अधिकार जमावें। भारत के राजाओं की तो कोई बात ही नहीं है। यहाँ के पंडितों ने तो समुद्र-यात्रा को धर्मविरुद्ध ही बतला दिया था। जरा अकबर की तबीयत देखो। उसके बाप-दादा के राज्य का भी समुद्र से कोई संबंध ही नहीं था। उन्होंने स्वयं भारत में ही आकर आँखें खोली थीं और उन्हें स्थल के झगड़े ही साँस न लेने देते थे। इतना होने पर भी इसकी दृष्टि समुद्र पर लगी हुई थी। इसके मन का शौक दो कारणों से उत्पन्न हुआ था। पहली बात तो यह थी कि सौदागर और हाजी आदि जब भारत से कहीं बाहर जाते थे या वहाँ से लौटकर आते थे, तब मार्ग में डच और पुर्त्तगाली जहाज उन पर आ टूटते थे। लूटते थे, मारते थे, आदमियों को पकड़ ले जाते थे। यदि बहुत कृपा करते, तो निश्चित से बहुत अधिक कर वसूल करते थे और कष्ट भी देते थे। बादशाही लश्कर का हाथ वहाँ तक किसी प्रकार पहुँच ही न सकता था, इसलिये अकबर बहुत दिक होता था।

जब फैजी राजदूत होकर दक्षिण की ओर गया था, तब वह वहाँ से जो पत्र लिखकर भेजता था, उनमें समुद्री यात्रियों की जबानी रूम और ईरान के समाचार इतनी उत्तमता तथा सुंदरता से वर्णित करता था, जिससे मालूम होता है कि अकबर इन बातों को बहुत ही ध्यान और शौक से सुना करता था। इन लेखों में कई स्थानों पर समुद्री मार्ग के कुप्रबंध का भी कुछ उल्लेख मिलता है। इसी विचार से वह बंदरगाहों पर बड़े शौक से अधिकार किया करता था।

उस समय के ग्रंथों आदि में कराची के स्थान पर ठट्ठा और दक्षिण की ओर गोआ, खंभात और सूरत के नाम प्रायः देखने में आते हैं। रावी नदी बहुत जोरों से बह रही थी। अकबर ने चाहा था

कि यहाँ से जहाज छोड़े और मुलतान के नीचे से निकालकर सक्खर से ठट्ठे में पहुँचा दे। इसलिये लाहौर में ही जहाज का एक बच्चा तैयार हुआ, जिसका मस्तूल ३६ गज का था। जब पालों आदि के कपड़े पहनाकर उसे रवाना किया गया, तब वह पानी की कमी के कारण कई स्थानों पर रुक रुक गया। जब सन् १००२ हि० में ईरान के राजदूत को बिदा करके स्वयं अपना राजदूत ईरान भेजा, तब उसे आज्ञा दी कि लाहौर से जल-मार्ग से होते हुए लाहरी बंदर में जाकर उतरो और वहाँ से सवार होकर ईरान की सीमा में जा पहुँचो।

वह समय और था, हवा और थी, पानी और था। आए दिन लड़ाइयाँ झगड़े हुआ करते थे। और फिर सब अमीरों का दिल भी अकबर के दिल के समान नहीं था, जो वे अपने शौक से यह काम पूरा करते और नदियों को ऐसा बढ़ाते कि वे जहाज चलाने के योग्य हो जातीं। इसलिये यह काम आगे न चल सका।

पूर्वजों के देश की स्मृति

अकबर के साम्राज्य-रूपी वृक्ष ने भारत में जड़ पकड़ ली थी; लेकिन फिर भी उसके पूर्वजों के देश अर्थात् समरकंद और बुखारा की हवाएँ सदा आया करती और उसके दिल को हरियाली की तरह लहराया करती थीं। यह दाग इसके दिल पर, बल्कि इससे लेकर औरंगजेब तक के दिल पर सदा ताजा बना रहता था। अकबर को प्रायः यही ध्यान रहता था कि हमारे दादा बाबर को उजबक ने पाँच पीढ़ियों के राज्य से वंचित करके निकाला और इस समय हमारा घर हमारे शत्रुओं के अधिकार में है। परंतु अब्दुल्ला खाँ उजबक भी बहुत ही वीर और प्रतापी बादशाह था। उसे अपने स्थान से हटाना तो दूर रहा, उसके आक्रमणों के कारण काबुल और बदख्शाँ के भी लाले पड़े रहते थे। अब्बुलफजल की पुस्तक में अकबर का एक वह पत्र है, जो उसने काशगर के शासक के नाम भेजा था। यदि उसे तुम पढ़ोगे,

तो कहोगे कि सचमुच अकबर साम्राज्य की शतरंज का बहुत ही चतुर खिलाड़ी था। काशगर देश पर भी उसका पैतृक हक या दावा था। पर कहाँ काशगर और कहाँ भारतवर्ष! फिर भी जब अकबर ने काश्मीर पर अधिकार किया, तब उसे अपने पूर्वजों के देश का स्मरण हुआ। शतरंज का खिलाड़ी जब अपने विपक्षी का कोई मोहरा मारना चाहता है या जब अपने विपक्षी के किसी मोहरे को अपने किसी मोहरे पर आता हुआ देखता है, तब वह अपने उसी मोहरे से लड़कर नहीं मार सकता। उसे उचित है कि वह अपने दाहिने, बाएँ, पास या दूर से किसी मोहरे से अपने मोहरे पर जोर पहुँचावे और विपक्षी पर चोट करे। अकबर देखता था कि मैं काबुल के अतिरिक्त और कहीं से उजबक पर चोट नहीं कर सकता। काश्मीर की ओर से बदख़शाँ को एक मार्ग जाता है और उसका देश तुर्किस्तान और तातार की ओर दूर दूर तक फैल गया है और फैला चला जाता है। वह यह भी समझता था कि उजबक की तलवार की चमक काशगर, खता और खुतनवाले भयभीत दृष्टि से देख रहे होंगे और उजबक इसी चिंता में है कि कब अवसर मिले, और इसे भी निगल जाऊँ।

अकबर ने इसी आधार पर काशगर के शासक के साथ पुराना निकट का संबंध मिलाकर मार्ग निकाला। यद्यपि उक्त पत्र में स्पष्ट रूप से खोलकर कुछ नहीं कहा है, तथापि पूछता है कि खता के राज्य का हाल बहुत दिनों से नहीं मालूम हुआ। तुम लिखो कि आज कल वहाँ का हाकिम कौन है; उसकी किस से शत्रुता और किससे मित्रता है; वहाँ कौन कौन से विद्वान् और बुद्धिमान् आदि हैं; मंत्रियों में से कौन कौन लोग प्रसिद्ध हैं, इत्यादि इत्यादि। भारत की बढ़िया बढ़िया चीजों में से जो कुछ तुम्हें पसंद हों, निःसंकोच होकर लिखो। हम अपना अमुक व्यक्ति भेजते हैं। उसे आगे को चलता कर दो, आदि आदि।

प्रति वर्ष जो लोग हज करने के लिये जाते थे, उनके साथ अकबर

अपनी ओर से एक प्रधान नियुक्त करके भेजा करता था, जो मीर-हाज कहलाता था। उस मीर-हाज के हाथ अकबर हजारों रुपए मक्के, मदीने तथा दूसरे स्थानों के रौजों और दरगाहों आदि के मुजावरों के पास हर जगह बँटने के लिये भेजा करता था। उनमें भी कुछ खास खास लोगों के लिये अलग रुपए और उपहार आदि हुआ करते थे, जो गुप्त रूप से दिए जाते थे। मक्के के खास खास लोगों के पास गुप्त रूप से जो रुपए भेजे जाते थे, वे आखिर किस मतलब से भेजे जाते थे? यह रूम के सुलतान के घर में सुरंग लगती थी। दुःख है कि उस समय के लेखकों ने खुशामदों के तो पुल बाँध दिए, पर इन बातों की कोई परवाह ही न की। न उस समय के दफ्तर ही रह गए, जिनसे ये सब रहस्य खुलते। लाखों रुपए नगद और लाखों रुपए के सामान जाया करते थे। एक रकम, जो शेख अबदुल नबी सदर से यहाँ वापस आने पर माँगी गई थी सत्तर हजार रुपयों की थी। और जो कुछ खुल्लम खुल्ला जाता था, उसका तो कुछ ठिकाना ही नहीं।

संतान सुयोग्य न पाई

जब इस प्रतापी बादशाह की संतानों पर दृष्टि जाती है; तब इस बात का दुःख होता है कि इस ने वृद्धावस्था में अपनी संतान के कारण बहुत दुःख और कष्ट भोगे। अंतिम अवस्था में एक पुत्र रह गया था; पर उसकी ओर से भी यह बहुत दुःखी और निराश हो गया था। ईश्वर ने इसे तीन पुत्र दिए थे। यदि ये तीनों योग्य होते, तो साम्राज्य और प्रताप की वृद्धि में बहुत सहायक होते। अकबर की यह इच्छा थी कि ये पुत्र भी मेरे ही समान साहसी हों और इनके विचार आदि भी मेरे ही समान हों। इनमें से कोई हस्तगत किए हुए प्रांतों को सँभाले और विजित देशों की सीमा बढ़ावे, कोई दक्षिण को साफ करे, कोई अफगानिस्तान को साफ करके आगे बढ़े और उजबक के हाथ से अपने पूर्वजों का देश छुड़ावे। पर वे सब ऐसे शराबी-कबाबी, विलासी और

इंद्रिय-लोलुप हुए कि कुछ भी न हुए। दो पुत्र तो बिलकुल युवावस्था में ही परलोकगामी हुए। तीसरा जहाँगीर था। साम्राज्य का इतिहास लिखनेवाले राज्य के नौकर ही थे। वे हजार तरह की बातें बनाया करें, पर बात यही है कि अकबर जैसा पिता मरते दम तक उससे नाराज था और उसकी करतूतों से अत्यंत दुःखी रहता था।

सब से पहले जहाँगीर १७ रबीउल्-अव्वल सन् ९७७ हि० को उत्पन्न हुआ था। यह राजा भारामल कछवाहे का नाती, राजा भगवानदास का भान्जा और मानसिंह की फूफी का बेटा था।

दूसरा पुत्र मुराद सन् ९७७ हि० में १० मुहर्रम को फतहपुर के पहाड़ों में उत्पन्न हुआ था और इसी कारण अकबर इसे प्यार से "पहाड़ी-राजा" कहा करता था। यह दक्षिण के युद्ध में सेनापति होकर गया था। शराब बहुत दिनों से इसका शरीर घुला रही थी और ऐसी मुँह लगी थी कि छूट न सकती थी। दक्षिण में आकर वह और भी बढ़ गई इसका रोग भी सीमा से बढ़ गया। अंत में सन् १००७ हि० में तीस वर्ष की अवस्था में बहुत ही दुःखी और विफल-मनोरथ मुराद इस संसार से चल बसा।

जहाँगीर अपनी तुजुक में लिखता है कि इसका रंग गेहुँआँ, शरीर छरहरा और आकृति बहुत सुंदर थी। इसके चेहरे से प्रभुत्व और बड़प्पन झलकता था और इसके आचार-व्यवहार से उदारता और वीरता टपकती थी। इसके जन्म के उपलक्ष में इसके पिता ने अजमेर की दरगाह की प्रदक्षिणा की थी, नगर के चारों ओर प्राकार बनवाया था, अच्छी अच्छी इमारतें और ऊँचे महल बनवाकर किले को सुशोभित किया था और अमीरों को भी आज्ञा दी थी अपने अपने पद के योग्य इमारतें बनवावें। तीन बरस में नगर मानों भौतिक विद्या से बना हुआ नगर हो गया था।

तीसरे पुत्र दानियाल का इस वर्ष अजमेर में जन्म हुआ था। जब इसकी माता गर्भवती थी, तब मंगल और वृद्धि की कामना से दरगाह

के एक सज्जन और सच्चरित्र मुजावर के घर में इसे रहने के लिये स्थान दिया गया था। उस मुजावर का नाम शेख दानियाल था। जब इसका जन्म हुआ, तब इसी विचार से इसका नाम भी दानियाल रखा गया था। यह वही होनहार था, जिससे खानखानाँ की कन्या ब्याही गई थी। मुराद के उपरांत यह दक्षिण के युद्ध में भेजा गया था। खानखानाँ को भी इसके साथ किया गया था। पीछे पीछे अकबर स्वयं भी सेना लेकर गया था। कुछ प्रदेश इसने जीता था, कुछ स्वयं अकबर ने जीता था। पर सब इसी को दे दिया। खानदेश का नाम दानदेश (अर्थात् दानियाल का देश) रखा और आप राजधानी को लौट आया। यह जानेवाला भी शराब में डूब गया। अभागे पिता को समाचार मिला। खानखानाँ के नाम आज्ञापत्र दौड़ने लगे। वह क्या करते! उन्होंने बहुत समझाया बुझाया; नौकरों को बहुत ताकीद की कि शराब की एक बूँद भी अंदर न जाने पावे; पर उसे लत लग गई थी। नौकरों की मिन्नत खुशामद करता था कि ईश्वर के वास्ते जिस प्रकार हो सके, कहीं से लाओ और पिलाओ।

इस मरनेवाले युवक को बंदूक से शिकार करने का भी बहुत शौक था। एक बहुत बढ़िया और अचूक निशाना लगानेवाली बंदूक थी, जिसे यह सदा अपने साथ रखता था। उसका नाम "एक्का व जनाजा" रखा था और उसकी प्रशंसा में एक पद स्वयं रचकर उसपर लिखवाया था।

जिन नौकरों और मुसाहबों से इसका बहुत हेल मेल था, उनकी एक बार इसने बहुत मिन्नत खुशामद की। एक मूर्ख और लालच का मारा शुभचिंतक इसी बंदूक की नली में शराब भरकर ले गया। उसमें मैल और धूआँ जमा हुआ था। कुछ तो वह छूटा और कुछ शराब ने लोहे को काटा। मतलब यह कि पीते ही लोट पोट होकर मृत्यु का आखेट हो गया। यह भी बहुत ही सुंदर और सजीला युवक था। अच्छे हाथी और अच्छे घोड़े बहुत पसंद करता था। संभव

नहीं था कि किसी अमीर के पास सुने और न ले ले। संगीत से भी इसे बहुत प्रेम था। कभी कभी आप भी हिंदी दोहरे कहता था, और अच्छे कहता था। इस युवक ने भी तेंतीस वर्ष की अवस्था में सन् १०१३ हि० में अपने पिता को अपने वियोग का दुःख दिया और सलीम या जहाँगीरी (संसार पर अधिकार-प्राप्ति) के लिये मैदान साफ कर दिया। (देखो "तुजुक जहाँगीरी")

जहाँगीर ने भी शराब पीने में कसर नहीं की। अपनी स्वच्छ-हृदयता के कारण जहाँगीर स्वयं तुजुक के १० वें सन् में लिखता है कि खुर्रम (शाहजहाँ) की अवस्था चौबीस वर्ष की हुई। कई विवाह हुए, पर अभी तक उसने शराब से अपने होंठ तर नहीं किए थे। मैंने कहा कि बाबा, शराब तो वह चीज है कि बादशाहों और शाहजादों ने पी है। तू बाल-बच्चोंवाला हो गया, और अब तक तूने शराब नहीं पी। आज तेरा तुला-दान का जशन है। हम तुझे शराब पिलाते हैं और आज्ञा देते हैं कि जशन और नौरोज के दिनों में या बड़ी बड़ी मजलिसों में शराब पिया कर। पर इस बात का ध्यान रखा कर कि बहुत अधिक न हो जाय। इतनी शराब पीना, जिससे बुद्धि जाती रहे, बुद्धिमानों ने अनुचित बतलाया है। उचित यह है कि इसके पीने से लाभ उद्दिष्ट हो, न कि हानि। तात्पर्य यह कि उसे बहुत ताकीद करके शराब पिलाई।

जहाँगीर स्वयं अपने संबंध में लिखता है कि मैंने १५ वर्ष की अवस्था तक शराब नहीं पी थी। मेरी बाल्यावस्था में माता और दाइयाँ कभी कभी पूज्य पिता जी से थोड़ा सा अर्क मँगा लिया करती थीं। वह भी तोला भर; गुलाब या पानी में मिलाकर खाँसी की दवा कहकर मुझे पिला दिया। एक बार अटक के किनारे पूज्य पिता जी का लश्कर पड़ा हुआ था। मैं शिकार के लिये सवार हुआ। बहुत फिरता रहा। संध्या समय जब आया, तब बहुत थकावट मालूम हुई। उस्ताद शाह कुली तोपची अपने काम में बहुत निपुण था। मेरे पूज्य चाचा

मिरजा हकीम के नौकरों में से था। उसने कहा कि यदि आप शराब की एक प्याली पी लें, तो अभी सारी थकावट दूर हो जाय। जवानी दीवानी थी। ऐसी बातों की ओर चित्त भी प्रवृत्त था। महमूद आबदार से कहा कि हकीम अली के पास जा और थोड़ा सा हलके नशेवाला शरबत ले आ। हकीम ने डेढ़ प्याला भेज दिया। सफेद शीशे में बसंती रंग का बढ़िया मीठा शरबत था। मैंने पिया। बहुत ही विलक्षण आनंद प्राप्त हुआ। उसी दिन से शराब पीना आरंभ किया और दिन पर दिन बढ़ाता गया। यहाँ तक नौबत पहुँची कि अंगूरी शराब कुछ मालूम ही न होती थी। अब अर्क पीना शुरू किया। नौ वर्ष में यह दशा हो गई कि दो-आतिशा (दो बार की खींची हुई) शराब के १४ प्याले दिन को और ७ रात को पिया करता था। सब मिलाकर अकबरी सेर से ६ सेर हुई। उन दिनों एक मुर्ग के कबाब के साथ रोटी और मूली यही मेरा भोजन था। कोई मना नहीं कर सकता था। यहाँ तक नौबत पहुँच गई कि नशे की अवस्था में हाथ पैर काँपने लगते थे। प्याला हाथ में नहीं ले सकता था। और और लोग प्याला हाथ में लेकर पिलाया करते थे। हकीम अब्बुलफतह का भाई हकीम हमाम पिता जी के विशिष्ट पार्श्ववर्तियों में से था। उसे बुलाकर सारी दशा कह सुनाई। उसने बहुत ही प्रेम और सहानुभूति दिखलाते हुए निस्संकोच भाव से कहा कि पृथ्वीनाथ, आप जिस प्रकार अर्क पीते हैं, उससे छः महीने में यह दशा हो जायगी कि फिर कोई उपाय ही न हो सकेगा, रोग असाध्य हो जायगा। एक तो उसने शुभचिंतन के विचार से निवेदन किया था, दूसरे जान भी प्यारी होती है; इसलिये मैंने फलोनिया का अभ्यास डाला। शराब घटाता जाता था और फलोनिया बढ़ाता जाता था। मैंने आज्ञा दी कि अंगूरी शराब में अर्क मिलाकर दिया करो; इसलिये दो हिस्से अंगूरी शराब में एक हिस्सा अर्क मिलाकर लोग मुझे देने लगे। घटाते घटाते सात वर्ष में छः प्याले पर आ गया। अब पंद्रह वर्ष से इसी प्रकार हूँ। न

घटती है, न बढ़ती है। रात के समय पिया करता हूँ। पर बृहस्पति का दिन शुभ है; क्योंकि उसी दिन मेरा राज्यारोहण हुआ था। और शुक्रवार से पहलेवाली रात भी पवित्र है; क्योंकि उसके उपरांत दूसरा दिन शुक्रवार भी शुभ ही होता है; इसलिये उस दिन नहीं पीता। जब शुक्र का दिन समाप्त हो जाता है, तब पीता हूँ। जी नहीं चाहता कि वह रात बेहोशी में बीते, और मैं उस सच्चे ईश्वर को धन्यवाद देने से वंचित रहूँ। बृहस्पतिवार और रविवार के दिन मांस नहीं खाता।

आजकल के सीधे सादे मुसलमान मुसलमानी शासन और मुसलमानी राज्य के नाम पर निछावर हुए जाते हैं। हम तो हैरान हैं कि वे कैसे मुसलमान थे और वे कैसे मुसलमानों के नियम आदि थे कि जिसे देखो, माँ के दूध की तरह शराब पिए जाता है। नामों की सूची लिखकर अब इनको क्यों बदनाम किया जाय। और फिर एक शराब के नाम को क्या रोइए। बहुत कुछ सुन चुके; और आगे भी सुन लोगे कि क्या क्या होता था।

अब इन शाहजादों की योग्यता का हाल सुनिए। अकबर को दक्षिण पर विजय प्राप्त करने का बहुत शौक था। वह उधर के हाकिमों और अमीरों को परचाया करता था। जो लोग आते थे, उनकी यथेष्ट आव-भगत किया करता था। स्वयं भी उपहार देकर दूत आदि भेजा करता था। सन् १००३ हि० में मालूम हुआ कि बुरहानुलमुल्क के मरने और उसके अयोग्य पुत्रों के आपस में लड़ने झगड़ने के कारण देश में अंधेर मच गया है। दक्षिण के अमीरों के निवेदनपत्र भी अकबर के दरबार में पहुँचे कि यदि श्रीमान् इस ओर आने का विचार करें, तो ये सेवक सब प्रकार से सेवा करने के लिये उपस्थित हैं। अकबर ने मंत्रियों से मंत्रणा करके उधर जाने का दृढ़ विचार किया। देश का प्रबंध अमीरों में बाँट दिया और उनके पद बढ़ाए। अब तक दरबार में सब से ऊँचा मंसब पंच-हजारी था। अब शाहजादों को वह मंसब प्रदान किए, जो आज तक कभी सुने न गए थे। बड़े

शाहजादे सलीम को, जो बादशाह होने पर जहाँगीर कहलाया और जो राज्य का उत्तराधिकारी था, बारहहजारी मंसब दिया। मुराद को दस-हजारी और दानियाल को सात-हजारी मंसब दिया गया।

मुराद को सुल्तान रूम की चोट पर सुलतान मुराद बनाकर दक्षिण पर आक्रमण करने के लिये भेजा। इस शाहजादे को कोई अनुभव नहीं था। पहले तो यह सब को बहुत ऊँची दृष्टिवाला युवक दिखाई दिया; पर वास्तव में इसमें साहस बहुत ही कम और समझ बहुत ही थोड़ी थी। खानखानाँ जैसे व्यक्ति को इसने अपनी नासमझी के कारण ऐसा तंग किया कि उसने दरबार में निवेदनपत्र भेजा कि मुझे वापस बुला लिया जाय। इस प्रकार वह वापस बुलवा लिया गया और मुराद दुःखी होकर इस संसार से चल बसा।

अकबर ने एक हाथ तो अपने कलेजा के दाग पर रखा और दूसरे हाथ से साम्राज्य को सँभालना आरंभ किया। इसी बीच में (सन् १००५ हि० में) समाचार आया कि तुर्किस्तान का शासक अब्दुल्ला खाँ उजबक अपने पुत्र के हाथ से मारा गया और देश में छुरी कटारी चल रही है। अकबर ने तुरंत अपने प्रबंध का स्वरूप बदला। अमीरों को लेकर बैठा। मंत्रणा की। सलाह यही ठहरी कि पहले दक्षिण का निर्णय कर लेना आवश्यक है; क्योंकि यह घर के अंदर का मामला है, और कार्य भी प्रायः समाप्ति पर ही है। पहले इधर से निश्चिंत हो लेना चाहिए, तब उधर चलना चाहिए। इसलिये इस आक्रमण की व्यवस्था दानियाल के सुपर्द की गई और मिरजा अब्दुल रहीम खानखानाँ को साथ करके उसे खानदेश की ओर भेज दिया।

सलीम को शाहंशाह की पदवी देकर और बादशाही छत्र, चँवर आदि प्रदान करके साम्राज्य का उत्तराधिकारी बनाया। अजमेर का सूबा शुभ और मंगलकारक समझकर उसे जागीर में प्रदान किया और मेवाड़ (उदयपुर) पर आक्रमण करने के लिये भेजा।

राजा मानसिंह आदि प्रसिद्ध अमीरों को उसके साथ किया। रिसाला, झंडा, नक्कारा, फराशखाना आदि सभी बादशाही सामान उसे प्रदान किए। सवारी के लिये अंबारीदार हाथी दिया। मानसिंह को बंगाल का सूबा फिर प्रदान किया और आज्ञा दी कि शाहजादे के साथ जाओ और अपने बड़े लड़के जगतसिंह को अथवा और जिसे उपयुक्त समझो, प्रबंध के लिये अपना प्रतिनिधि बनाकर बंगाल भेज दो।

दानियाल का विवाह खानखानाँ की कन्या से कर दिया। अब्बुलफजल भी दक्षिणवाले युद्ध में साथ गए हुए थे। उन्होंने और खानखानाँ ने अकबर को लिखा कि यदि श्रीमान् यहाँ पधारें, तो यह कठिन कार्य अभी पूरा हो जाय। अकबर का साहस-रूपी घोड़ा ऐसा न था, जिसे छड़ी लगाने की आवश्यकता पड़ती। एक ही इशारे में बुरहानपुर जा पहुँचा और आसीर पर घेरा डाल दिया। दानियाल को लिए हुए खानखानाँ अहमदनगर को घेरे पड़ा था। इधर अकबर ने आसीर का किला बड़े जोरों से जीत लिया; उधर खानखानाँ ने अहमदनगर तोड़ा।

सन् १००९ हि० (१६०१ ई०) में साम्राज्य-वृद्धि के द्वार आप से आप खुलने लगे। बीजापुर से इब्राहीम आदिल शाह का दूत बहुत से बहुमूल्य उपहार लेकर दरबार में उपस्थित हुआ। वह जो पत्र लाया था, उसमें भी और उसकी बातचीत में भी इस बात का संकेत था कि उसकी कन्या बेगम सुलतान का विवाह शाहजादा दानियाल से स्वीकृत कर लिया जाय। अकबर यह अवस्था देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। मीर जमालुद्दीन अंजू को उसे लेने के लिये भेजा। बुड्ढे बादशाह का प्रताप लोगों से सेवाएँ लेने में इंद्रजाल का सा तमाशा दिखला रहा था। इतने में समाचार मिला कि युवराज शाहजादा राणा पर आक्रमण करना छोड़कर बंगाल की ओर भाग गया।

पहली बात तो यह थी कि वह नवयुवक शाहजादा बहुत ही विलासप्रिय था। वह स्वयं तो अजमेर के इलाके में शिकार खेल रहा था और अमीरों को उसने राणा पर आक्रमण करने के लिये भेज दिया था। दूसरे वह प्रदेश पहाड़ी, उजाड़ और गरम था। शत्रु-दलवाले जान से हाथ धोए हुए थे। वे कभी इधर से आ गिरते थे और कभी उधर से। रात के समय छापा मारते थे। बादशाही सेना बहुत उत्साह से आक्रमण करती और रोकती थी। राणा के आदमी जब दबते थे, तब पहाड़ों में जा छिपते थे। शाहजादे के पास जो मुसाहब थे, वे दुराचारी भी थे और उनकी नीयत भी ठीक नहीं थी। वे हर दम उसका दिल उचाट किया करते थे और उसकी तबीयत को बहकाया करते थे। उन्होंने कहा कि बादशाह इस समय दक्षिण के युद्ध में फँसा हुआ है और उसके सामने बहुत ही भीषण समस्या उपस्थित है। आप राजा मानसिंह को उनके इलाके पर भेज दें; स्वयं आगरे की ओर बढ़कर कुछ सैर करें और कोई अच्छा उपजाऊ प्रदेश अपने अधिकार में कर लें। यह कोई दूषित और निंदनीय प्रयत्न नहीं है। यह तो साहस और राजनीति की बात है।

मूर्ख शाहजादा इन लोगों की बातों में आ गया और उसने विचार किया कि पंजाब में चलकर विद्रोही हो जाना चाहिए। इतने में समाचार आया कि बंगाल में विद्रोह हो गया और राजा की सेना पराजित हुई। इसकी कामना पूर्ण हुई। इसने राजा मानसिंह को तो उधर भेज दिया और आप युद्ध छोड़कर आगरे की ओर चल पड़ा[1]। आगरे पहुँचकर उसने नगर के बाहर डेरे डाल दिया। उस समय किले में अकबर की माता मरियम मकानी भी उपस्थित थी। साम्राज्य का पुराना सेवक और प्रसिद्ध सेनापति कुलीचख़ाँ आगरे का किलेदार

---

१ अब्बुलफजल दी दूरदर्शिता ने अकबर को यह समझाया कि यह जो कुछ हुआ है, वह सब मानसिंह के बहकाने से हुआ है।

और तहवीलदार था। वह काम निकालने और तरकीबें लड़ाने में अद्वितीय प्रसिद्ध था। उसने किले से निकलकर बहुत प्रसन्नता से बधाई दी और बादशाहों के उपयुक्त उपहार और नजरें आदि पेश करके कुछ ऐसी शुभचिंतना के साथ बातें बनाईं और तरकीबें बतलाईं कि शाहजादे के मन में उसके प्रति अपनी शुभ कामना पत्थर की लकीर कर दी। यद्यपि नए मुसाहबों ने शाहजादे के कान में बहुत कहा कि यह पुराना पापी बड़ा ही धूर्त है, इसे कैद कर लेना ही युक्तियुक्त है, पर आखिर यह भी शाहजादा था। इसने न माना; बल्कि उसके चलने के समय उससे कह दिया कि सब तरफ से सचेत रहना, किले की खबर रखना और देश का प्रबंध करना।

जहाँगीर यमुना के पार उतरकर शिकार खेलने लगा। मरियम मकानी पर यह रहस्य प्रकट हो गया। वे इसे पुत्र से भी अधिक चाहती थीं। उन्होंने इसे बुला भेजा, पर यह न गया। विवश होकर स्वयं सवार हुईं। यह उनके आने का समाचार सुनकर उसी प्रकार भागा, जिस प्रकार शिकारी को देखकर शिकार भागता है; और झट नाव पर चढ़कर इलाहाबाद की ओर चल पड़ा। बेचारी वृद्धा दादी बहुत ही कष्ट भोगकर और अपना सा मुँह लेकर चली आईं। उसने उधर इलाहाबाद पहुँचकर सब जागीरें जब्त कर लीं। उस समय इलाहाबाद आसफ खाँ मीर जाफर के सपुर्द था। इसने उससे लेकर अपनी सरकार में मिला लिया। बिहार, अवध आदि आस पास के सूबों पर भी अधिकार कर लिया। प्रत्येक स्थान पर अपनी ओर से शासक नियुक्त कर दिए। वहाँ के अकबर के पुराने सेवक निकाले जाने पर ठोकरें खाते हुए इधर आए। बिहार के राजकोश में तीस लाख से अधिक रुपए थे। उस कोश पर भी इसने अधिकार कर लिया। वह सूबा इसने अपने कोका शेख जीवन को प्रदान किया और उसका नाम कुतुबुद्दीन खाँ रखा। अपने मुसाहबों को अच्छे अच्छे मंसब और वैसे ही पद आदि प्रदान किए, जैसे

बादशाहों के यहाँ से मिलते हैं। उन्हें जागीरें भी दीं और आप बादशाह बन बैठा। ये सब बातें सन् १००९ हि० में ही हो गईं।

अकबर दक्षिण के किनारे बैठा हुआ पूरब-पश्चिम के मंसूबे बाँध रहा था। जब ये समाचार पहुँचे, तब बहुत घबराया। मीर जमालुद्दीन हुसैन के आने की भी प्रतीक्षा नहीं की। उसने अमीरों को वहाँ के युद्ध के लिये छोड़ दिया और आप बहुत ही दुःखी होकर आगरे की ओर चल पड़ा। इसमें कोई संदेह नहीं की यदि यह बखेड़ा और थोड़े दिनों तक न उठता, तो दक्षिण के बहुत से किलेदार आप से आप आप तालियाँ लेकर अकबर की सेवा में उपस्थित होते और सारी कठिनाइयाँ सहज ही में दूर हो जातीं; और तब अकबर को निश्चिंत होकर अपने पूर्वजों के देश तुर्किस्तान पर आक्रमण करने का अच्छा अवसर मिल जाता। पर भाग्य सब से प्रबल होता है।

अयोग्य और नालायक बेटे ने यहाँ जो जो करतूतें की थीं, बाप को उनकी अक्षरशः सूचना मिल गई। अब चाहे पिता का प्रेम कहो और चाहे राजनीति-कुशलता समझो, पुत्र के ऐसे ऐसे अनुचित कार्य करने पर भी पिता ने कोई ऐसी बात न की, जिससे पुत्र अपने पिता की ओर से निराश होकर खुल्लम खुल्ला विद्रोही बन जाता। बल्कि अकबर ने उसे एक बहुत ही प्रेमपूर्ण पत्र लिख भेजा। उसने उसके उत्तर में आकाश-पाताल की ऐसी ऐसी कहानियाँ सुनाईं कि मानों उसका कोई अपराध ही न था। जब अकबर ने उसे बुला भेजा, तब वह टाल गया। किसी प्रकार सामने न आया। अकबर फिर पिता था; और दूसरे उसका अंतिम समय समीप आ चला था। दानियाल भी यह संसार छोड़कर जानेवाला ही था। उसे यही एक दिखलाई देता था और उसने इसे बड़ी बड़ी मिन्नतें मानकर पाया था। उसने ख्वाजा अब्दुलसमद के पुत्र मुहम्मद शरीफ के हाथ एक और पत्र लिखकर उसके पास भेजा। मुहम्मद शरीफ उसका सहपाठी था और बाल्यावस्था में उसके साथ खेला था। अकबर ने जबानी भी

उससे बहुत कुछ कहला भेजा था और बहुत ही प्रेमपूर्वक सँदेशा भेजा था कि मैं तुमको देखना चाहता हूँ। बहुत कुछ बहलाया और फुसलाया। ईश्वर जाने, वह माना भी या नहीं माना। बेचारा पिता आप ही कह सुनकर प्रसन्न हो गया और उसने आज्ञा भेज दी कि बंगाल और उड़ीसा तुम्हारी जागीर है। तुम उनका प्रबंध करो। पर उसने इस आज्ञा का पालन नहीं किया और टालमटोल करता रहा।

सन् १०११ हि० में फिर वही कुदिन उपस्थित हुआ। युवराज फिर इलाहाबाद में बिगड़ बैठा। अपने नाम का खुतबा पढ़वाया और टकसाल में सिक्के बनवाए। महाजनों के लेनदेन में अपने रुपए और अशर्फियाँ आगरे और दिल्ली तक पहुँचाईं, जिसमें पिता देखे और जले। उसके पुराने स्वामिभक्त और जान-निछावर करनेवाले सेवकों को नमक-हराम और अपना अशुभ-चिंतक ठहराया। किसी को सख्त कैद का दंड दिया और किसी को जान से मरवा डाला। यहाँ तक कि व्यर्थ ही शेख अब्बुलफजल तक की हत्या करा डाली। कहाँ तो अकबर बुलाता था और यह जाता नहीं था, और कहाँ अब अपने मुसाहबों से परामर्श करके तीस चालीस हजार अच्छे सैनिक साथ लेकर आगरे की ओर चल पड़ा। मार्ग में बहुत से अमीरों की जागीरें लूटीं। इटावे में आसफखाँ की जागीर थी। वहाँ पहुँचकर पड़ाव डाला। आसफखाँ उस समय दरबार में था। उसके प्रतिनिधि ने अपने स्वामी की ओर से एक बहुमूल्य लाल भेंट किया और एक निवेदनपत्र भी, जो अकबर के कहने से लिखा गया था, सेवा में उपस्थित किया। इतने पर भी उसकी जागीर से बहुत सा धन वसूल किया। जिन अमीरों की जागीरें बिहार में थीं, वे बहुत दुःखी थे और रोते थे। लोग अकबर से बहुत कुछ कहते थे, पर वह कुछ भी नहीं करता था। सब अमीर आपस में कहा करते थे कि बादशाह की समझ में कुछ भी नहीं आता। देखिए, इस असीम अपत्य स्नेह का क्या परिणाम होता है।

जब बात हद से बढ़ गई और वह कूच करके इटावे से भी आगे

बढ़ा, तब साम्राज्य के प्रबंध में बहुत बाधा पड़ने लगी। अब अकबर का भाव भी बदल गया। कहाँ तो वह अपने पुत्र से मिलने की आकांक्षा की बातें लोगों को सुना सुनाकर प्रसन्न होता था, कहाँ अब वह इन सब बातों का परिणाम सोचने लगा। अंत में उसने एक आज्ञापत्र लिखा, जिसका सारांश इस प्रकार है—

"यद्यपि पुत्र को देखने की अत्यधिक कामना है, वृद्ध पिता उसे देखने का आकांक्षी है, तथापि प्यारे पुत्र का मिलने के लिये आना, और वह भी इतनी धूम-धाम से आना, अनुरागपूर्ण हृदय को बहुत ही खटकता है। यदि केवल सेनाओं की शोभा और सैनिकों की उपस्थिति दिखलाना ही उद्दिष्ट हो, तो मुजरा स्वीकृत हो गया। इन सब लोगों को जागीरों पर भेज दो और सदा के नियम के अनुसार अकेले चले आओ। पिता की दुखती हुई आँखों को प्रकाशमान और चिंतित चित्त को प्रसन्न करो। यदि लोगों के कहने सुनने के कारण तुम्हारे मन में किसी प्रकार का खटका या अविश्वास हो, जिसका हमें स्वप्न में भी कोई ध्यान नहीं है, तो कोई चिंता की बात नहीं है। तुम इलाहाबाद लौट जाओ और किसी प्रकार के अविश्वास को मन में स्थान न दो। जब तुम्हारे हृदय से अविश्वास का भाव दूर हो जायगा, तब तुम सेवा में उपस्थित होना।"

यह आज्ञापत्र देखकर जहाँगीर भी मन में बहुत लज्जित हुआ; क्योंकि पुत्र कभी अपने पिता को सलाम करने के लिये इस प्रकार सज-धज और धूम-धाम से नहीं जाता; और न इस प्रकार कभी अधिकारों का प्रदर्शन किया जाता है। किसी बादशाह ने अपने पुत्र की इस प्रकार की अनुचित कार्रवाइयों को कभी इतना सहन भी नहीं किया। इसलिये वहीं ठहरकर उसने लिख भेजा कि इस सेवक के मन में सेवा के लिये उपस्थित होने के अतिरिक्त और किसी प्रकार का विचार नहीं है, इत्यादि इत्यादि। अब श्रीमान् की इस प्रकार की आज्ञा पहुँची है, इसलिये उसका पालन आवश्यक समझ-

कर अपने स्वामी और पूज्य पिता की सेवा से अलग रहना पड़ता है। ये सब बातें लिखकर जहाँगीर इलाहाबाद लौट गया। अब अकबर का प्रशंसनीय साहस देखिए कि समस्त बंगाल जागीर के रूप में पुत्र के नाम कर दिया और लिख भेजा कि तुम वहाँ अपने ही आदमी नियुक्त कर दो। सब बातों का तुम्हें अधिकार है। यदि हमारी ओर से तुम्हारे मन में किसी प्रकार का संदेह हो अथवा तुम यह समझते हो कि मैं तुम से अप्रसन्न हूँ, तो यह विचार मन से निकाल डालो। पुत्र ने एक निवेदनपत्र भेजकर धन्यवाद दिया और बंगाल में स्वयं अपनी ओर से आज्ञाएँ प्रचलित कीं।

जहाँगीर के साथ रहनेवाले मुसाहब अच्छे नहीं थे; इसलिये उसके द्वारा होनेवाले अनुचित कार्यों की संख्या बढ़ने लगी। अकबर बहुत ही दुःखी रहता था। अपने दरबार के अमीरों में से न तो उसे किसी की बुद्धि पर भरोसा था और न किसी की ईमानदारी पर विश्वास था। इसलिये उसने विवश होकर दक्षिण से शेख अब्बुलफजल को बुलवाया; पर मार्ग में ही उनकी इस प्रकार हत्या कर दी गई। पाठक समझ सकते हैं कि अकबर के हृदय पर कैसी चोट पहुँची होगी। पर फिर भी वह विष का घूँट पीकर रह गया। जब और कुछ न हो सका, तब सलीमा सुलतान बेगम को, जो बुद्धिमत्ता, कार्य-पटुता और मिष्ट भाषण के लिये प्रसिद्ध थी, पुत्र को दिलासा देने और उसका संतोष करने के लिये भेजा। अपने निज के हाथियों में से फतह लश्कर नामक हाथी, खिलअत और बहुत से बहुमूल्य उपहार भेजे। अच्छे अच्छे मेवे भेजे, बढ़िया बढ़िया भोजन, मिठाइयाँ, कपड़े आदि अनेक प्रकार के पदार्थ बराबर चले जाते थे। उद्देश्य केवल यह था कि किसी प्रकार बात बनी रहे और हठी पुत्र हाथ से न निकल जाय। वह अकबर बादशाह था। समझता था कि मैं प्रभात का दीपक हूँ। यदि इस समय यह झगड़ा बढ़ेगा, तो साम्राज्य में अनर्थ ही हो जायगा।

कार्यपटु बेगम वहाँ पहुँची। उसने कुशलता से वह मंत्र फूँके कि बहका हुआ जंगली पक्षी जाल में आ गया। कुछ ऐसा समझाया कि हठी लड़का साथ ही चला आया। जहाँगीर ने मार्ग से फिर एक निवेदनपत्र भेजा कि मुझे मरियम मकानी (अकबर की माता) लेने के लिये आवें। उत्तर में अकबर ने लिख भेजा कि मेरा तो अब उनसे कुछ कहने का मुँह नहीं है; तुम स्वयं ही उनको लिखो। खैर, जब आगरा एक पड़ाव रह गया, तब मरियम मकानी भी उसे लेने के लिये गईं और लाकर अपने ही घर में उतारा। दर्शनों का भूखा पिता आप ही वहाँ आ पहुँचा। जहाँगीर का एक हाथ मरियम मकानी ने पकड़ा और दूसरा सलीमा सुलतान बेगम ने, और उसे अकबर के सामने ले आईं। पिता के पैरों पर उसका सिर रखा। पिता के लिये इससे बढ़कर संसार में और था ही कौन! उठाकर देर तक सिर कलेजे से लगा रखा और रोया। अपने सिर से पगड़ी उतारकर पुत्र के सिर पर रख दी, मानों फिर से युवराज नियत किया, और आज्ञा दी कि मंगल गीत हों। जशन किया, बधाइयाँ आईं। राणा पर आक्रमण करने के लिये फिर से नियुक्त किया और सेना तथा अमीर साथ देकर युद्ध के लिए बिदा किया।

जहाँगीर आगरे से चलकर फतहपुर में जा ठहरा। कुछ सामग्री और खजानों के पहुँचने में विलंब हुआ। उसका नाजुक मिजाज फिर बिगड़ गया। उसने लिख भेजा कि श्रीमान् के किफायत करने-वाले सेवक सामग्री भेजने में आनाकानी करते हैं। यहाँ बैठे बैठे व्यर्थ समय नष्ट होता है। इस युद्ध के लिये यथेष्ट सेना चाहिए। राणा पहाड़ों में घुस गया है। वहाँ से निकलता नहीं है; इसलिये चारों ओर से सेनाएँ भेजनी चाहिएँ; और प्रत्येक स्थान पर इतनी सेना होनी चाहिए कि वह जहाँ निकले, वहीं उसका सामना किया जा सके। इसलिये मैं आशा करता हूँ कि इस समय मुझे जागीर पर जाने की आज्ञा मिल जायगी। वहाँ अपने इच्छानुसार यथेष्ट

सामग्री की व्यवस्था करके श्रीमान् की आज्ञा का पालन कर दूँगा। पिता ने देखा कि पुत्र फिर मचला। सोच समझकर अपनी बहन को भेजा। फूफी ने जाकर बहुतेरा समझाया, पर वह क्या समझता था। अंत में पिता को विवश होकर आज्ञा देनी ही पड़ी। जहाँगीर बादशाही ठाट से कूच करता हुआ इलाहाबाद की ओर चल पड़ा। कुछ अदूरदर्शी अमीरों ने अकबर से संकेत किया कि यह अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए; अर्थात् इस समय इसे कैद कर लेना चाहिए। पर अकबर ने टाल दिया। जाड़े के दिन थे। दूसरे ही दिन एक सफेद समूर का चमड़ा भेजा और कहला दिया कि यही इस समय हमें बहुत पसंद आया। जी चाहा कि यह हमारी आँखों का तारा पहने। साथ ही काश्मीर और काबुल के कुछ अच्छे अच्छे उपहार भेजे। तात्पर्य यह था कि उसके मन में किसी प्रकार का संदेह न उत्पन्न हो। पर जहाँगीर ने इलाहाबाद पहुँचकर फिर वही उखाड़ पछाड़ आरंभ कर दी। जिन अमीरों को उसके पिता ने पचास वर्ष में वीर और विजयी बनाया था और प्राण देने के लिये तैयार किया था, और जो स्वयं उसके भी रहस्यों से परिचित थे, उन्हीं को वह नष्ट करने लगा। वे भी उसके पास से उठ उठकर दरबार में जाने लगे।

जहाँगीर का पुत्र खुसरो राजा मानसिंह का भानजा था। वह मूर्ख था और उसकी नीयत अच्छी नहीं थी। वह अपने ऊपर अकबर की कृपा देखकर समझता था कि दादा मुझे ही अपना उत्तराधिकारी बनावेगा। वह अपने पिता के साथ बेअदबी और अक्खड़पन का व्यवहार करता था। दो एक बार अकबर के मुँह से निकल भी गया था कि इस पिता से तो यह पुत्र ही होनहार जान पड़ता है। ऐसी ऐसी बातों पर ध्यान रखकर ही वह अदूरदर्शी लड़का और भी लगाता बुझाता रहता था। यहाँ तक कि उसके ये सब व्यवहार देखकर उसकी माता से न रहा गया। कुछ तो पागलपन उसका पैतृक रोग

था, कुछ इन बातों के कारण उसे दुःख और क्रोध हुआ। उसने अपने पुत्र को बहुत समझाया; पर वह किसी प्रकार मानता ही न था। आखिर वह राजपूत रानी थी; अफीम खाकर मर गई। उसने सोचा कि इसकी इस प्रकार की बातों के कारण मेरे दूध पर तो लांछन न आवे।

इन्हीं दिनों में एक और घटना हुई। एक व्यक्ति था, जो सब समाचार बादशाह की सेवा में उपस्थित करने के लिये लिखा करता था। वह एक बहुत ही सुंदर लड़के को लेकर भाग गया। जहाँगीर भी उस लड़के को दरबार में देखकर बहुत प्रसन्न हुआ करता था। उसने आज्ञा दी कि दोनों को पकड़ लाओ। वे दोनों बहुत दूर से पकड़कर लाए गए। जहाँगीर ने अपने सामने जीते जी दोनों की खाल उतरवा ली। अकबर के पास भी सभी समाचार पहुँचा करते थे। वह सुनकर तड़प गया और बोला—वाह, हम तो बकरी की खाल भी उतरते नहीं देख सकते। तुमने यह कठोर-हृदयता कहाँ से सीखी! वह इतनी अधिक शराब पीता था कि नौकर चाकर मारे भय के कोनों में छिप जाते थे और उसके पास जाते हुए डरते थे। जिन्हें विवश होकर हर दम सामने रहना पड़ता था, वे भीत पर लिखे हुए चित्र के समान खड़े रहते थे। वह ऐसी ऐसी करतूतें करता था, जिनका विवरण सुनने से रोएँ खड़े हो जायँ।

इस प्रकार की बातें सुनकर अनुरक्त पिता से भी न रहा गया। वह यह भी जानता था कि ये अधिकांश दोष केवल शराब के ही कारण हैं। उसने चाहा कि मैं स्वयं चलूँ और समझा बुझाकर ले आऊँ। नाव पर सवार हुआ। कुछ दूर चलकर वह नाव रेत में रुक गई। दूसरे दिन दूसरी नाव आई। फिर दो दिन जोरों का पानी बरसता रहा। इतने में समाचार मिला कि मरियम मकानी की दशा बहुत खराब हो रही है; इसलिये अकबर लौट आया और ऐसे समय पहुँचा, जब कि मरियम के अंतिम साँस चल रहे थे। माता ने अंतिम

चार पुत्र को देखकर सन् १०१२ हि० में इस संसार से प्रस्थान किया। अकबर को बहुत दुःख हुआ। उसने सिर मुँड़ाया। इसमें चौदह सौ सेवकों ने उसका साथ दिया। सुयोग्य पुत्र थोड़ी दूर तक माता की रत्थी सिर पर उठाकर चला। फिर सब अमीर कंधों पर ले गए। थोड़ी दूर जाने पर अकबर बहुत दुःखी हुआ। स्वयं लौट आया और रत्थी दिल्ली भेज दी, जिसमें लाश वहाँ पति की लाश के पार्श्व में गाड़ दी जाय। जब यह समाचार इलाहाबाद पहुँचा, तब जहाँगीर भी रोता बिसूरता पिता की सेवा में उपस्थित हुआ। पिता ने गले लगाया; बहुत कुछ समझाया। उसे मालूम यह हुआ कि बहुत अधिक शराब पीने के कारण उसके मस्तिष्क में विकार आ गया है। यहाँ तक दशा हो गई कि केवल शराब का नशा ही यथेष्ट नहीं होता था। उसमें अफीम घोलकर पीता था, तब कहीं जाकर थोड़ा बहुत सुरूर मालूम होता था। अकबर ने आज्ञा दी कि महल से निकलने न पावे। पर यह आज्ञा कहाँ तक चल सकती थी। फिर भी अकबर अनेक उपायों से उसका दिल बहलाता था और उसकी प्रवृत्ति में सुधार करता था। बहुत ही नीतिमत्ता से इस पागल को अपने अधिकार में लाता था। प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों से उसपर अनुग्रह करके उसे फुसलाता था। सोचता था कि इस हठी लड़के के कारण कहीं बड़ों का नाम न मिट जाय। और वास्तव में उस नीतिमान् बादशाह का सोचना बहुत ठीक था।

अभी मुराद के लिये बहनेवाले आँसुओं से पलकें सूखने भी न पाई थीं कि अकबर को फिर दूसरे नवयुवक पुत्र के वियोग में रोना पड़ा। सन् १०१३ हि० में दानियाल ने भी इसी शराब के पीछे अपने प्राण गँवाए और सलीम के लिये मैदान साफ कर दिया। अब पिता के लिये संसार में सलीम के अतिरिक्त और कोई न रह गया था। अब यही एक पुत्र बच रहा था। सच है, एक पुत्र का वियोग

दूसरे पुत्र को और भी प्रिय बना देता है[1]।

इसी बीच में राज-परिवार के कुछ शाहजादों और अकबर के भाई-बंदों के परामर्श से निश्चित हुआ कि हाथियों की लड़ाई देखी जाय। अकबर का इस प्रकार की लड़ाइयाँ देखने का बहुत पुराना शौक था। उसके हृदय में फिर युवावस्था की उमंग आ गई। युवराज के पास एक बहुत बड़ा, ऊँचा और हृष्ट पुष्ट हाथी था; और इसी लिये उसका नाम "गिराँ-बार" (बहुत ही भारी) रखा गया था। वह हजारों हाथियों में एक और सबसे अलग हाथी दिखाई देता था। वह ऐसा बलवान् था कि लड़ाई में एक हाथी उसकी टक्कर ही नहीं सँभाल सकता था। युवराज के पुत्र खुसरो के पास भी एक ऐसा ही प्रसिद्ध और बलवान् हाथी था, जिसका नाम "आपरूप" था। दोनों की लड़ाई ठहरी। स्वयं बादशाह के हाथियों में भी एक ऐसा ही जंगी हाथी था, जिसका नाम "रणथंभन" था। विचार यह हुआ कि इन दोनों में जो दब जाय, उसकी सहायता के लिये रणथंभन आवे। बादशाह और शाही वंश के अधिकांश शाहजादे झरोखों में बैठे। जहाँगीर और खुसरो आज्ञा लेकर घोड़े उड़ाते हुए मैदान में आए। हाथी आमने सामने हुए और पहाड़ टकराने लगे। संयोग से खुसरो का हाथी भागा और जहाँगीर का हाथी उसके पीछे दौड़ा। अकबर के फीलवान ने पूर्व निश्चय के अनुसार रणथंभन को आपरूप की सहायता के लिये आगे बढ़ाया। जहाँगीर के शुभचिंतकों ने सोचा कि ऐसा न होना चाहिए और हमारी जीत हो जाय; इसलिये रणथंभन को सहायता से रोका पर निश्चय पहले से ही हो चुका था, इसलिये फीलवान न रुका। जहाँगीर के सेवकों ने शोर मचाया। वे बरछों से कोंचने और पत्थर बरसाने लगे। एक पत्थर बादशाह के फीलबान के माथे में जा लगा और कुछ लहू भी मुँह पर बहा।

खुसरो अपने दादा को पिता के विरुद्ध उकसाया करता था। अपने हाथी के भागने से वह कुछ खिसियाना सा हो गया; और जब सहायता भी न पहुँच सकी, तब दादा के पास आया। उसने रोता बिसूरता स्वरूप बनाकर पिता के नौकरों की जबरदस्ती और अकबर के फीलवान के घायल होने का समाचार बहुत ही बुरे ढंग से कह सुनाया। स्वयं अकबर ने भी जहाँगीर के नौकरों का उपद्रव और अपने फीलवान के मुँह से लहू बहता हुआ देखा था। वह बहुत ही क्रुद्ध हुआ[1]। खुर्रम (शाहजहाँ) की अवस्था उस समय चौदह वर्ष की थी। वह अपने दादा के सामने से क्षण भर के लिये भी अलग न होता था। उस समय भी वह उपस्थित था। अकबर ने उससे कहा कि तुम जाकर अपने शाह भाई (जहाँगीर) से कहो कि शाह बाबा (अकबर) कहते हैं कि दोनों हाथी तुम्हारे, दोनों फीलवान तुम्हारे। एक जानवर का पक्ष लेकर तुम हमारा अदब भूल गए, यह क्या बात है।

इस छोटी अवस्था में भी खुर्रम बुद्धिमान् और सुशील था। वह सदा ऐसी ही बातें करता था जिनसे पिता और दादा में सफाई रहे। वह गया और प्रसन्नतापूर्वक लौट आया। आकर निवेदन किया कि शाह भाई कहते हैं कि हुजूर के मुबारक सिर की कसम है, इस सेवक को इन अनुचित कृत्यों की कोई सूचना नहीं है; और यह दास ऐसी उद्दंडता कभी सहन नहीं कर सकता। जहाँगीर की ओर से इस प्रकार की बातें सुनकर अकबर प्रसन्न हो गया। अकबर यद्यपि जहाँगीर के अनुचित कृत्यों से अप्रसन्न रहता था और कभी कभी खुसरो की

---

१ यह सलीम अर्थात् जहाँगीर का पुत्र था और जोधपुर के राजा मालदेव की पोती, राजा उदयसिंह की कन्या के गर्भ से सन् १००० हि० में लाहौर में उत्पन्न हुआ था। अकबर ने इसे स्वयं अपना पुत्र बना लिया था। वह इसे बहुत प्यार करता था और यह सदा अपने दादा की सेवा में उपस्थित रहता था।

प्रशंसा भी कर दिया करता था, तथापि वह समझता था कि यह उससे भी बढ़कर अयोग्य है। वह यह भी समझ गया था कि खुसरो भी एक बार बिना हाथ पैर हिलाए न रहेगा, क्योंकि इसका पीछा भारी है; अर्थात् यह मानसिंह का भानजा है। सभी कछवाहे सरदार इसका साथ देंगे। इसके सिवा खान आज़म की कन्या इससे ब्याही है; और वह भी साम्राज्य का एक बहुत बड़ा स्तंभ है। इन दोनों का विचार था कि जहाँगीर को विद्रोही ठहराकर अंधा कर दें और कारागार में डाल दें और खुसरो के सिर अकबर का राजमुकुट रखा जाय। परंतु बुद्धिमान् बादशाह आनेवाले वर्षों का समय और चालों की दूरी प्रत्यक्ष देखता था। वह यह भी समझता था कि यदि यह बात हो गई, तो फिर सारा घर ही बिगड़ जायगा। इसलिये उसने यही उचित समझा कि सब बातें ज्यों की त्यों रहने दी जायँ और जहाँगीर ही सिंहासन पर बैठे। उन दिनों जितने बड़े बड़े अमीर थे, वे सब दूर दूर के जिलों में प्रबंध के लिये भेजे हुए थे; इसलिये जहाँगीर बहुत ही निराश था। जब अकबर की अवस्था बिगड़ी, तब यह उसके संकेत से किले से निकलकर एक सुरक्षित मकान में जा बैठा। वहाँ शेख फरीद बख्शी[१] आदि कुछ लोग पहुँचे और शेख उसे अपने मकान में ले गया।

जब अकबर ने कई दिनों तक अपने पुत्र को न देखा, तब वह भी समझ गया और उसी दशा में उसने उसे अपने पास बुलवाया। गले से लगाकर बहुत प्यार किया और कहा कि दरबार के सब अमीरों को यहीं बुला लो। फिर जहाँगीर से कहा—"बेटा, जी नहीं

---

१ इसने अनेक युद्ध में बहुत ही वीरतापूर्ण कृत्य करके जहाँगीर से मुर्तज़ाखाँ का खिताब पाया था। यह शुद्ध सैयद वंश का था। अकबर के शासन-काल में भी वह बहुत ही परिश्रमपूर्वक और नमक-हलाली से सेवाएँ किया करता था और इसीलिये बख्शीगीरी के मनसब तक पहुँचा था।

चाहता कि तुझ में और मेरे इन शुभचिंतक अमीरों में बिगाड़ हो, जिन्होंने वर्षों तक मेरे साथ युद्धों और शिकारों में कष्ट सहे हैं और तलवारों तथा तीरों के मुँह पर पहुँचकर मेरे लिये अपनी जान जोखिम में डाली है; और जो सदा मेरा साम्राज्य, धन-संपत्ति और मान-प्रतिष्ठा बढ़ाने में परिश्रम करते रहे हैं।" इतने में सब अमीर भी वहाँ आकर उपस्थित हो गए। अकबर ने उन सब को संबोधन करके कहा—"हे मेरे प्रिय और शुभचिंतक सरदारो, यदि कभी भूल से भी मैंने तुम्हारा कोई अपराध किया हो, तो उसके लिये मुझे क्षमा करो।" जहाँगीर ने जब यह बात सुनी, तब वह पिता के पैरों पर गिर पड़ा और फूट फूटकर रोने लगा। पिता ने उसे उठाकर गले से लगाया और तलवार की ओर संकेत करके कहा कि इसे कमर से बाँधो और मेरे सामने बादशाह बनो। फिर कहा कि वंश की स्त्रियों और महल की बीबियों की देख-रेख और भरण-पोषण आदि की ओर से उदासीन न रहना और मेरे पुराने शुभ-चिंतकों तथा साथियों को न भूलना। इतना कहकर उसने सब को बिदा कर दिया। अकबर का रोग कुछ कम हुआ, पर वह उसकी तबीयत ने केवल सँभाल लिया था। वह बिलकुल नीरोग नहीं हुआ था। जहाँगीर फिर शेख फरीद के घर में जा बैठा।

अकबर की बीमारी के समय खुर्रम सदा उसकी सेवा में उपस्थित रहता था। चाहे इसे हार्दिक प्रेम और बड़ों का आदर भाव कहो और चाहे यह कहो कि उसने अपनी और पिता की दशा देखते हुए यही उचित और उपयुक्त समझा था। इतिहास-लेखक यह भी लिखते हैं कि जहाँगीर उसे प्रेम के कारण बुला भेजता था और कहलाता था कि चले आओ, शत्रुओं के घेरे में रहने की क्या आवश्यकता है। पर वह नहीं जाता था और कहला भेजता था कि शाह बाबा की यह दशा है। उन्हें इस अवस्था में छोड़कर मैं किस प्रकार चला आऊँ। जब तक शरीर में प्राण हैं, तब तक मैं शाह बाबा की सेवा नहीं छोड़ सकता। एक बार उसकी माता भी बहुत व्याकुल होकर उसे लेने के लिये आप

दौड़ी आई। उसे बहुत कुछ समझाया, पर वह किसी प्रकार अपने निश्चय से न डिगा। बराबर दादा के पास रहता था और पिता को क्षण क्षण पर सब समाचार भेजा करता था।

उस समय उसका वहाँ रहना और बाहर न निकलना ही युक्तियुक्त था। खान आजम और मानसिंह के हथियारबंद आदमी चारों ओर फैले हुए थे। यदि वह बाहर निकलता, तो तुरंत पकड़ लिया जाता। यदि जहाँगीर उन लोगों के हाथ पड़ जाता, तो वह भी गिरफ्तार हो जाता। जहाँगीर ने स्वयं ये सब बातें 'तुजुक' में लिखी हैं। उसे सब से अधिक भय उस घटना के कारण था, जो ईरान में बादशाह तहमास्प के उपरांत हुई थी। जब तहमास्प का देहांत हुआ, तब सुलतान हैदर अपने अमीरों और साथियों की सहायता से सिंहासन पर बैठ गया। तहमास्प की बहन परी जान खानम पहले से ही राज्य के कारबार में बहुत कुछ हाथ रखती थी; और वह बिलकुल नहीं चाहती थी कि सुल्तान हैदर सिंहासन पर बैठे। उसने बहुत ही प्रेमपूर्ण सँदेसे भेजकर भतीजे को किले में बुलवाया। भतीजा यह भीतरी द्रोह नहीं जानता था। वह फूफी के पास चला गया और जाते ही कैद हो गया। किले के दरवाजे बंद हो गए। जब उसके साथियों ने सुना, तब वे अपनी अपनी सेनाएँ लेकर आए और किले को घेर लिया। अंदरवालों ने सुलतान हैदर को मार डाला और उसका सिर काटकर प्राकार पर से दिखलाया और कहा कि जिसके लिये लड़ते हो, उसकी तो यह दशा है। अब और किसके भरोसे पर मरते हो? इतना कहकर सिर बाहर फेंक दिया। जब उन लोगों को ये सब समाचार विदित हुए, तब वे हतोत्साह होकर बैठ गए और शाह इस्माईल द्वितीय सिंहासन पर बैठा। अस्तु। मुर्त्तजा खाँ (शेख फरीद बखशी) जहाँगीर का शुभचिंतक था। उसने आकर सब प्रबंध किया। वह बादशाही बखशी था और अमीरों तथा सेनाओं पर उसका बहुत कुछ प्रभाव पड़ता था। उसी के कारण खान आजम के सेवकों में भी फूट हो

गई। खुसरो की यह दशा थी कि कई बरस से एक हजार रुपए रोज (तीन लाख साठ हजार रुपए वार्षिक) इन लोगों को दे रहा था कि समय पर काम आवें। अंत समय में साम्राज्य के कुछ शुभ-चिंतकों ने परामर्श करके यही उचित समझा कि मानसिंह को बंगाल के सूबे पर टालना चाहिए। बस उसी दिन अकबर से आज्ञा ली और तुरंत खिलअत देकर उनको रवाना कर दिया।

वास्तव में बात यह थी कि बहुत दिनों से अंदर ही अंदर खिचड़ी पक रही थी। पर बुद्धिमान् बादशाह ने अपने उच्च कोटि के साहस के कारण किसी पर अपने घर का यह भेद खुलने न दिया था। अंत में जाकर ये सब बातें खुलीं। मुल्ला साहब इससे तेरह चौदह बरस पहले लिखते हैं (उस समय दानियाल और मुराद भी जीवित थे) कि एक दिन बादशाह के पेट में दरद हुआ और इतने जोरों से दरद हुआ कि उसका सहन करना उसकी सामर्थ्य से बाहर हो गया। उस समय वह व्याकुल होकर ऐसी ऐसी बातें कहता था, जिनसे बड़े शाहजादे पर संदेह प्रकट होता था कि कदाचित् इसी ने विष दे दिया है। वह बार बार कहता था कि भाई, सारा साम्राज्य तुम्हारा ही था। हमारी जान क्यों ली! बल्कि हकीम हमाम जैसे विश्वसनीय व्यक्ति पर भी इस काररवाई में मिले होने का संदेह हुआ। उसी समय यह भी पता लगा कि जहाँगीर ने शाहजादा मुराद पर भी गुप्त रूप से पहरे बैठा दिए थे। पर अकबर शीघ्र ही नीरोग हो गया। तब शाहजादा मुराद और बेगमों ने सब बातें उससे निवेदन कीं।

अंतिम अवस्था में अकबर को पहुँचे हुए फकीरों की तलाश थी। उसका अभिप्राय यह था कि किसी प्रकार कोई ऐसा उपाय मालूम हो जाय, जिससे मेरी आयु बढ़ जाय। उसने सुना कि खता देश में कुछ साधु होते हैं, जो लामा कहलाते हैं। इसलिये उसने कुछ दूत काशगर और खता भेजे। उसे मालूम था कि हिंदुओं में भी कुछ ऐसे सिद्ध लोग होते हैं। उनमें से योगी लोग प्राणायाम आदि के द्वारा अपनी

आयु बढ़ाते, काया बदलते और इसी प्रकार के अनेक कृत्य करते हैं। इसलिये वह इस प्रकार के बहुत से लोगों को अपने पास बुलाया करता था और उनसे बातें किया करता था। पर दुःख यही है कि मृत्यु से बचने का कोई उपाय नहीं है। एक न एक दिन सब को यहाँ से जाना है। संसार की प्रत्येक बात में कुछ न कुछ कहने की जगह होती है। एक मृत्यु ही ऐसी है, जो निश्चित और अवश्यंभावी है। ११ जमादीउल् अव्वल को अकबर की तबीयत खराब हुई। हकीम अली बहुत बड़ा गुणवान् और चिकित्सा शास्त्र का बहुत बड़ा पंडित था। उसी को चिकित्सा के लिये कहा गया। उसने आठ दिन तक तो रोग को स्वयं प्रकृति पर ही छोड़ रखा। उसने सोचा कि कदाचित् अपने समय पर प्रकृति आप ही रोग को दूर कर दे। परंतु रोग बढ़ता ही गया। नवें दिन उसने चिकित्सा आरंभ की। दस दिन तक औषध दिया, पर उसका कुछ भी फल न हुआ। रोग बढ़ता ही जाता था और बल घटता ही जाता था। परंतु इतना होने पर भी साहसी अकबर ने साहस न छोड़ा। वह प्रायः दरबार में आ बैठता था। हकीम ने उन्नीसवें दिन फिर चिकित्सा करना छोड़ दिया। उस समय तक जहाँगीर भी पास ही उपस्थित रहता था। पर जब उसने रंग बिगड़ता देखा, तब वह चुपचाप निकलकर शेख फरीद बुखारी के घर में चला गया; क्योंकि वह समझता था कि यह मेरे पिता का शुभचिंतक है ही, साथ ही मेरा भी शुभचिंतक है। वहीं बैठकर वह समय की प्रतीक्षा कर रहा था; और उसके शुभचिंतक दम पर दम सब समाचार उसके पास पहुँचाया करते थे कि हुजूर, अब ईश्वर की कृपा होती है और अब प्रताप का तारा उदित होता है। अर्थात् अब अकबर मरता है और तुम राज-सिंहासन पर बैठते हो। हाय, यह संसार बिलकुल तुच्छ है और इसके सब काम भी बहुत ही तुच्छ हैं!

हे भूले हुए शाहजादे, यह सब कितने दिनों के लिये और किस

आशा पर ? क्या तुझे इस बात का कुछ भी विचार नहीं है कि बाइस बरस के बाद तेरे लिये भी यही दिन आनेवाला है और निस्संदेह आनेवाला है ? अस्तु। बुधवार १२ जमादी-उल्-आखिर सन् १०१४ हि० को आगरे में अकबर ने इस संसार से प्रस्थान किया। कुल चौंसठ वर्ष की आयु पाई।

जरा इस संसार की रंगत देखो। वह भी क्या शुभ दिन होगा और उस दिन लोगों की प्रसन्नता का क्या ठिकाना रहा होगा, जिस दिन अकबर का जन्म हुआ होगा ! और उस दिन के आनंद का क्या कहना है, जिस दिन वह सिंहासन पर बैठा होगा ! वह गुजरात पर के आक्रमण, वह खान जमाँ की लड़ाइयाँ, वह जशन, वह प्रताप ! कहाँ वह दशा और कहाँ आज की यह दशा ! जरा आँखें बंद करके ध्यान करो। उसका शव एक अलग मकान में सफेद चादर ओढ़े पड़ा है। एक मुल्ला साहब बैठे सुमिरनी हिला रहे हैं। कुछ हाफिज कुरान पढ़ रहे हैं; कुछ सेवक बैठे हैं। नहलावेंगे, कफनावेंगे, बिना नाम के दरवाजे से चुप चुपाते ले जायँगे और गाड़कर चले आवेंगे। किसी ने कहा है—

लाई हयात[1] आए, कजा[2] ले चली, चले।
अपनी खुशी न आए, न अपनी खुशी चले॥

साम्राज्य के वही स्तंभ जो उसके कारण सोने और रूपे के बादल उड़ाते थे, मोती रोलते थे, झोलियाँ भर-भरकर ले जाते थे और घरों पर लुटाते थे, ठाठ-बाट से पड़े फिरते हैं। नया दरबार सजाते हैं, नए सिंगार करते हैं, नए रूप बनाते हैं। अब नए बादशाह को नई-नई सेवाएँ कर दिखलावेंगे; उनके पदों में वृद्धियाँ होंगी। जिसकी जान गई, उसकी किसी को कोई परवाह भी नहीं !

१ जीवन। २ मृत्यु।

अकबर का शव सिकंदरे के बाग में, जो अकबराबाद से कोस भर पर है, गाड़ा गया था।

अकबर के आविष्कार

यद्यपि विद्याओं ने अकबर की आँखों पर ऐनक नहीं लगाई थी, और न गुणों ने उसके मस्तिष्क पर अपनी कारीगरी खर्च की थी, तथापि वह आविष्कार का बहुत बड़ा प्रेमी था और उसे सदा यही चिंता रहती थी कि हर बात में कोई नई बात निकाली जाय। बड़े बड़े विद्वान् और गुणी घर बैठे वेतन और जागीरें खा रहे थे। बादशाह का शौक उनके आविष्कार रूपी दर्पण को उजला करके और भी चमकता था। वे नई से नई बात निकालते थे और बादशाह का नाम होता था।

सिंह के समान शिकार करनेवाला अकबर हाथियों का बहुत शौकीन था। आरंभ में उसे हाथियों का शिकार करने का शौक हुआ। उसने कहा कि हम स्वयं हाथी पकड़ेंगे और इसमें भी नई नई बातें निकालेंगे। सन् ९७१ हि० में मालवे पर आक्रमण किया था। ग्वालियर से होता हुआ नरवर के जंगलों में घुस गया। लश्कर को कई विभागों में बाँट दिया। मानों उन सब की अलग सेना बनाई। एक एक अमीर को एक एक सेना का सेनापति बनाया। सब अपने अपने दल को चले। सब से पहले एक हथनी दिखाई दी। उसकी ओर हाथी लगाया। वह भागी। ये पीछे पीछे दौड़े और इतना दौड़े कि वह थककर ढीली हो गई। दाहिने बाएँ दो हाथी लगे हुए थे। एक पर से रस्सा फेंका गया, दूसरे पर से लपक कर पकड़ लिया गया। अब दोनों ओर से लटकाकर इतना ढीला छोड़ा कि हथनी के सूँड़ के नीचे हो गया। फिर जो ताना तो उसके गले से जा लगा। एक फीलवान ने अपना सिरा दूसरे की ओर फेंक दिया। उसने लपककर दोनों सिरों में गाँठ दे दी या बल लगा दिया और अपने हाथी के गले में बाँध लिया। फिर जो हाथी को

दौड़ाया, तो ऐसा दबाए चला गया कि हथनी हाँफकर बेदम हो गई। एक फीलवान अपना हाथी उसके बराबर ले गया और झट उसकी पीठ पर जा बैठा। धीरे धीरे उसे रास्ते पर लगाया। हरी हरी घास सामने डाली। कुछ चाट दी, कुछ खिलाया। वह भूखी-प्यासी थी। जो कुछ मिला, वही बहुत समझा। फिर उसे जहाँ लाना था, वहाँ ले आए। इस शिकार में मुल्ला किताबदार का पुत्र भी साथ हो गया था। इस खींचा-तानी में हाथियों की रौंद में आ गया था। बड़ी बात हुई कि जान बच गई। गिरता-पड़ता भागा।

चलते चलते एक कजली बन में जा निकले। वह ऐसा घना बन था कि दिन के समय भी संध्या ही जान पड़ती थी। अकबर का प्रताप ईश्वर जाने कहाँ से घेर लाया था कि वहाँ सत्तर हाथियों का एक झुंड चरता हुआ दिखाई दिया। बादशाह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसी समय आदमी दौड़ाए। सब सेनाओं के हाथी एकत्र किए। लश्कर से शिकारी रस्से मँगाए और अपने हाथी फैलाकर सब मार्ग रोक लिए और बहुत से हाथियों को उनमें मिला दिया। फिर घेरकर एक खुले जंगल में लाए। धन्य थे वे चरकटे और फीलवान जिन्होंने इन जंगली हाथियों के पैरों में रस्से डालकर वृक्षों से बाँध दिए थे। बादशाह और उसके सब साथी वहीं उतर पड़े। जिस जंगल में कभी मनुष्य का पैर भी न पड़ा होगा, उसमें चारों ओर रौनक दिखाई देने लगी। रात वहीं काटी। दूसरे दिन ईद थी। वहीं जशन हुए। लोग गले मिल मिलकर एक दूसरे को बधाइयाँ देने लगे और फिर सवार हुए। एक एक जंगली हाथी को अपने दो दो हाथियों के बीच में रखकर और रस्सों से जकड़कर भेज दिया। बहुत ही युक्ति-पूर्वक धीरे धीरे लेकर चले। कई दिनों के उपरांत उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ लश्कर को छोड़ गए थे। अब अपने लश्कर में आकर मिले। दुःख की एक बात यह हुई कि जाते समय जब हाथी चंबल से उतर रहे थे, तब लकना नामक हाथी डूब गया।

सन् ९७१ हि० में अकबर मालवा प्रदेश से खानदेश की सीमा

पर दौरा करके आगरे की ओर लौट रहा था। मार्ग में सीरी नामक कस्बे के पास डेरे पड़े और हाथियों का शिकार होने लगा। एक दिन जंगल में हाथियों का एक बड़ा झुंड मिला। आज्ञा दी कि वीर अश्वारोही जंगल में फैल जायँ। झुंड को सब ओर से घेरकर एक ओर थोड़ा सा मार्ग खुला रखें और बीच में नगाड़े बजाए जायँ। कुछ फीलवानों को आज्ञा दी कि अपने सधे सधाए हाथियों को ले लो और काली शालें ओढ़कर उनके पेट से इस प्रकार चिपट जाओ कि जंगली हाथियों को बिलकुल दिखाई ही न पड़े; और उनके आगे आगे होकर उन्हें सीरी के किले की ओर लगा ले चलो। सवारों को समझा दिया कि सब हाथियों को घेरे नगाड़े बजाते चले आओ। मंसूबा ठीक उतरा और सब हाथी उक्त किले में बंद हो गए। फीलवान कोठों और दीवारों पर चढ़ गए। बड़े बड़े रस्सों की कमंदें और फंदे डालकर सबको बाँध लिया। एक बहुत बलवान् हाथी मस्ती में बफरा हुआ था और किसी प्रकार वश में ही न आता था। आज्ञा दि कि हमारे खाँडे-राय नामक हाथी को ले जाकर उससे लड़ाओ। वह बहुत ही विशाल-काय को ले जाकर उससे लड़ाओ। वह बहुतही विशालकाय और जंगी हाथी था। आते ही रेल-ढकेल होने लगी पहर भरतक दोनों पहाड़ टकराए। अंत में जंगली के नशे ढीले हो गए। खाँडेराय उसे दबाना ही चाहता था, कि आज्ञा हुई कि मशालें जलाकर उसके मुँह पर मारो, जिसमें पीछा छोड़ दे। बहुत कठिनता से दोनों अलग हुए। जंगली हाथी जब इधर से छूटा, तब किले की दीवार तोड़कर जंगल की ओर निकल गया। मिरजा अजीज कोका के बड़े भाई यूसुफ खाँ कोकलताश को कई हाथी और हाथीवान देकर उसके पीछे भेजा और कहा कि रणभैरव हाथी को, जो अकबर के खास हाथियों में से था और बदमस्ती और जबरदस्ती के लिये सारे देश में बदनाम था, उससे उलझा दो। थका हुआ है, हाथ आ जायगा। उसने जाकर फिर लड़ाई डाली। फीलवानों ने रस्सों में फँसाकर फिर एक वृक्ष से

जकड़ दिया और दो तीन दिन में चारे पर लगाकर ले आए। कुछ दिनों तक सधाया गया और फिर अकबर के खास हाथियों में संमिलित कर दिया गया। उसका नाम गजपति रखा गया।

प्रज्वलित कंदुक

अकबर को चौगान का भी बहुत शौक था। प्रायः ऐसा होता था कि खेलते-खेलते संध्या हो जाती थी और बाजी पूरी न होती थी। अँधेरा हो जाता था, गेंद दिखाई नहीं देता था। विवश होकर खेल बंद करना पड़ता था। इसलिये सन् ९७४ हि० में प्रज्वलित कंदुक का आविष्कार किया। लकड़ी को तराशकर एक प्रकार का गेंद बनाया और उस पर कुछ ओषधियाँ दीं। जब एक बार उसे आग देते थे, तब वह चौगान की चोट या जमीन पर लुढ़कने से नहीं बुझता था। रात की बहार दिन से भी बढ़ गई

उपासना-मंदिर

सन् ९८३ हि० में फतहपुर में स्वयं अकबर के रहने के महलों के पास यह उपासना-मंदिर बनकर तैयार हुआ था। यह मानो बड़े बड़े विद्वानों और बुद्धिमानों के एकत्र होने का स्थान था। धर्म, साम्राज्य और शासन संबंधी बड़ी बड़ी समस्याओं पर यह विचार होता था। ग्रंथों अथवा बुद्धि की दृष्टि से उनमें जो विरोध या अनौचित्य होते थे, वे सब वहाँ आकर खुल जाते थे। जिस समय उसका आरंभ हुआ था, उस समय मुख्य उद्देश्य और विचार यही था। पर बीच में प्राकृतिक रूप से एक और नई बात निकल आई। वह यह कि आपस की ईर्ष्या और द्वेष के कारण उन लोगों में फूट पड़ गई; और जो शास्त्र या धार्मिक नियम साम्राज्य को दबाए हुए थे, उनका जोर टूट गया।

समय का विभाग

सन् ९८६ हि० में समय के विभाग की आज्ञा दी गई। कहा गया कि लोग जब सोकर उठा करें, तब सब कामों से हाथ रोककर पहले ईश्वर का ध्यान किया करें और मन को परमात्मा के स्मरण से प्रकाशित किया करें। इस शुभ समय में नया जीवन प्राप्त करना चाहिए। सब से पहला समय किसी अच्छे काम में लगाना चाहिए, जिसमें सारा दिन अच्छी तरह बीते। इस काम में पाँच घड़ी (दो घंटे) से कम न लगे; और इसे लोग अपने उद्देश्यों की सिद्धि या कामनाओं की पूर्ति का मुख्य द्वार समझें।

शरीर का भी थोड़ा सा ध्यान रखना चाहिए। इसकी देख-रेख करनी चाहिए और कपड़े-लत्तों पर ध्यान देना चाहिए। पर इसमें दो घड़ी से अधिक समय न लगे।

फिर दरबार आम में न्याय के द्वार खोलकर पीड़ितों की सुध ली जाया करे। गवाह और शपथ धोखेबाजों की दस्तावेज हैं। इन पर कभी विश्वास न करना चाहिए। बातों में पड़नेवाले विरोध और रंग ढंग से तथा नए नए उपायों और युक्तियों से वास्तविक बात ढूँढ निकालनी चाहिए। यह काम डेढ़ पहर से कम न होगा।

थोड़ा समय खाने पीने में भी लगाना चाहिए, जिसमें काम धंधा अच्छी तरह से हो सके। इसमें दो घड़ी से अधिक न लगाई जायगी।

फिर न्यायालय की शोभा बढ़ावेंगे। जिन बेजबानों का हाल कहनेवाला कोई नहीं है, उनकी खबर लेंगे। हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर आदि को देखेंगे। इन जीवों के खाने-पीने की खबर लेना भी आवश्यक है। इस काम के लिये चार घड़ी का समय अलग रहना चाहिए।

फिर महलों में जाया करेंगे और वहाँ जो सती स्त्रियाँ उपस्थित

होंगी, उनके निवेदन सुनेंगे, जिसमें स्त्रियाँ और पुरुष बराबर रहें और सबको समान रूप से न्याय प्राप्त हो।

यह शरीर हड्डियों का बना हुआ घर है और इसकी नींव निद्रा पर रखी गई है। अढ़ाई पहर निद्रा के लिये देने चाहिएँ। इन सूचनाओं से भले आदमियों ने बहुत कुछ लाभ उठाया और उनका बहुत उपकार हुआ।

जजिया और महसूल की माफी

अकबर की समस्त आज्ञाओं में जो आज्ञा सुनहले अक्षरों में लिखी जाने के योग्य है, वह यह है कि सन् ९८७ हि० के लगभग जजिया और चुंगी का महसूल माफ कर दिया गया, जिनसे कई करोड़ रुपयों की आय होती थी।

गुंग महल

एक दिन यों ही इस विषय में बात चीत होने लगी कि मनुष्य की स्वाभाविक और वास्तविक भाषा क्या है। वे ईश्वर के यहाँ से कौन सा धर्म लेकर आए हैं और पहले पहल कौन सा शब्द या वाक्य उनके मुँह से निकलता है। सन् ९८८ हि० में इसी बात का पता लगाने के लिये शहर के बाहर एक बहुत बड़ी इमारत बनवाई गई। प्रायः बीस शिशु जन्म लेते ही उनकी माताओं से ले लिये गए और वहाँ ले जाकर रखे गए। वहाँ दाइयाँ, दूध पिलानेवाली स्त्रियाँ और नौकर-चाकर आदि जितने थे, सब गूँगे ही रखे गए, जिसमें उन बच्चों के कानों तक मनुष्य का शब्द ही न जाने पावे। वहाँ बालकों के लिये सब प्रकार के सुख के साधन और सामग्रियाँ रखी गई थीं। उस मकान का नाम गुंग महल रखा गया था। कुछ वर्षों के उपरांत अकबर स्वयं वहाँ गया। सेवकों ने बच्चों को लाकर उसके आगे छोड़ दिया। छोटे छोटे बच्चे चलते थे, फिरते थे, खेलते

थे, कूदते थे, कुछ बोलते भी थे, पर उनकी बातों का एक शब्द भी समझ में न आता था। पशुओं की भाँति गायँ बायँ करते थे। गुंग महल में पले थे। गूँगे न होते तो और क्या होते?

द्वादश-वर्षीय चक्र

अकबर के कार्यों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि उसके कुछ कार्य कठिनाइयाँ दूर करने या आराम बढ़ाने या किसी और लाभ के विचार से होते थे; कुछ केवल काव्य-संबंधी अथवा कवियों के मनोविनोद के विषय होते थे; और कुछ इस विचार से होते थे कि भिन्न भिन्न बादशाहों की कुछ विशिष्ट बातें स्मृतियाँ मात्र हैं; अतः यह बात हमारी भी स्मृति के रूप में रहे। सन् ९८८ हि० में विचार हुआ कि हमारे बड़ों ने बारह बारह वर्षों का एक चक्र निश्चित करके प्रत्येक वर्ष का एक नाम रखा है; अतः ऐसा नियम बना देना चाहिए कि हम और हमारे सेवक उस वर्ष के अनुसार एक एक कार्य अपना कर्तव्य समझें। इसके लिये नीचे लिखे अनुसार व्यवस्था की गई थी।

सचकाईल (सचकान=चूहा) चूहे को न सतावें।

ऊदईल (ऊद = गौ)—गौओं और बैलों का पालन करें और दान पुण्य करके कृषकों की सहायता करें।

पारसनईल (पारस=चीता)—चीते का शिकार न करें और न चीते से शिकार करावें।

तोशकाईल (तोशकान=खरगोश)—न खरगोश खायँ और न उसका शिकार करें।

लोईईल (लोई = मगरमच्छ)—न मछली खायँ और न उसका शिकार करें।

पैलानील (पैलान = साँप) साँप को कष्ट न पहुँचावें।

आयतईल (आत = घोड़ा) घोड़े की हिंसा न करें और न उसका मांस खाएँ। घोड़े दान करें।

कबीईल (कबी = बकरी)—इसी प्रकार का व्यवहार बकरी के साथ करें।

पचीईल (पची = बंदर)—बंदर का शिकार न करें। जिसके पास बंदर हों, वह उन्हें जंगल में छोड़ दे।

तखाकूईल (तखाकू = मुरगा)—न मुरगे की हिंसा करें और न उसे लड़ावें।

ऐतईल (ऐत = कुत्ता)—कुत्ते के शिकार से मनोविनोद न करें। कुत्ते को और विशेषतः बाजारी कुत्ते को आराम पहुँचावें।

तुंगोजीईल (तुंगुज = सूअर)—सूअर को न सतावें।

चांद्र मासों में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखें—

मुहर्रम—किसी जीव को न सताओ।

सफर—दासों को मुक्त करो।

रबीउल्अव्वल—तीस दीन दुखियों को दान दो।

रबीउस्सानी—स्नान करके सुखी रहो।

जमादीउल्अव्वल—बढ़िया और रेशमी कपड़े न पहनो।

जमादी उस्सानी—चमड़े का व्यवहार न करो।

रजब—अपनी योग्यता के अनुसार अपने समान वयवाले की सहायता करो।

शअबान—किसी के साथ कठोरता का व्यवहार न करो।

रमजान—अपाहजों को भोजन और वस्त्र दो।

शवाल—एक हजार बार ईश्वर के नाम का जप करो।

जीकअद—रात्रि के आरंभ में जागते रहो और दूसरे धर्मों के अनुयायी दीन-दुखियों का उपकार करके प्रसन्न रहो।

जिल्हिज—सर्वसाधारण के सुख के लिये इमारतें बनवाओ।

मनुष्य-गणना

सन् ९८९ हि० में आज्ञा हुई की सब जागीरदार और आमिल आदि मिलकर मनुष्य-गणना का काम करें; सब लोगों के नाम और उनका पेशा आदि लिखकर तैयार करें।

खैरपुरा और धर्मपुरा

शहरों और पड़ावों में स्थान स्थान पर ऐसी दो दो जगहें बनाई गई, जिनमें हिंदुओं और मुसलमानों को भोजन मिला करे और वे वहाँ पहुँचकर सब प्रकार से सुख पावे। मुसलमानों के लिये खैरपुरा था और हिंदुओं के लिये धर्मपुरा।

शैतानपुरा

सन् ९९० हि० में शैतानपुरा बसाया गया था। यदि पाठक उसकी सैर करना चाहें तो पृ० १२१ देखें।

जनाना बाजार

प्रति वर्ष जशन के जो दरबार हुआ करते थे, उनका स्वरूप तो पाठकों ने देख ही लिया। उनके बाजारों का तमाशा महलों की बेगमों को भी दिखलाया। सन् ९९१ हि० में इसके लिये भी एक कानून बना था। इसका विवरण आगे चलकर दिया गया है।

पदार्थों और जीवों की उन्नति

बहुत से पदार्थ और जीव ऐसे थे, जिनकी युद्ध में और साधारणतः साम्राज्य के दूसरे कामों में भी विशेष आवश्यकता पड़ा करती थी और जो समय पर तैयार नहीं मिलते थे। इसलिये सन् ९९० हि० में आज्ञा दी की एक एक अमीर पर उनमें से एक एक की रक्षा और उन्नति का भार डाला जाय, और उस प्रकार या जाति का अच्छे से

अच्छा पदार्थ या जीव समय पर देना उसके सपुर्द हो। अमीरों को यह काम सपुर्द करने में उनकी योग्यता, पद और रुचि आदि का तो ध्यान रखा ही, साथ ही उसपर कुछ दिल्लगी का गरम मसाला भी छिड़का। उदाहरण के लिये यहाँ कुछ अमीरों के नाम देकर यह बतलाया जाता है कि उनके सपुर्द क्या काम था।

अब्दुलरहीम खानखानाँ–घोड़ों को रक्षा।

राजा टोडरमल–हाथी और अन्न।

मिरजा यूसूफ खाँ—ऊँटों की रक्षा। ये खान आजम के बड़े भाई थे। कदाचित् इसमें यह संकेत हो कि इनके वंश का हर एक आदमी बुद्धि की दृष्टि से ऊँट ही होता था।

शरीफ खाँ–भेड़ बकरियों की रक्षा। ये खान आजम के चाचा थे। भेड़–बकरी क्या, संसार के सभी पशु इनके वंश के वंशज थे।

शेख अब्बुलफजल–पशमीन।

नकीब खाँ–साहित्य और लेखन।

कासिम खाँ (जल और स्थल के सेनापति)–फूल पत्ती और जड़ी बूटी आदि सभी वनस्पतियाँ। तात्पर्य यह था कि इनके द्वारा जंगलों और समुद्रों के पदार्थ खूब मिलेंगे; क्योंकि जल और स्थल में इन्हीं का राज्य था।

हकीम अब्बुलफतह—नशे की चीजें। तात्पर्य यह था कि यह हकीम हैं, इनमें भी कुछ हिकमत निकालेगें।

राजा बीरबल–गौ और भैंस। इसमें यह संकेत था कि गौ की रक्षा करना तुम्हारा धर्म है, और भैंस उसकी बहन है।

काश्मीर में बढिया नावें

सन् ९९७ हि० में अकबर अपने लश्कर, अमीरों और बेगमों समेत काश्मीर की सैर के लिये गया था। उस समय वहाँ नदियों

और तालाबों में तीस हजार से अधिक नावें चलती थीं। पर उनमें बादशाहों के बैठने के योग्य एक भी नाव नहीं थी। अकबर ने बंगाल की नावें देखी थीं, जिनमें नीचे और ऊपर बैठने के लिये बढ़िया बढ़िया कमरे होते थे और अच्छी अच्छी खिड़कियाँ आदि कटी होती थीं। उन्हीं नावों के ढंग पर यहाँ भी थोड़े ही दिनों में एक हजार नावें तैयार हो गईं। अमीरों ने भी इसी प्रकार पानी पर घर बनाए। पानी पर एक बसा-बसाया नगर चलने लगा।

जहाज

सन् १००२ हि० में रावी नदी के तट पर एक जहाज तैयार हुआ। उसका मस्तूल इलाही गज से ३५ गज था। उसमें साल और नाजोद के २९३६ बड़े बड़े शहतीर और ४६८ मन २ सेर लोहा लगा था। बढ़ई और लोहार आदि उसमें काम करते थे। जब वह बनकर तैयार हुआ, तब साम्राज्य रूपी जहाज का मल्लाह आकर खड़ा हुआ। बोझ उठाने के विलक्षण विलक्षण औजार और यंत्र लगाए। हजार आदमियों ने हाथ पैर का जोर लगाया और बहुत कठिनता से दस दिन में पानी में डालकर लाहरी बंदर के लिये रवाना किया। पर वह अपने बोझ और नदी में पानी कम होने के कारण स्थान-स्थान पर रुक रुक जाता था और बड़ी कठिनता से अपने उद्दिष्ट बंदर तक पहुँचा था। उन दिनों ऐसे बुद्धिमान् और ऐसी सामग्रियाँ कहाँ थीं, जिनसे नदी का बल बढ़ाकर उसे जहाज चलाने के योग्य बना लेते! इसलिये जहाजों के आने जाने की कोई व्यवस्था न हो सकी। यदि उसके समय के अमीर और उसके उत्तराधिकारी भी वैसे ही होते, तो यह काम भी चल निकलता।

सन् १००४ हि० में एक और जहाज तैयार हुआ। पानी की कमी के विचार से इसका बोझ भी कम ही रखा गया। फिर भी यह पंद्रह हजार मन से अधिक बोझ उठा सकता था। यह लाहौर से लाहरी

तक सहज में जा पहुँचा। इसका मस्तूल ३७ गज का था। इसमें १६३३८) लागत आई थी। (देखो अकबरनामा)

विद्या-प्रेम

ऐशिया के राज्यों में बादशाहों और अमीरों के बच्चों के लिये पढ़ने लिखने की अवस्था छः सात वर्ष से अधिक नहीं होती। जहाँ वे घोड़े पर चढ़ने लगे, कि चौगानबाजी और शिकार होने लगे। शिकार खेलते ही खुल खेले। अब कहाँ का पढ़ना और कहाँ का लिखना। थोड़े ही दिनों में देश और संपत्ति के शिकार पर घोड़े दौड़ाने लगे।

जब अकबर चार बरस, चार महीने और चार दिन का हुआ, तब हुमायूँ ने उसका विद्यारंभ कराया। मुल्ला असामउद्दीन इब्राहीम को शिक्षक का पद मिला। कुछ दिनों के बाद पिछला पाठ सुना, तो पता लगा कि यहाँ ईश्वर के नाम के सिवा कुछ भी नहीं। हुमायूँ ने समझा कि इस मुल्ला ने अच्छी तरह ध्यान नहीं दिया। लोगों ने कहा कि मुल्ला को कबूतर उड़ाने का बहुत शौक है। शिष्य का मन भी कबूतरों के साथ हवा में उड़ने लगा होगा। विवश होकर मुल्ला बायजीद को नियुक्त किया; पर फिर भी कोई परिणाम न हुआ। इन दोनों के साथ मौलाना अब्दुल कादिर का नाम मिलाकर गोटी डाली गई। उनमें मौलाना का नाम निकाला। अकबर कुछ दिनों तक उन्हीं से पढ़ता रहा। जब तक वह काबुल में था तब तक घोड़े और ऊँट पर चढ़ने, शिकारी कुत्ते दौड़ाने और कबूतर उड़ाने में अपने शौक के कारण अच्छा रहा। भारत में आने पर भी वही शौक बने रहे। मुल्ला पीर मुहम्मद भी बैरम खाँ खानखानाँ के प्रतिनिधि थे। जिस समय हुजूर का जी चाहता था और ध्यान आता था, उस समय इनके सामने भी पुस्तक खोलकर बैठ जाते थे।

सन् ९६३ हि० में अमीर अब्दुल लतीफ कजवीनी से दीवान हाफिज आदि पढ़ना आरंभ किया। सन् ९८७ हि० में विद्वानों और

मौलवियों के विवाद और शास्त्रार्थ सुन-सुनकर अरबी पढ़ने की इच्छा हुई और उसका अध्ययन भी आरंभ हुआ। शेख मुबारक शिक्षक हुए। पर अब बाल्यावस्था का मस्तिष्क कहाँ से आता। यह भी एक हवा थी, जो थोड़े ही दिनों में बदल गई। किसी पुस्तक में तो नहीं देखा, पर प्रायः लोग कहा करते हैं कि एक दिन एकांत में दरबार हो रहा था। खास खास अमीर और साम्राज्य के स्तंभ उपस्थित थे। तूरान से आया हुआ राजदूत अपने लाए हुए पत्र उपस्थित कर रहा था। उसने एक कागज निकालकर अकबर की ओर बढ़ाया और कहा कि जरा श्रीमान् इसे देखें। फैजी ने पढ़ने के लिये उसके हाथ से ले लिया। वह कुछ मुस्कराया। उसके देखने के ढंग से प्रकट हो रहा था कि वह अकबर को अशिक्षित समझता था। फैजी तुरंत बोले--तुम मेरे सामने बातें न बनाओ। क्या तुम नहीं जानते कि हमारे पैगंबर साहब[1] भी उम्मी (बिना पढ़े लिखे) थे?

भारत के इतिहास-लेखक, जो सब के सब चगताई साम्राज्य के सेवक थे, अकबर के अशिक्षित होने के संबंध में भी विलक्षण विलक्षण बातें कहते हैं। कभी कहते हैं कि ईश्वर को यह प्रमाणित करना था कि ईश्वर का यह कृपापात्र बिना किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त किए ही सब विद्याओं का आगार है। कभी कहते हैं कि ईश्वर सब लोगों को यह दिखलाना चाहता था कि अकबर की बुद्धि और ज्ञान ईश्वरदत्त है, किसी मनुष्य से प्राप्त की हुई नहीं है, इत्यादि इत्यादि।

परंतु सब प्रकार से अशिक्षित होने पर भी इसमें विद्या और कला आदि के प्रति जितना अनुराग था, और इसे जितना अधिक

---

१ मुहम्मद साहब भी अशिक्षित थे। पर उनके संबंध में प्रसिद्ध है कि वे सर्वज्ञ थे और उनके सामने जो कोई आता था, वे उसके हृदय की बात तुरंत जान लेते थे। यहाँ फैजी का अभिप्राय यह था कि पैगंबर साहब की भाँति हमारे बादशाह सलामत अशिक्षित होने पर भी सर्वज्ञ हैं।

ज्ञान था, उतना कदाचित् ही किसी और बादशाह को रहा हो। जरा इबादत खाने (उपासना-मंदिर) के जलसे याद करो। अकबर रात के समय सदा पुस्तकें पढ़वाया करता था और बड़े ध्यान से सुनता था। विद्या-संबंधी विचार होते थे, विद्या-संबंधी चर्चा होती थी। पुस्तकालय कई स्थानों में विभक्त था। कुछ अंदर महल में था, कुछ बाहर रहता था। विद्या, ज्ञान और कला आदि के गद्य, पद्य, हिंदी, फारसी, काश्मीरी, अरबी सब के अलग अलग ग्रंथ थे। प्रति वर्ष क्रम क्रम से सब पुस्तकों की जाँच होती थी कि कहीं कोई पुस्तक गुम तो नहीं हो गई। अरबी का स्थान सब के अंत में था। बड़े बड़े विद्वान् नियत समय पर पुस्तकें सुनाते थे। वह भी जो पुस्तक सुनने बैठता था, उसका एक पृष्ठ भी न छोड़ता था। पढ़ते पढ़ते जहाँ बीच में रुकते थे, वहाँ वह अपने हाथ से चिह्न कर देता था; और जब पुस्तक समाप्त हो जाती थी तब पढ़नेवाले को पृष्ठों के हिसाब से स्वयं अपने पास से कुछ पुरस्कार भी देता था।

प्रसिद्ध पुस्तकों में कदाचित् ही कोई ऐसी पुस्तक होगी, जो अकबर के सामने न पढ़ी गई हो। कोई ऐसी ऐतिहासिक घटना, धार्मिक प्रश्न, विद्या-संबंधी वाद, दर्शन या विज्ञान की समस्या ऐसी न थी, जिस पर वह स्वयं विवाद या बातचीत न कर सकता हो। पुस्तक को दोबारा सुनने से वह कभी उकताता न था, बल्कि और भी मन लगाकर सुनता था। उसके अर्थों के संबंध में प्रश्न और बातचीत करता था। धर्म-संबंधी तथा दूसरी सैकड़ों समस्याओं के संबंध में बड़े बड़े विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत उसे जबानी याद थे। ऐतिहासिक घटनाएँ तो वह इतनी अधिक जानता था कि मानों स्वयं ही एक पुस्तकालय था। मुल्ला साहब ने मुंतखिबुल्तवारीख में एक स्थान पर लिखा है कि सुलतान शम्सुद्दीन अल्तमश के संबंध में एक कथानक प्रसिद्ध है कि वह नपुंसक था; और उसकी इस प्रसिद्धि का कारण यह बतलाया जाता है कि एक बार उसने एक सुंदरी दासी के साथ संभोग करना चाहा, पर उससे कुछ न

हो सका। इसके उपरांत फिर कई बार उसने विचार किया, पर उसे कभी सफलता न हुई। एक दिन वही दासी उसके सिर में तेल लगा रही थी। इतने में बादशाह को मालुम हुआ कि सिर पर कुछ बूँदें टपकी हैं। बादशाह ने सिर उठाकर देखा और उस दासी से रोने का कारण पूछा। बहुत आग्रह करने पर उसने बतलाया कि बाल्यावस्था में मेरा एक भाई था; और आप ही की भाँति उसके सिर के बाल भी उड़े हुए थे। उसी का स्मरण करके मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े। जब इस बात का पता लगाया गया कि यह दुःखिनी कैसे और कहाँ से आई थी, तो मालूम हुआ कि वह वास्तव में बादशाह की सगी बहन थी। मानों ईश्वर ने ही इस प्रकार उस बादशाह को इस घोर पातक से बचाया था। मुल्ला साहब इसके आगे लिखते हैं कि प्रायः मुझे भी रात के समय एकांत में अपने पास बुला लिया करता था और बातचीत में मेरी प्रतिष्ठा बढ़ाया करता था। एक बार फतहपुर में और एक बार लाहौर में अकबर ने मुझसे कहा था कि वास्तव में यह घटना शम्सुद्दीन अल्तमश के संबंध की नहीं है, बल्कि ग़यास उद्दीन बलबन के संबंध की है; और इसके संबंध में कुछ और विशेष बातें भी बतलाई थीं। प्रत्येक जाति और देश के सभी भाषाओं के बड़े-बड़े और प्रसिद्ध इतिहास नित्य और नियमित रूप से उसके सामने पढ़े जाते थे; और उनमें भी शेख सादी कृत गुलिस्ताँ और बोस्ताँ सब से अधिक।

लिखाई हुई पुस्तकें

अकबर की आज्ञा से जो पुस्तकें प्रस्तुत हुईं, उनसे अब तक बड़े बड़े विद्या-प्रेमी अर्थ के फूल और लाभ के फल चुन चुन-कर अपनी झोली भरते हैं। नीचे उन पुस्तकों की सूची दी जाती है; जो इसकी आज्ञा से रची गई थीं; अथवा जिनका इसने अन्य भाषाओं से अनुवाद कराया था।

सिंहासन बत्तीसी—इसकी पुतलियों को बादशाह की आज्ञा

से सन् ९८२ हि० में मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूनी ने फारस के बल पहनाए थे और उसका नाम नामै खिरद-अफजा रखा गया था।

हैवात् उल् हैवान—इस नाम का एक ग्रंथ अरबी में था। अकबर उसे प्रायः पढ़वाकर उसका अर्थ सुना करता था। सन् ९८३ में अब्बुलफजल से कहा कि फारसी में इसका अनुवाद हो। अब्बुलफजल ने अनुवाद कर दिया। (देखो परिशिष्ट में उसका हाल)

अथर्व वेद—सन् ९८३ हि० में शेख भावन नामक एक ब्राह्मण दक्षिण से आकर अपनी इच्छा से मुसलमान हुआ और खवासों में संमिलित हो गया। उसे आज्ञा हुई कि अथर्व वेद का अनुवाद करा दो। फाजिल बदायूनी को उसके लिखने का काम सौंपा गया। अनेक स्थानों में उसकी भाषा ऐसी कठिन थी कि वह अर्थ ही न समझा सकता था। यह बात अकबर से कही गई। पहले शेख फैजी को और फिर हाजी इब्राहीम को यह काम सौंपा गया; पर वे भी न कर सके। अंत में अनुवाद का काम रोक दिया गया। ब्लाकमैन साहब ने आईन अकबरी का जो अनुवाद किया है, उसमें उन्होंने लिखा है कि अनुवाद हो गया था।

किताबुल् अहादीस—मुल्ला साहब ने जहाद और तीरंदाजी के पुण्यों के संबध में यह पुस्तक लिखी थी और इसका नाम भी ऐसा रखा था, जिससे इसके बनने का सन् निकलता है। सन् ९८६ में यह अकबर को भेंट की गई थी। जान पड़ता है कि यह पुस्तक सन् ९७६ हि० में साम्राज्य की नौकरी करने से पहले उन्होंने अपने शौक से लिखी थी। उनकी कलम भी कभी निचली न रहती थी। आजाद की भाँति कुछ न कुछ किए जाते थे। लिखते थे और डाल रखते थे।

तारीख अलफी—सन् ९९० हि० में अकबर ने कहा कि हजार वर्ष पूरे हो गए। कागजों में सन् अलिफ लिखे जाते हैं। सारे संसार की इन हजार वर्षों की घटनाएँ लिखकर उसका नाम तारीख अलफी

रखना चाहिए (विवरण के लिये देखो अब्दुलकादिर का हाल)। शेख अब्बुलफजल लिखते हैं कि इसकी भूमिका मैंने लिखी थी ।

रामायण—सन् ९९२ हि० में मुल्ला अब्दुलकादिर बदायूनी को आज्ञा दी कि इसका अनुवाद करो। सहायता के लिये कुछ पंडित साथ कर दिए गए। सन् ९९७ हि० में समाप्त हुई। पूरी पुस्तक में पचीस हजार श्लोक हैं और प्रत्येक श्लोक में पैंसठ अक्षर हैं। महाभारत का अनुवाद भी इन्हीं पंडितों से कराया गया था।

जामः रशीदी—सन् ९९३ हि० में मुल्ला अब्दुलकादिर को आज्ञा हुई कि शेख अब्बुलफजल के परामर्श से इसका संक्षिप्त संस्करण तैयार करो। यह भी एक बड़ा ग्रंथ हुआ।

तुजुक बाबरी—इसमें व्यावहारिक ज्ञान की बहुत सी बातें है। सन् ९९७ हि० में अकबर की आज्ञा से अब्दुलरहीम खानखानाँ ने तुर्की से फारसी में अनुवाद करके अकबर को भेंट किया था। यह अनुवाद अकबर को बहुत पसंद आया था।

तारीख काश्मीर—एक बार यों ही राजतरंगिणी की चर्चा हुई। यह संस्कृत भाषा का काश्मीर का प्राचीन इतिहास है। काश्मीर प्रांत के शाहाबाद नामक स्थान के रहनेवाले मुल्ला शाह मुहम्मद एक बहुत ही योग्य विद्वान् थे। उन्हें आज्ञा हुई कि इसी राजतरंगिणी के आधार पर काश्मीर का इतिहास लिखो। जब ग्रंथ तैयार हुआ, तब इसकी भाषा पसंद नहीं आई। सन् ९९९ हि० में मुल्ला साहब को आज्ञा हुई कि इसे बहुत ही अच्छी और चलती हुई भाषा में लिख दो। उन्होंने दो महीने में यह पुस्तक लिख दी।

मुअज्जिम-उल्-बलदान—सन् ९९९ हि० में हकीम हमाम ने इस ग्रंथ की बहुत प्रशंसा की और कहा कि इसमें बहुत ही विलक्षण और शिक्षाप्रद बातें हैं। यदि इसका अनुवाद हो जाय, तो बहुत अच्छा हो। ग्रंथ बड़ा था। दस बारह ईरानी और भारतीय एकत्र किए गए

और उनमें ग्रंथ खंड खंड करके बाँट दिया गया। थोड़े दिनों में पुस्तक तैयार हो गई।

नजात-उल्-रशीद—सन् ९९९ हि० में ख्वाजा निजामउद्दीन बख्शी की आज्ञा से मुल्ला अब्दुल्कादिर ने यह पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक के नाम से भी इसके बनने का सन् निकलता है।

महाभारत—सन् ९९० हि० में इसका अनुवाद आरंभ हुआ था। बहुत से लेखक और अनुवादक इस काम में लगे थे। तैयार होने पर सचित्र लिखी गई; और फिर दोबारा लिखी गई। रज्मनामा नाम रखा गया। शेख अब्बुलफजल ने इसकी भूमिका लिखी थी।

तबक़ाते अकबरशाही—इसमें अकबर के शासन-काल की सब बातें लिखी जाती थीं। पर सन् १००० हि० तक का ही हाल लिखा गया था। उससे आगे न चल सका।

सवातअ़ उल् इल्हाम—सन् १००२ हि० में शेख फैजी ने यह टीका तैयार की थी। इसमें यह विशेषता थी कि आदि से अंत तक एक भी नुकते या बिंदीवाला अक्षर नहीं आने पाया था। (देखो फैजी का हाल)

मवारिद-उल्-कलम—इसे भी फैजी ने लिखा था। इसमें भी केवल बिना नुकतेवाले ही अक्षर आए हैं।

नल-दमन—सन् १००३ हि० में अकबर ने शेख फैजी को आज्ञा दी कि पंज गंज निजामी की भाँति एक पंज गंज (कथापंचक) लिखो। उन्होंने चार महीने में पहले नल-दमन (नल और दमयंती की कहानी) लिखकर भेंट की। (देखो फैजी का हाल)

लीलावती—संस्कृत में गणित का प्रसिद्ध ग्रंथ है। फैजी ने फ़ारसी में इसका अनुवाद किया था। (देखो फैजी का हाल)

बहर उल् इस्मा—सन् १००४ हि० में एक भारतीय कहानी को

मुल्ला अब्दुलक़ादिर बदायूनी से ठीक कराया गया था। इसका मूल अनुवाद काश्मीर के बादशाह सुलतान जैन-उल् आब्दीन ने कराया था। यह बहुत बड़ा और भारी ग्रंथ था। अब नहीं मिलता।

मरकज़ अदवार—यह भी उक्त नल-दमनवाले पंचक में से एक कहानी थी। फैजी ने लिखी थी। उसके मरने के उपरांत मसौदे की भाँति लिखे हुए इसके कुछ फुटकर पद्य मिले थे। अब्बुलफजल ने उन्हें क्रम से लगाकर साफ किया था। (देखो फैजी का हाल)

अकबरनामा—इसमें अकबर का चालीस वर्ष का हाल है और आईन अकबरी इसका दूसरा भाग है। यह कुल अब्बुलफजल ने लिखा था। (देखो अब्बुलफजल का हाल)

अयार दानिश—एक प्रसिद्ध कहानी है। अब्बुलफजल ने इसे लिखा था। (देखो अब्बुलफजल का हाल)

कशकोल—अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ते समय उनमें अब्बुल-फज़ल को जो जो बातें पसंद आई थीं, उन सबको उसने अलग लिख लिया था। उसी संग्रह का नाम कशकोल है। प्रायः बड़े बड़े विद्वान् जब भिन्न भिन्न विषयों की अच्छी अच्छी पुस्तकें देखते हैं, तब उनमें से बहुत बढ़िया और काम की बातें अलग लिखते जाते हैं; और उनके इस संग्रह को कशकोल[1] कहते हैं। इस प्रकार के अनेक विद्वानों के संग्रह मिलते हैं। उसी ढंग का यह भी एक संग्रह था।

ताजक—यह ज्योतिष का प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ है। अकबर की आज्ञा से मुकम्मल खाँ गुजराती ने फारसी में इसका अनुवाद किया था।

हरिवंश—यह संस्कृत का प्रसिद्ध पुराण है और इस में श्रीकृष्ण-

---

१ इसका वास्तविक अर्थ है भिक्षुओं का वह भिक्षापात्र जिसमें वे भिक्षा में मिली हुई सभी प्रकार की चीजें रखते जाते हैं।

चंद्र की समस्त लीलाओं का वर्णन है। मुल्ला शीरीं ने फारसी में इसका अनुवाद किया था।

ज्योतिष—खानखानाँ ने ज्योतिष संबंधी एक मस्नवी लिखी थी। इसके प्रत्येक पद्य का एक चरण फारसी में और एक संस्कृत में है।

समरतुलफिलास्फ़—यह अब्दुलसत्तार की लिखी हुई है। अकबर के समय के इतिहास में इस ग्रंथ ने प्रसिद्धि नहीं पाई। लेखक ने स्वयं भूमिका में लिखा है कि मैंने छः महीने में पादरी शोपर से यूनानी भाषा सीखी। यद्यपि मैं यूनानी बोल नहीं सकता, तथापि उसका अभिप्राय समझ लेता हूँ। उधर बादशाह ने इस पुस्तक के अनुवाद की आज्ञा दी और इधर यह पुस्तक तैयार हो गई। इस पुस्तक और इसके लेखक से अब्बुलफजल के उस वाक्य का समर्थन होता है, जो उसने पादरी फ्रीवतोन आदि युरोपियनों के आने का उल्लेख करते हुए लिखा है और जिसका आशय यह है कि यूनानी ग्रंथों के अनुवाद के साधन एकत्र हुए। इस पुस्तक में पहले तो रोमन साम्राज्य का प्राचीन इतिहास दिया गया है और तब वहाँ के सुयोग्य और प्रसिद्ध पुरुषों का हाल लिखा है। इसकी लेखन-शैली ऐसी है कि यदि आप भूमिका न पढ़ें, तो यही समझें कि पुस्तक अब्बुलफजल या उसके किसी शिष्य की लिखी हुई है। कदाचित् इसे दोहराने की नौबत न पहुँची होगी। अकबर के सन् ४८ जलूसी में लिखी गई थी। हिजरी सन् १०११ हुआ। यह पुस्तक आजाद ने पटियाले के अमात्य खलीफा सैयद मुहम्मदहसन के पुस्तकालय में देखी थी।

खैर-उल्-बयान—पुस्तक पीर तारीकी ने लिखी थी। यह वही पीर तारीकी है, जिसने अपना नाम पीर रोशनाई रखा था। पेशावर के आसपास के पहाड़ी प्रदेशों में जितने वहाबी फैले हुए हैं वे सब इसी के मतानुयायी हैं; और जो इधर उधर नए पैदा होते हैं, वे सब भी उन्हीं में जा मिलते हैं।

अकबर के समय की इमारतें

जब सन् ९६१ हि० में हुमायूँ भारत में आया था, तब वह स्वयं तो लाहौर में ही ठहर गया और अकबर को खानखानाँ के साथ उसका शिक्षक नियुक्त करके आगे बढ़ाया। सरहिंद में सिकंदर सूर पठानों का टिड्डी दल लिए पड़ा था। खानखानाँ ने युद्ध-क्षेत्र में पहुँचकर सेनाएँ खड़ी कीं और हुमायूँ के पास एक निवेदनपत्र लिख भेजा। वह भी तुरंत आ पहुँचा। युद्ध बहुत कौशल से आरंभ हुआ और कई दिनों तक होता रहा। जो पार्श्व अकबर और बैरम खाँ के सपुर्द था, उधर से अच्छी अच्छी कारगुजारियाँ हुईं; और जिस दिन शाहजादे का धावा हुआ, उसी दिन युद्ध में विजय प्राप्त हुई। इस युद्ध की जो बधाइयाँ लिखी गईं, वे सब अकबर के ही नाम से थीं। खानखानाँ ने उक्त स्थान का नाम सर-मंजिल रखा, क्योंकि वहीं शाहजादे के नाम की पहली विजय हुई थी; और उसकी स्मृति में एक कल्ला मनार बनवाया।

सन् ९६९ हि० में खान आजम शमसुद्दीन मुहम्मद खाँ अतका आगरे में शहीद हुए। अकबर ने उनकी रथी दिल्ली भिजवाई और उसपर एक मकबरा बनवाया। उसी दिन अदहम खाँ भी इनकी हत्या करने के अपराध में मारा गया। उसे भी उसी मार्ग से भिजवा दिया। इसके चालीसवें दिन उसकी माता माहम बेगम, जो अकबर की अन्ना या दूध पिलानेवाली थी, अपने पुत्र के शोक में इस संसार से चल बसी। उसकी रथी भी इसलिये वहीं भेज दी गई कि माता और पुत्र दोनों साथ रहें; और उनकी कब्र पर एक विशाल मकबरा बनवाया। वह अब तक कुतुब साहब की लाट के पास भूल भुलैयाँ के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् ९६३ हि० में, जो राज्यारोहण का पहला वर्ष था, हेमूँवाले

युद्ध में विजय हुई थी। पानीपत के मैदान में जहाँ युद्ध हुआ था, कल्ला मुनार बनवाया।

नगर चीन—आगरे से तीन कोस पर कराई नामक एक गाँव था। वहाँ की हरियाली और जल की अधिकता अकबर को बहुत पसंद आई। वह प्रायः सैर अथवा शिकार करने के लिये वहीं जाया करता था और अपना चित्त प्रसन्न किया करता था। सन् ९७१ हि० में जी में आया कि यहाँ नगर बसाया जाय। थोड़े ही दिनों में वहाँ फली फूली वाटिकाएँ, विशाल भवन, शाही महल, नजर बाग, अच्छे अच्छे मकान, चौपड़ के बाजार, ऊँची ऊँची दूकानें आदि तैयार हो गईं। दरबार के अमीरों और साम्राज्य के स्तंभों ने भी अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार अच्छे अच्छे मकान, महल और बाग आदि बनवाए। बादशाह ने वहीं एक बहुत बड़ा चौरस मैदान तैयार कराया था, जिसमें वह चौगान खेला करता था। वह चौगानबाजी का मैदान कहलाता था। यह नगर अपनी अनुपम विशेषताओं और विलक्षण आविष्कारों के साथ इतनी जल्दी तैयार हुआ था कि देखनेवाले दंग रह गए (मुल्ला साहब कहते हैं) और मिटा भी इतनी जल्दी कि देखते देखते उसका चिह्न तक न रह गया। मैंने स्वयं आगरे जाकर देखा और लोगों से पूछा था। वह स्थान अब नगर से पाँच कोस समझा जाता है। इससे और वहाँ के खँडहरों से पता चलता है कि उस समय आगरा नगर कहाँ तक बसा हुआ था और अब कितना रह गया है।

शेख सलीम चिश्ती की मसजिद और खानकाह—अकबर की अवस्था २७-२८ वर्ष की हो गई थी और उसे कोई संतान न थी। जो हुई, वह मर गई थी। शेख सलीम चिश्ती ने समाचार दिया कि राज-सिंहासन और मुकुट का उत्तराधिकारी जन्म लेनेवाला है। संयोग से ऐसा हुआ कि इन्हीं दिनों महल में गर्भ के चिह्न भी दिखाई देने लगे। इस विचार से कि इस सिद्ध पुरुष का और भी

सामीप्य हो जाय, अकबर ने अपनी गर्भवती स्त्री को शेख़ के घर में भेज दिया और आप भी वचन की पूर्ति की प्रतीक्षा में वहीं रहने लगा। यह बात सन् ९७६ हि० की है। उसी समय शेख़ की पहली खानकाह और हवेली के पास सीकरी पहाड़ी पर राजसी ठाठ का एक भवन, नई खानकाह और एक बहुत ही विशाल मसजिद बनवाना आरंभ किया। यह सारी इमारत बिलकुल पत्थर की है। एक पहाड़ है कि एक पहाड़ पर रखा हुआ है। सारे संसार में ऐसी इमारतें बहुत ही कम हैं। यह प्रायः पाँच वर्ष में बनकर तैयार हुई थी। इसका बुलंद दरवाजा किसी बनिये ने बनवाया था।

फतहपुर सीकरी—सन् ९७९ हि० में आज्ञा हुई कि उक्त खानक़ाह के पास ही बड़े बड़े शाही महल तैयार हों और छोटे से बड़े तक सब अमीर भी वहीं पत्थर और गचकारी के अच्छे अच्छे महल बनवावें। संगीन और चौड़े चौपड़ के बाजार बनें। दोनों ओर ऊपर हवादार कोठे हों और नीचे पाठशालाएँ, खानकाहें और गरम पानी के हंमाम नहाने के लिये बनें। शहर के घरों में भी और बाहर भी बाग लगें। अमीर और गरीब सब पेशे के लोग बसें और अच्छे अच्छे मकानों तथा दूकानों से नगर की आबादी बढ़ावें। नगर चारों ओर पत्थर और चूने का प्राकार बने। वहाँ से चार कोस पर मरियम मकानी का बहुत ही सुंदर बाग और महल था। बाबर ने भी राणा पर यहीं विजय पाई थी। अकबर ने शुभ शकुन समझकर फतहाबाद नाम रखा था, पर फतहपुर प्रसिद्ध हो गया; और वह बादशाह को भी स्वीकृत हो गया। उसकी इच्छा थी कि यहीं राजधानी भी हो जाय। पर ईश्वर को मंजूर नहीं था। सन् ९८५ हि० में आज्ञा दी कि टकसाल भी यहीं जारी हो। चौकोर रुपए पहले पहल यहीं से निकले थे।

बंगाली महल—एक और महल इसी सन् में आगरे में तैयार हुआ था।

अकबराबाद का किला—आगरे का अधिकांश सिकंदर लोदी ने बसाया था और ऐसा बढ़ाया कि ईंट, पत्थर और चूने से किला तैयार करके उसे राजधानी बना दिया। उस समय बीच में जमना बहती थी और उसके दोनों ओर नगर बसा हुआ था। किला नगर के पूर्व ओर था। सन् ९७३ में अकबर ने आज्ञा दी कि यह किला संगीन बना दिया जाय, लाल पत्थर की सिलें काट काटकर लगाई जायँ और दोनों ओर चूने और पत्थर से मजबूत इमारतें बनें। मुल्ला साहब कहते हैं कि इसके लिये सारे देश पर प्रति जरीब तीन सेर अनाज कर लगा दिया गया था। उगाहनेवाले पहुँचे और जागीरदार अमीरों के द्वारा वसूल कर लाए। दीवार की चौड़ाई तीस गज और ऊँचाई साठ गज रखी गई। चार दरवाजे और पानी की एक ऐसी गहरी खाई रखी गई कि दस गज पर पानी निकल आता था[1]। रोज तीन चार हजार मजदूरों की मदद लगती थी। यह अब भी जमना के किनारे लंबाई में फैला हुआ दिखाई देता है। देखनेवाले कहते हैं कि यह किला भी अपना जवाब नहीं रखता। मुल्ला साहब कहते हैं कि इसमें प्रायः तीस करोड़ रुपए लागत आई है और यह सारे भारत के रुपयों को छाती पर लिए बैठा है। कारीगर, राज, संगतराश, चित्रकार, लोहार, मजदूर आदि चार हजार आदमियों की मदद रोज लगती थी। स्वयं अकबर के रहने के महल में संगतराशों, चित्रकारों और पच्चीकारी करनेवालों ने ऐसा

---

१ बदायूनी की पुस्तक में इसके बनने का समय पाँच वर्ष और अकबर नामे में आठ वर्ष लिखा है। चौड़ाई तथा ऊँचाई में भी अंतर है। खाफी खाँ लिखते हैं कि सन् ९७१ हि० में इसका बनना आरंभ हुआ और ९८० में यह बनकर तैयार हुआ। तीस लाख रुपए खर्च हुए। इन्होंने यह भी लिखा है कि लोग समझते हैं कि अकबर के समय से ही इसका नाम अकबराबाद पड़ा। पर मिरजा अमीना ने शाहजहाँनामे में लिखा है कि शाहजहान ने अपने दादा के प्रेम से इसका नाम अकबराबाद रखा। पहले आगरा ही प्रसिद्ध था।

काम किया कि भविष्य में किसी प्रकार के आविष्कार के लिये जगह ही नहीं छोड़ी ! इसके विशाल मुख्य द्वार के दोनों ओर पत्थर के दो हाथी तराशकर खड़े किए गए थे, जो दोनों आमने सामने थे और अपने सूँड़ मिलाकर महराब बनाते थे और सब लोग उसके नीचे से आते जाते थे। इसका नाम हथिया पोल था। इसी पर खास दरबार का नक्कारखाना था। अब न नकारा रहा और न नकारा बजानेवाले रहे। इसलिये नक्कारखाना व्यर्थ हो रहा था। सरकार ने उसे गिराकर पत्थर बेच डाले। केवल दरवाजा बच रहा। हाथी भी न रहे। हाँ, पोल नाम बाकी है। जामः मस्जिद उसके ठीक सामने है। फतहपुर सीकरी के हथिया पोल में हाथी हैं, पर उनके सूँड़ टूट गए हैं। दुःख है कि मेहराब का आनंद न रह गया।

हुमायूँ का मकबरा—सन् ९९७ हि० में दिल्ली में जमना के किनारे मिरजा गयास के प्रबंध से आठ नौ वर्ष के परिश्रम से तैयार हुआ था। यह भी बिलकुल पत्थर का बना है। इसकी गुलकारी और बेल बूटों के लिये पहाड़ों ने अपने कलेजे के टुकड़े काटकर भेजे और कारीगरों ने कारीगरी की जगह जादूगरी खर्च की। अब तक देखनेवालों की आँखें पथरा जाती हैं, पर आश्चर्य की आँखें नहीं थकतीं।

अजमेर की इमारतें—सन् ९७७ हि० में पहले सलीम का जन्म हुआ था और तब मुराद पैदा हुआ था। बादशाह धन्यवाद देने और मन्नत उतारने के लिये अजमेर गया था। शहर के चारों ओर दीवार बनवाई। अमीरों को आज्ञा हुई कि तुम लोग भी अच्छी अच्छी और विशाल इमारतें बनवाओ। सब लोगों ने आज्ञा का पालन किया। बादशाह के महल पूर्व की ओर बने थे। तीन वर्ष में सब इमारतें तैयार हो गईं।

शुक्र तलाब—खुसरो की कृपा से इसका नाम शकर तालाब हो गया। इसकी कहानी भी सुनने ही योग्य है। जब शाहजादा

मुराद के जन्म के संबंध में धन्यवाद देकर अकबर अजमेर से लौट रहा था, तब नागौर के रास्ते आया था। इसी स्थान पर डेरे पड़े हुए थे। नगर-निवासियों ने आकर निवेदन किया कि यह सूखा देश है और सर्वसाधारण का निर्वाह केवल दो तालाबों से होता है। एक गीलानी तलाव है और दूसरा शम्स तलाव, जिसे कूकर तलाव कहते हैं और जो बंद पड़ा है। बादशाह ने उसकी नाप जोख कराकर उसकी सफाई का भार अमीरों में बाँट दिया और वहीं ठहर गया। थोड़े ही दिनों में तालाब साफ होकर कटोरे की तरह छलकने लगा और उसका नाम शकर तलाव रखा गया। पहले लोग इसे कूकर तलाव इसलिये कहते थे कि किसी व्यापारी के पास एक बहुत अच्छा कुत्ता था, जिसे वह बहुत प्यार करता था। एक बार उसे कुछ ऐसी आवश्यकता पड़ी कि उसे एक आदमी के पास गिरों रख दिया। जब थोड़े दिनों के बाद उसपर ईश्वर की कृपा हुई और उसके हाथ में धन-संपत्ति आ गई, तब वह अपने कुत्ते को लेने चला। संयोगवश कुत्ता भी अपने स्वामी के प्रेम में विह्वल होकर उसी की ओर चला आ रहा था। इसी स्थान पर दोनों मिले। कुत्ते ने अपने स्वामी को देखते ही पहचान लिया और दुम हिला हिलाकर उसके पैरों में लोटना आरंभ कर दिया। वह यहाँ तक प्रसन्न हुआ कि उसी प्रसन्नता में उसके प्राण निकल गए। व्यापारी के मन में जितना प्रेम था, उससे कहीं अधिक साहस और हौसला था। उसने उस स्थान पर एक पक्का तालाब बनवा दिया, जो आज तक उसके साहस और कुत्ते के प्रेम का साक्षी है।

कूएँ और मीनारें—अकबर ने संकल्प किया था कि मैं प्रति वर्ष एक बार दर्शनों के लिये अजमेर जाया करूँगा। सन् ९८१ हि० में आगरे से अजमेर तक एक एक मील पर कूआँ और मीनार बनवाई। उस समय तक उसने जितने हिरनों का शिकार किया था, उन सब के सींग जमा थे। हर मीनार पर उनमें के बहुत से सींग लगवा दिए कि यह भी एक स्मृति-चिह्न रहे। मुल्ला साहब इसको तारीख कहकर लिखते

हैं कि यदि इनके बदले में बाग या सराएँ बनवाई जातीं, तो उनसे लाभ भी होता। आजाद कहता है कि क्या अच्छा होता कि जितना धन इनके बनवाने में लगा था, वह सब मुल्ला साहब को ही दे देते। यदि उस समय पंजाब यूनिवर्सिटी होती, तो डेपुटेशन लेकर पहुँचती कि सब इन्हीं को दे दो।

इबादत खाना या उपासना मंदिर—यह सन् ९८१ हि० में फतहपुर सीकरी में बनकर तैयार हुआ था। विवरण के लिये देखिए पृ० १७१।

इलाहाबाद—पयाग में गंगा और यमुना दोनों बहनें गले मिलती हैं। भला जिस स्थान पर दो नदियाँ प्रेमपूर्वक मिलती हों, वहाँ पानी के जोर का क्या कहना है। यह हिंदुओं का एक प्रधान तीर्थ स्थान है। यहाँ बहुत से लोग यात्रा और स्नान के विचार से आते हैं और मुक्ति पाने के लिये प्राण देते हैं। सन् ९८१ हि० में अकबर पटने पर आक्रमण करने के लिये जा रहा था। प्रयाग पहुँचकर उसने आज्ञा दी कि यहाँ भी आगरे के किले के ढंग पर एक बहुत बढ़िया और विशाल किला बने और इसमें यह विशेषता हो कि यह चार किलों में विभक्त हो। प्रत्येक किले में अच्छे अच्छे मकान, महल और कोठे बनें। पहला किला ठीक वहाँ हो, जहाँ दोनों नदियों की टक्कर है। इसमें बारह ऐसे बाग हों, जिनमें से प्रत्येक में कई कई विशाल भवन और महल हों। इसमें स्वयं बादशाह के रहने के महल, शाहजादों और बेगमों के रहने के महल, बादशाह के संबंधियों और वंशवालों के रहने के महल, और पार्श्ववर्तियों तथा सेवकों के रहने के मकान बनें। बुद्धिमान् कारीगरों ने नक्शे आदि बनाने में बहुत बुद्धिमत्ता दिखाई और एक कोस लंबी, चालीस गज चौड़ी तथा चालीस गज ऊँची दीवार बाँधकर उसके घेरे में इमारतें खड़ी कर दीं। सन् २८ जलूसी में इमारत का काम पूरा हुआ था। फिर वह इलाहाबाद से अल्लाह-बास हो गया। विचार हुआ कि यहाँ राजधानी रखी जाय।

अमीरों ने भी अच्छी अच्छी इमारतें बनवाई थीं। शहर की आबादी और संपन्नता बहुत बढ़ गई। टकसाल का भी वहाँ सिक्का बैठा।

इन्हीं दिनों में चौकीनवीसी का भी नियम बना। कुछ विश्वसनीय मनसबदार थे, जो बारी बारी से हाजिर होते थे और नित्य प्रति क्षण क्षण भर की आज्ञाएँ लिखते रहते थे। वे चौकीनवीस कहलाते थे। अमीर, मनसबदार, अहदी आदि जो सेवा में उपस्थित रहते थे, उनकी ये लोग हाजिरी लिखा करते थे। इनके वेतन आदि के संबंध में खजाने के नाम पर जो प्रमाणपत्र या चिट्ठियाँ आदि होती थीं, वे सब इन्हीं के हस्ताक्षर और प्रमाण से होती थीं। मुहम्मद शरीफ और मुहम्मद नफीस भी इन्हीं लोगों में थे। इन लोगों की योग्यता भी बहुत थी और इनपर अकबर की कृपा-दृष्टि भी यथेष्ट थी। इसीलिये ये लोग सेवा में उपस्थित भी बहुत अधिक रहते थे। मुहम्मद शरीफ तो शेख अब्दुलफजल के बड़े मित्रों में से भी थे। अब्दुलफजल के लिखे हुए पत्रों के दूसरे भाग में इनके नाम लिखे हुए भी कई पत्र हैं; और मानसिंह आदि अमीरों के पत्रों में इनकी सिफारिश भी बहुत की है। फिर मुल्ला साहब का इनपर भी नाराज होना उचित ही है।

तारागढ़ का किला—इसी साल जब अकबर दर्शनों के लिये अजमेर गया था, तब उसने वहाँ हजरत सैयद हुसैन के मजार पर इमारतें और उनके चारों ओर प्राकार बनवाया था।

मनोहरपुर—अंबर[1] नामक नगर में एक बार अकबर का लश्कर उतरा था। मालूम हुआ कि यहाँ से पास ही मुलथान नामक एक प्राचीन नगर के खँडहर पड़े हैं और मिट्टी के टीले

---

१ शेख अब्दुलफजल ने अकबरनामे में इसे अंबरसर और मुल्ला साहब ने अंबर लिखा है। मुल्ला साहब कहते हैं कि अंबर के पास मुलतान में खेमे पड़े। मालूम हुआ कि पुराना नगर बहुत दिनों से उजाड़ पड़ा है। अकबर उसे फिर से बसाने की सब व्यवस्था करके तब वहाँ से चला था।

उसका इतिहास सुना रहे हैं। अकबर ने जाकर देखा; आज्ञा दी कि यहाँ प्राकार, दरवाजे और बाग आदि तैयार हों। सब काम अमीरों में बँट गए और इमारत के काम में बहुत ताकीद हुई। हद है कि आठ दिन में कुछ से कुछ हो गया और उसमें प्रजा बस गई! साँभर के हाकिम राय लूणकरण के पुत्र राय मनोहर के नाम पर इसका नाम मनोहपुर रखा गया। मुल्ला साहब कहते हैं कि इन कुँअर पर अकबर की बहुत कृपा-दृष्टि रहती थी। ये सलीम के बाल्यावस्था के मित्र थे और उन्हीं के साथ खेल कूदकर बड़े हुए थे। शायरी भी अच्छी करते थे और उसमें अपना उपनाम "तौसिनी" रखते थे। बहुत ही योग्य और सब विषयों में न्यायप्रिय थे। लोग इन्हें राय मिरजा मनोहर कहते थे।

अटक का किला—जब मिरजा मुहम्मद, हकीम मिरजावाला युद्ध जीतकर काबुल से अकबर लौटा, तब अटक के घाट पर ठहरा था। पहले जाते समय ही यह विचार हो गया था कि यहाँ पर एक बहुत बड़ा किला बनवाया जाय। सन् ९९० हि० १४ खोरदाद को दोपहर के समय दो घड़ी बजने पर स्वयं अकबर ने अपने हाथ से इसकी नींव की ईंट रखी थी। बंगाल में एक कटक है, जो कटक बनारस कहलाता है, उसी के जोड़ पर इसका नाम बनारस रखा। ख्वाजा शम्सुद्दीन खाफी इन्हीं दिनों बंगाल से लौटकर आए थे। उन्हीं के प्रबंध से यह किला बना। अटक के किनारे पर दो प्रसिद्ध पत्थर हैं, जो जलाला और कमाला कहलाते हैं। इन दोनों का यह नामकरण अकबर ने ही किया था। कैसे बरकतवाले लोग थे। मन में जो मौज आई, वही सब लोगों की जबान पर चल पड़ी।

हकीमअली का हौज—सन् १००२ हि० में हकीमअली ने लाहौर में एक हौज बनाया था, जो पानी से लबालब भरा हुआ था। यह बीस गज लंबा, बीस गज चौड़ा और तीन गज गहरा था। बीच में पत्थर का एक कमरा था, जिसकी छत पर एक ऊँचा मीनार था। कमरे

के चारों ओर चार पुल थे। इसमें विशेषता यह थी कि कमरे के दरवाजे खुले रहते थे, पर उसके अंदर पानी नहीं जाता था। सात बरस पहले फतहपुर में एक हकीम ने इसी प्रकार का एक हौज बनाने का दावा किया था। वहीं सब सामान बनवाया था। पर उसका उद्योग सफल न हुआ। अंत में वह कहीं गोता मार गया। इस योग्य हकीम ने कहा और कर दिखाया। मीर हैदर मअमाई ने इसकी तारीख कही थी—"हौज हकीम अली।" बादशाह भी इसकी सैर करने के लिये आया था। उसने सुन रखा था कि जो कोई इसके अंदर जाता है, वह बहुत ढूँढने पर भी रास्ता नहीं पाता। दम घुटने के कारण घबराता है और बाहर निकल आता है। स्वयं अकबर ने कपड़े उतारकर गोता मारा और अंदर जाकर सब हाल मालूम किया। शुभचिंतक बहुत घबराए। जब अकबर लौटकर बाहर आया, तब सब लोगों की जान में जान आई। जहाँगीर ने सन् १०१६ हि० में लिखा है कि आज मैं आगरे में हकीम अली के घर उसके हौज का तमाशा देखने के लिये गया था। यह वैसा ही है, जैसा उसने पिता जी के समय में लाहौर में बनाया था। मैं अपने साथ कुछ ऐसे मुसाहबों को ले गया था, जिन्होंने उसे पहले देखा था। यह छः गज लंबा और छः गज चौड़ा है। बीच में एक कमरा है, जिसमें यथेष्ट प्रकाश है। रास्ता इसी हौज में से होकर है; पर पानी रास्ते से अंदर नहीं जाता। कमरे में दस बारह आदमी आराम से बैठ सकते हैं।

अनूप तालाब—सन् ९८६ हि० में अकबर सब लोगों को साथ लेकर फतहपुर से मेरे की ओर शिकार खेलने के लिये चला। आज्ञा दी कि हौज साफ करके सब प्रकार के सिक्कों से लबालब भर दो। हम छोटे से बड़े तक सब को इससे लाभ पहुँचावेंगे। मुल्ला साहब कहते हैं कि इसे पैसों से भरवाया था। यह बीस गज लंबा, बीस गज चौड़ा और दो पुरसा गहरा था। लाल पत्थर की इमारत थी। कुछ दिनों बाद मार्ग में राजा टोडरमल ने निवेदन किया कि

हौज में सत्रह करोड़ डाले जा चुके हैं, पर वह अभी तक भरा नहीं है। आज्ञा दी कि जब तक हम पहुँचें, तब तक इसे लबालब भर दो। जिस दिन तैयार हुआ, उस दिन स्वयं अकबर उसके तट पर आया। ईश्वर को धन्यवाद दिया। पहले एक अशर्फी, एक रुपया और एक पैसा आप उठाया; फिर इसी प्रकार दरबार के अमीरों को प्रदान किया। अब्बुलफजल लिखते हैं कि शिगरफनामे के लेखक (अब्बुल-फजल ?) ने भी इस सार्वजनिक परोपकार के कार्य से लाभ उठाया। फिर मुट्ठियाँ भर भरकर लोगों को दीं और झोलियाँ भर भरकर लोग ले गए। सब लोगों ने बरकत समझकर और जंतर के समान रखा। जिस घर में रहा, उसमें कभी रुपए का तोड़ा न हुआ।

मुल्ला साहब कहते हैं कि शेख संकू नामक एक कौवाल था, जो सूफियों का सा ढंग रखता था। जौनपुर-वाले शेख अदहन के शिष्यों में से था। इन्हीं दिनों उसे इस हौज के किनारे बुलवाया। उसका गाना सुनकर अकबर बहुत प्रसन्न हुआ। तानसेन और अच्छे अच्छे गवैयों को बुलवाकर सुनवाया और कहा कि इसकी खूबी तक तुम लोगों में से एक भी नहीं पहुँचता। फिर उससे कहा कि संकू! जा, इसमें का सारा धन तू ही उठा ले जा। भला वह इतना बोझ क्या उठा सकता था! निवेदन किया कि हुजूर यह आज्ञा दें कि मुझ से जितना धन उठ सके, उतना मैं उठा ले जाऊँ। अकबर ने मान लिया। बेचारा लगभग हजार, रुपए के टके बाँध ले गया। तीन बरस में इसी प्रकार लुटाकर हौज खाली कर दिया। मुल्ला साहब को बहुत दुःख हुआ। (हजरत आजाद कहते हैं) मैंने एक पुरानी तसवीर देखी थी। अकबर इस तालाब के किनारे बैठा है। बीरबल आदि कुछ अमीर उपस्थित हैं। कुछ पुरुष, कुछ स्त्रियाँ, कुछ लड़कियाँ पनहारियों की भाँति उसमें से घड़े भर भरकर ले जा रही हैं। जो लोग दान की बहार देखनेवाले हैं, उनके लिये यह भी एक तमाशा है। जहाँगीर ने तुजुक में लिखा है कि यह छत्तीस गज लंबा, छत्तीस गज चौड़ा और साढ़े

चार गज गहरा था। ३४, ४८, ४६, ००० दाम या १६, ७१, ४०० रुपए की नकदी इससें पाई थी। रुपए और पैसे मिले हुए थे। जिन दरिद्रों को आवश्यकता होती थी, वे बहुत दिनों तक आया करते थे और इस हौज में से धन लेकर अपनी आर्थिक प्यास बुझाया करते थे। आश्चर्य वह है कि जहाँगीर ने कपूर तलाव नाम लिखा है।

अकबर की कविता

प्रकृति के दरबार से अकबर अपने साथ बहुत से गुण लाया था। उनमें से एक गुण यह भी था कि उसकी तबीयत कविता के लिये बहुत ही उपयुक्त थी। इसी कारण कभी कभी उसकी जबान से कुछ शेर भी निकल आया करते थे। यह भी मालूम होता है कि पुस्तकों में इसके नाम से जो शेर लिखे हैं, वे इसी के कहे हुए हैं, क्योंकि यदि वह काव्य-जगत् में केवल प्रसिद्धि का ही इच्छुक होता, तो हजारों ऐसे कवि थे, जो पोथे के पोथे तैयार कर देते। पर जब उसके नाम के थोड़े से ही शेर मिलते हैं, तब यही मानना पड़ेगा कि यह उसके मन की तरंग ही थी, जो कभी कभी किसी उपयुक्त अवसर पर प्रकट हो जाती थी। यह संभव है कि किसी ने उसके कुछ शब्दों में कुछ परिवर्तन या सुधार कर दिए हों। उसकी काव्यप्रिय प्रकृति का कुछ अनुमान कर लो।

[1] گریه کردم ز غمت موجب خوشحالی شد ×
ریختم خون دل از دیده دلم خالی شد ×

[2] دوشینه بکوی می فروشان × پیمانهٔ می بزر خریدم ×
اکنون ز خمار سر گرانم × زر دادم و درد سر خریدم ×

---

१ दुःख में पड़कर मेरा रोना भी मेरी प्रसन्नता का कारण हो गया। हृदय का रक्त आँखों के मार्ग से निकल गया और हृदय बोझ से खाली हो गया।

२ मद्य-विक्रेताओं की वीथी में जाकर मैंने धन देकर मद्य का प्याला खरीदा। उसके खुमार के कारण अब तक सिर भारी है। मैंने धन देकर सिर का दर्द मोल लिया।

सन् ९९७ हि० में अकबर अपने लश्कर और अमीरों को साथ लेकर काश्मीर की सैर करने के लिये गया था। अपनी बेगमों को भी उसने अपने साथ ले लिया, जिसमें वे भी इस प्राकृतिक उपवन की शोभा देखकर प्रसन्न हों। वह स्वयं अपने कुछ विशिष्ट अमीरों और मुसाहबों को साथ लेकर आगे बढ़ गया था। श्रीनगर में पहुँचकर उसे ध्यान हुआ कि यदि मरियम मकानी के श्रीचरण भी साथ हों, तो बहुत ही शुभ है। शेख को आज्ञा दी कि एक निवेदनपत्र लिखो। वह लिख रहे थे, इतने में कहा कि इस निवेदनपत्र में यह भी लिख दो—

[1] حاجی بسوئے کعبہ رود از برائے حج ×
یا رب بودکہ کعبہ بیائد بسوے ما ×

अकबर के समय की विलक्षण घटनाएँ

बक्सर में रावत टीका नाम का एक व्यक्ति था। किसी शत्रु ने अवसर पाकर उसे मार डाला। रावत को दो घाव लगे थे, एक पीठ पर, दूसरा कान के नीचे। कुछ दिनों के उपरांत उसके एक संबंधी के घर में एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसके शरीर में इन दोनों स्थानों में उसी प्रकार के घाव के चिह्न थे। लोगों में इस बात की चर्चा हुई। जब वह बालक बड़ा हुआ, तब वह भी उस हत्या के संबंध में अनेक प्रकार की बातें कहने लगा; बल्कि उसने कुछ ऐसे ऐसे चिन्ह और पते बतलाए, जिन्हें सुनकर सब लोग चकित हो गए। अकबर को तो ऐसे ऐसे अन्वेषणों से परम प्रेम था ही। उसने उसे बुलाकर सब हाल पूछा। लोग कहते हैं कि अकबर ने उसका दूसरी बार जन्म लेना मान

---

१ हाजी लोग हज करने के लिये काबे की ओर जाते हैं। हे ईश्वर! ऐसा हो कि काबा ही मेरी ओर आ जाय।

इसमें विशेषता यह है कि काबा शब्द श्लिष्ट है। उसका एक अर्थ मुसलमानों का प्रसिद्ध तीर्थ और दूसरा पूज्य व्यक्ति (माता-पिता, आदि) है।

सी लिया था। पर अकबरनामे में लिखा है कि बादशाह ने कहा कि यदि घाव लगे थे, तो रावत के शरीर पर लगे थे; उसकी आत्मा पर नहीं लगे थे। इस शरीर में यदि आई है, तो उसकी आत्मा पर नहीं लगे थे। इस शरीर में यदि आई है, तो उसकी आत्मा आई है। फिर इसके शरीर पर घावों के प्रकट होने का क्या अर्थ है? उसी अवसर पर अकबर ने अपनी माता के संबंध की घटना कह सुनाई। (दे० पृ० ५)

कुछ लोग एक अंधे को अकबर के पास लाए। वह अपनी बगल में से बोलता था। जो कुछ उससे पूछा जाता था, वह बगल में हाथ देकर वहीं से उसका उत्तर देता था और बगल से ही शेर आदि भी पढ़ता था। उसने अभ्यास करके यह गुण प्राप्त किया था।

एक बार अकबराबाद के आस पास एक विद्रोह हुआ था। वह विद्रोह शांत करने के लिये अकबर की सेना वहाँ गई थी। वहाँ लड़ाई हुई। बादशाह के लश्कर में दो भाई थे, जो यमज थे। वे जाति के खत्री थे और इलाहाबाद के रहनेवाले थे। वे यमज तो थे ही, इसलिये उन दोनों की आकृति आपस में बहुत अधिक मिलती थी। उनमें से एक मारा गया। युद्ध हो रहा था, इसलिये दूसरा भाई वहीं उपस्थित था। निहत का शव घर आया। दोनों भाइयों की स्त्रियाँ वह शव लेकर मरने के लिये तैयार हुई। एक कहती थी कि यह मेरे पति का शव है, दूसरी कहती थी कि यह मेरे पति का शव है। यह झगड़ा पहले कोतवाल के पास और वहाँ से दरबार में गया। बड़ा भाई कुछ क्षण पहले उत्पन्न हुआ था। उसकी स्त्री आगे बढ़ी और निवेदन करने लगी कि हुजूर, मेरे पति का दस वर्ष का पुत्र मर गया था और उसे उसके मरने का बहुत अधिक दुःख हुआ था। इस शव का कलेजा चीरकर देखिए। यदि इसके कलेजे में दाग या छेद हो, तो समझिएगा कि यह उसी का शव है; और नहीं तो यह वह नहीं है। उसी समय जर्राह उपस्थित हुए। उसकी छाती चीरकर देखी, तो उसमें तीर के घाव का सा

छेद था। सब लोग देखकर चकित हो गए। अकबर ने कहा कि तुम सच्ची हो। अब सती होने न होने का अधिकार तुम्हें है।

एक मनुष्य लाया गया था, जिसमें पुरुष और स्त्री दोनों के चिह्न थे। मुल्ला साहब कहते हैं कि वह पुस्तकालय के पास लाकर बैठाया गया था। वहीं बैठकर हम पुस्तकों का अनुवाद किया करते थे। जब इस बात की चर्चा हुई, तब हम भी उसे देखने के लिये गए थे। वह एक हलालखोर था। चादर ओढ़े और घूँघट काढ़े बैठा हुआ था। वह लज्जित सा था और मुँह से कुछ बोलता नहीं था। मुल्ला साहब बिना कुछ देखे मन ही मन ईश्वर की महिमा के कायल होकर चले आए।

सन् ९९० हि० में लोग एक आदमी को लाए थे, जिसके न कान थे और न कानों के छेद थे। गाल और कनपटियाँ बिलकुल साफ और बराबर थीं; पर वह हर एक बात ठीक ठीक सुनता था।

एक नवजात शिशु का सिर उसके शरीर की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ने लगा। अकबर को समाचार मिला। उसने बुलाकर देखा और कहा कि चमड़े की एक चुस्त टोपी बनवाओ और इसे पहनाओ। दिन रात में कभी क्षण भर के लिये भी सिर से न उतारो। ऐसा ही किया गया। थोड़े ही दिनों में सिर का बढ़ाव रुक गया।

सन् १००७ हि० में अकबर आसीर के युद्ध के लिये स्वयं सेना लेकर चला था। हाथियों का मंडल, जो उसकी सवारी का एक प्रधान और बहुत बड़ा अंग था, नदी के पार उतरा। फीलवानों ने देखा कि स्वयं बादशाह की सवारी के हाथी की जंजरी सोने की हो गई। फीलखाने के दारोगा को सूचना दी गई। उसने स्वयं आकर देखा। अकबर को भी समाचार दिया गया। उसने जंजीर मँगाकर देखी, चाशनी ली। सब तरह से उसे ठीक पाया। बहुत कुछ वादविवाद के उपरांत यह सिद्धांत स्थिर हुआ कि नदी में किसी स्थान पर पारस पत्थर होगा। यही समझकर हाथियों को फिर उसी घाट और उसी मार्ग से कई बार आर पार ले गए, पर कुछ भी न हुआ।

मुल्ला साहब सन् ९६३ हि० के हाल लिखते हुए कहते हैं कि बादशाह ने खानजमाँवाले अंतिम युद्ध के लिये प्रस्थान किया। मैं भी हुसेन खाँ के साथ साथ चल रहा था। हुसेन खाँ हरावल में मिलकर शाही आज्ञा का पालन करने के लिये आगे बढ़ गया। मैं शम्साबाद में रह गया। एक यह विलक्षण बात मालूम हुई कि हमारे पहुँचने के कई दिन पहले धोबी का एक छोटा बच्चा रात के समय चबूतरे पर सोया हुआ था। करवट बदलने में वह पानी में जा पड़ा। नदी का बहाव उसे दस कोस तक सकुशल ले गया और वह भोजपुर पहुँच कर किनारे लगा। वहाँ भी किसी धोबी ने ही उसे देखकर निकाला। वह भी इन्हीं का भाई-बंद था। उसने पहचाना और सवेरे उसके माता-पिता के पास पहुँचा दिया।

स्वभाव और समय-विभाग

अकबर की प्रकृति या स्वभाव में सदा परिवर्तन होता रहा। बाल्यावस्था में पढ़ने लिखने का समय था, पर वह समय उसने कबूतर उड़ाने में बिताया। जब कुछ और सयाना हुआ, तब कुत्ते दौड़ाने लगा। और बड़ा होने पर घोड़े दौड़ाने और बाज उड़ाने लगा। जब युवावस्था उसके लिये राजकीय मुकुट लेकर आई, तब उसे बैरम खाँ बुद्धिमान् मंत्री मिल गया। अतः अकबर सैर-शिकार और शराब-कबाब का आनंद लेने लग गया। पर प्रत्येक दशा में उसका हृदय धार्मिक विश्वास से प्रकाशमान था। वह सदा बड़े बड़े महात्माओं पर श्रद्धा और भक्ति रखता था। बाल्यावस्था से ही उसकी नीयत अच्छी रहती थी और वह सदा सब पर दया किया करता था। युवावस्था के आरंभ में तो उसका धार्मिक विश्वास यहाँ तक बढ़ गया था कि कभी कभी अपने हाथों से मसजिद में झाड़ू दिया करता था और नमाज के लिये आप ही अजान कहता था। यद्यपि वह स्वयं कुछ पढ़ा लिखा नहीं था, तथापि उसे विद्या-संबंधी बातचीत करने और विद्वानों की

संगति में रहने का इतना अधिक शौक था कि उससे अधिक हो ही नहीं सकता। यद्यपि उसे सदा युद्ध और आक्रमण करने पड़ते थे, राज्य की व्यवथा के भी बहुत से काम लगे रहते थे, सवारी-शिकारी भी बराबर होती रहती थी, तथापि वह विद्याप्रेमी विद्या संबंधी चर्चा, वादविवाद और ग्रंथ आदि सुनने के लिये समय निकाल ही लेता था। उसका यह अनुराग किसी एक धर्म या विद्या तक ही परिमित न था। सब प्रकार की विद्याएँ और गुण उसके लिये समान थे। बीस वर्ष तक दीवानी और फौजदारी, बल्कि साम्राज्य के मुकदमे भी शरअ के ज्ञाता विद्वानों के हाथ में रहे। पर जब उसने देखा कि इन लोगों की अयोग्यता और मूर्खतापूर्ण जबरदस्ती साम्राज्य की उन्नति में बाधक है, तब उसने स्वयं सब काम सँभाला। उस समय वह जो कुछ करता था, वह सब अनुभवी अमीरों और समझदार विद्वानों के परामर्श से करता था। जब कोई बड़ी समस्या उपस्थित होती थी, या किसी समस्या में कोई नई बात निकल आती थी, साम्राज्य में कोई नई व्यवस्था प्रचलित होती थी, अथवा किसी पुरानी व्यवस्था में कोई नया सुधार होता था, तब वह अपने सब अमीरों को एकत्र करता था। सब लोगों की संमतियाँ बिना किसी प्रकार की रोक टोक के सुना करता था और अपनी संमति भी कह सुनाता था; और जब सब लोग परामर्श दे चुकते थे और सब की संमति मिल जाती थी, तब कोई काम होता था। इसका नाम "मजलिस कंगाश" था।

संध्या को थोड़ी देर तक विश्राम करने के उपरांत वह विद्वानों और पंडितों की सभा में आता था। यहाँ किसी विशिष्ट धर्म के अनुयायी होने का कोई प्रश्न नहीं था। सब धर्मों के विद्वान् एकत्र हुआ करते थे। इन लोगों के वाद-विवाद सुनकर वह अपना ज्ञान-भांडार बढ़ाया करता था। उसके शासन-काल में बहुत ही अच्छे अच्छे ग्रंथों की रचना हुई। इसके घंटे डेढ़ घंटे के बाद हाकिमों और दूसरे राज-

कर्मचारियों आदि की भेजी हुई अरजियाँ आदि सुनता था और प्रत्येक पर स्वयं उचित आज्ञा लिखवाया करता था। आधी रात के समय ईश्वर का ध्यान किया करता था और तब शरीर को निद्रा रूपी भोजन देने के लिये विश्राम करता था। पर वह बहुत कम सोता था और प्रायः रात भर जागता रहता था। उसकी निद्रा प्रायः तीन घंटे से अधिक न होती थी। प्रातःकाल होने से पहले ही वह जाग उठता था। आवश्यक कार्यों से निवृत्त होता था। नहा धोकर बैठता था। दो घंटे तक ईश्वर का भजन करता था और प्रातःकाल के प्रकाशों से अपना हृदय प्रकाशमान् करता था। सूर्योदय के समय दरबार में आ बैठता था। सब पार्श्ववर्ती आदि भी तड़के ही आकर सेवा में उपस्थित होते थे। उनके निवेदन आदि सुना करता था। उसके बेजबान सेवक न तो अपना दुःख कह सकते थे और न किसी सुख के लिये प्रार्थना कर सकते थे। इसलिये वह स्वयं उठकर सब के पास जाता था और उनकी आकृति आदि देखकर उनकी आवश्यकताएँ समझता और उनकी पूर्ति की व्यवस्था किया करता था। फिर घोड़ों, हाथियों, ऊँटों, हिरनों आदि पशुओं के रहने के स्थान में जाता था और तब इन सब के दूसरे कारखानों को देखता था। अनेक प्रकार के शिल्पों और कलाओं आदि के कार्यालय भी देखा करता था। हर एक बात में स्वयं अच्छे अच्छे आविष्कार और बढ़िया बढ़िया सुधार करता था। दूसरों के आविष्कारों का आदर-सत्कार उनकी योग्यता से अधिक करता था और प्रत्येक विषय में अपना इतना अधिक अनुराग प्रकट करता था कि मानों वह केवल उसी विषय का पूर्ण प्रेमी है। तोप, बंदूक आदि युद्ध की सामग्री तथा शिल्प-संबंधी अनेक प्रकार के पदार्थ बनाने में स्वयं अच्छी योग्यता रखता था।

घोड़ों और हाथियों से उसे बहुत अनुराग था। जहाँ सुनता था, ले लेता था। शेर, चीते, गेंडे, नील गाएँ, बारहसिंघे, हिरन आदि आदि हजारों जानवर बड़े परिश्रम से पाले और सधाए थे। जानवरों को

लड़ाने का बहुत शौक था। मस्त हाथी, शेर और हाथी, अरने भैंसे, गैंडे, हिरन आदि लड़ता था। चीतों से हिरनों का शिकार करता था। बाज, बहरी, जुर्रे, वाशे आदि उड़ाता था। दिल बहलाव के लिये ये सब जानवर प्रत्येक यात्रा में उसके साथ रहते थे। हाथी, घोड़े, चीते आदि जानवरों में से अनेक बहुत प्यारे थे। उनके प्यारे प्यारे नाम रखे थे, जिनसे उसकी प्रकृति की उपयुक्तता और बुद्धि की अनुकूलता झलकती थी। शिकार के लिये पागल रहता था। शेर को तलवार से मारता था, हाथी को अपने बल से वश में करता था। उसमें बहुत अधिक बल था और वह बहुत अधिक परिश्रम कर सकता था। वह जितना ही परिश्रम करता था, उतना ही प्रसन्न होता था। शिकार खेलता हुआ बीस बीस और तीस तीस कोस पैदल निकल जाता था। आगरे और फतहपुर सीकरी से अजमेर सात पड़ाव था; और प्रत्येक पड़ाव बारह बारह कोश का था। कई बार वह पैदल अजमेर गया था। अब्बुलफजल लिखते हैं कि एक बार साहस और युवावस्था के आवेश में मथुरा से पैदल शिकार खेलता हुआ चला। आगरा अठारह कोस है। तीसरे पहर वहाँ जा पहुँचा। उस दिन दो तीन आदमियों के सिवा और कोई उसका साथ न निभा सका। गुजरात के धावे का तमाशा तुम देख ही चुके हो। नदी में कभी घोड़ा डालकर, कभी हाथी पर और कभी यों ही तैरकर पार उतर जाया करता था। हाथियों की सवारी और उनके लड़ाने में विलक्षण करतब दिखलाता था (दे० पृ० १६८ और आगे 'हाथी' शीर्षक प्रकरण)। तात्पर्य यह कि कष्ट उठाने और अपनी जान जोखिम में डालने में उसे आनंद मिलता था। संकट की दशा में कभी उसकी आकृति से घबराहट नहीं जान पड़ती थी। इतना अधिक पौरुष और वीरता होने पर भी क्रोध का कहीं नाम न था; और वह सदा प्रसन्नचित्त दिखाई देता था।

इतनी अधिक संपत्ति, प्रभुता और अधिकार आदि होने पर भी उसे दिखलावे का कभी कोई ध्यान ही न होता था। वह प्रायः सिंहासन

के मारे फर्श पर ही बैठ जाया करता था; अपना स्वभाव बिलकुल सीधा सादा रखता था; सब के साथ निस्संकोच भाव से बातें करता था; प्रजा के सब दुःख सुनता था और उन दुःखों को दूर करता था; उनके साथ सद्व्यवहार और प्रेमपूर्वक बातें करता था; बहुत ही सहानुभूतिपूर्वक सब के हाल पूछता था और सब की बातों के उत्तर देता था; निर्धनों आदि का बहुत आदर करता था; और जहाँ तक हो सकता था, कभी उनका दिल न टूटने देता था। उनकी तुच्छ भेंट को धनवानों के बहुमूल्य उपहारों से अधिक प्रिय रखता था। उसकी बातें सुनने से यही जान पड़ता था कि वह अपने आप को सबसे अधिक तुच्छ समझता है। उसकी प्रत्येक बात से यह भी प्रकट होता था कि वह सदा ईश्वर पर भरोसा रखता है। उसकी प्रजा उसके साथ हार्दिक प्रेम रखती थी; पर साथ ही उनके हृदयों पर अपने सम्राट् का भय और आतंक भी छाया रहता था।

शत्रुओं के हृदयों पर उसके वीरतापूर्ण आक्रमणों तथा विजयों ने बहुत प्रभाव डाला था और उसका रोब जमा रखा था पर इतना होने पर भी वह कभी व्यर्थ और जान-बूझकर आप ही युद्ध नहीं छेड़ता था। युद्ध-क्षेत्र में वह सदा जी जान से काम करता था; पर साथ ही बुद्धि और विवेक से भी काम लिया करता था। वह सदा संधि को अपना अंतिम उद्देश्य समझता था। जब शत्रु अधीनता स्वीकृत करने लगता था, तब वह तुरंत उसका निवेदन मान लेता था और उसका देश उसके अधिकार में ही रहने देता था। जब युद्ध समाप्त होता था, तब वह अपनी राजधानी में लौट आता था और अपने राज्य को सब प्रकार से संपन्न और उन्नत करने का उद्योग करने लगता था। उसने अपने साम्राज्य की नींव इसी सिद्धांत पर रखी थी कि लोगों की प्रसन्नता और संपन्नता आदि में किसी प्रकार की बाधा न उपस्थित होने पावे—सब लोग बहुत सुखी रहें। उसके शासन काल में इंगलैंड की रानी एलिजबेथ के दरबार से फंज (फिज) साहब राजदूत होकर आए

थे। उन्होंने सब बातें देख-सुनकर जो विवरण लिखा है, वह इन्हीं बातों का दर्पण है।

दया और कृपा उसकी प्रकृति में रची हुई थी। वह किसी का दुःख नहीं देख सकता था। मांस बहुत कम खाता था; और जिस दिन उसकी बरसगाँठ होती थी, उस दिन और उससे कुछ दिन पहले तथा कुछ दिन पीछे मांस बिलकुल नहीं खाता था। उसकी आज्ञा थी कि इन दिनों में सारे राज्य में कहीं जीवहत्या न हो। यदि कहीं जीवहत्या होती थी, तो वह बिलकुल चोरी-छिप्पे होती थी। आगे चलकर उसने अपने जन्म के महीने में और उससे कुछ पहले तथा पीछे के लिये यह नियम प्रचलित कर दिया था। और इससे भी आगे चलकर यह नियम कर लिया कि अवस्था के जितने वर्ष होते थे, उतने दिन पहले और पीछे न तो मांस खाता था और न जीवहत्या होने देता था।

अली मुर्त्तजा नामक प्रसिद्ध महात्मा का कथन है कि अपने कलेजे (या हृदय) को पशुओं का कब्रिस्तान मत बनाओ। यह ईश्वरीय-रहस्यों का आगार है। अकबर प्रायः यही बात कहा करता था और इसी के अनुकूल आचरण करता था। वह कहता था कि मांस किसी वृक्ष में नहीं लगता, पृथ्वी से नहीं उगता। वह जीव के शरीर से कटकर जुदा होता है। उसे कैसा दुःख होता होगा। यदि हम मनुष्य हैं, तो हमें भी उसके दुःख से दुखी होना चाहिए। ईश्वर ने हमें हजारों अच्छे अच्छे पदार्थ दिए हैं। खाओ, पीओ और उनके स्वाद लेकर प्रसन्न हो। जीभ के जरा से स्वाद के लिये, जो पल भर से अधिक नहीं ठहरता, किसी के प्राण लेना बहुत ही मूर्खता और निर्दयता है। वह कहा करता था कि शिकार निकम्मों का काम और हत्यारेपन का अभ्यास है। निर्दय मनुष्यों ने ईश्वर के बनाए हुए जीवों को मारना एक तमाशा ठहरा लिया है। वे निरपराध मूक जीवों के प्राण लेते हैं और यह नहीं समझते कि ये प्यारी प्यारी सूरतें

और सोहनी सूरतें स्वयं उस ईश्वर की कारीगरी हैं और इनका नष्ट करना बहुत बड़ी निर्दयता है।

कुछ और भी ऐसे विशिष्ट दिन थे, जिनमें अकबर मांस बिलकुल नहीं खाता था। उसकी आयु के मध्य काल में जब गणना की गई, तब पता चला कि वर्ष में सब मिलाकर तीन महीने होते थे। धीरे धीरे छः महीने हो गए। अपनी अंतिम अवस्था में तो वह यहाँ तक कहा करता था कि जी चाहता है कि मांस खाना बिलकुल ही छोड़ दूँ। उसका आहार भी बहुत ही अल्प होता था। वह प्रायः दिन रात में एक ही बार भोजन किया करता था; और जितना थोड़ा भोजन करता था, उससे कहीं अधिक परिश्रम करता था। पीछे से उसने की प्रबंध भी त्याग दिया था; बल्कि जो कुछ किया था, उसके लिये भी वह पश्चात्ताप किया करता था।

अभिवादन

बुद्धिमान् बादशाहों और राजाओं ने अपनी अपनी समझ के अनुसार अभिवादन आदि के लिये भिन्न भिन्न नियम रखे थे। किसी देश में सिर झुकाते थे, कहीं छाती पर हाथ भी रखते थे, कहीं दोनों घुटने टेककर बैठते और झुकते थे (यह तुर्कों का नियम था) और उठ खड़े होते थे। अकबर ने यह नियम बनाया था कि अभिवादन करनेवाला सामने आकर धीरे से बैठे। सीधे हाथ से मुट्ठी बाँधकर हथेली का पिछला भाग जमीन पर टेके और धीरे से सीधा उठावे। दाहिने हाथ से तालू पकड़कर इतना झुके कि दोहरा हो जाय और एक सुंदर ढंग से दाहिनी ओर को झुका हुआ उठे। इसी को कोर्निश कहते थे। इसका अर्थ यह था कि उसका सारा जीवन अकबर पर ही निर्भर है। उसे वह हाथ पर रखकर भेंट करता है। स्वयं आज्ञा-पालन के लिये उद्यत होता है और शरीर तथा प्राण बादशाह के सपुर्द करता

है। इसी को तसूलीम भी कहते थे। अकबर ने स्वयं एक बार कहा था कि मैं बाल्यावस्था में एक दिन हुमायूँ के पास जाकर बैठा। पिता ने प्रेमपूर्वक अपना मुकुट सिर से उतारकर मेरे सिर पर रख दिया। वह मुकुट बड़ा था। ललाट पर ठीक बैठाकर और पीछे गुद्दी की ओर बढ़ाकर रख दिया। बुद्धि और आदर रूपी शिक्षक अकबर के साथ आए थे। उनके संकेत से वह अभिवादन करने के लिये उठा। दाहिने हाथ की मुट्ठी को पीठ की ओर पृथ्वी पर टेका और छाती तथा गरदन सीधी करके इस प्रकार धीरे से उठा कि शुभ मुकुट आगे आकर आँखों पर परदा न डाल दे, या वह कान पर न ढलक जाय। उसने खड़े होकर हुमा के पर और कलगी को बचाते हुए तालु पर हाथ रखा, जिसमें वह शुभ मुकुट गिर न पड़े, और वह जितना झुक सकता था, उतना झुककर उसने अभिवादन किया। उस बाल्यावस्था में यह झुककर उठना भी बहुत भला जान पड़ा था। पिता को अपने प्यारे पुत्र का अभिवादन करने का यह ढंग बहुत पसंद आया और उसने आज्ञा दी कि कोर्निश और तसूलीम इसी ढंग पर हुआ करे।

अकबर के समय में जब किसी को नौकरी, छुट्टी, जागीर, मन्सब, पुरस्कार, खिलअत, हाथी या घोड़ा मिलता था, तब वह थोड़ी थोड़ी दूर पर तीन बार तसूलीम करता हुआ पास आकर नजर करता था; और जब किसी पर और किसी प्रकार की कृपा होती थी, तब वह एक बार तसूलीम करता था। जिन लोगों को दरबार में बैठने की आज्ञा मिलती थी, वे आज्ञा मिलने पर झुककर अभिवादन करते थे, जिसे सिजदए-नियाज कहते थे। आज्ञा थी कि ऐसे अवसर पर मन में यह भाव रहे कि मैं झुककर जो यह अभिवादन कर रहा हूँ, वह ईश्वर के प्रति कर रहा हूँ। केवल ऊपर से देखनेवाले कम-समझ लोग समझते थे कि यह मनुष्य-पूजन है—मनुष्य को ईश्वर का स्थानापन्न मानकर उसका अभिवादन किया जाता है। यद्यपि अकबर की आज्ञा थी कि ऐसे अभिवादन के समय मन में

सेवा नहीं, बल्कि ईश्वर का ध्यान रहे, पर फिर भी इस प्रकार के अभिवादन के लिये कोई सार्वजनिक आज्ञा नहीं थी। सब लोग सब अवसरों पर ऐसा अभिवादन नहीं कर सकते थे। यहाँ तक कि दरबार आम या सार्वजनिक दरबार में विशिष्ट कृपापात्रों को भी इस प्रकार अभिवादन न करने की आज्ञा थी। यदि कोई इस प्रकार का अभि-वादन करता था, तो अकबर रुष्ट होता था।

जहाँगीर के समय में किसी बात की परवाह नहीं थी; इसलिये प्रायः यही प्रथा प्रचलित रही।

शाहजहान के शासन काल में पहली आज्ञा यही हुई कि इस प्रकार का सिजदा बंद हो, क्योंकि ऐसा सिजदा धार्मिक दृष्टि से एक ईश्वर को छोड़कर और किसी के लिये उचित नहीं है। महाबतखाँ सेनापति ने कहा कि बादशाह के अभिवादन में और साधारण धनवानों के अभिवादन में कुछ न कुछ अंतर होना आवश्यक है। यदि लोग सिजदा करने के बदले जमीन चूमा करें तो अच्छा हो, जिसमें स्वामी और सेवक, राजा और प्रजा का संबंध नियमबद्ध रहे। निश्चय हुआ कि अभिवादन करनेवाले दोनों हाथों को जमीन पर टेककर अपने हाथ का पिछला भाग चूमा करें। कुछ सतर्क लोगों ने कहा कि इसमें भी सिजदे का कुछ रूप निकल आता है। राज्यारोहण के दसवें वर्ष यह भी बंद हो गया और इसके बदले में चौथी तसलीम और बढ़ा दी गई। शेख, सैयद और विद्वान् आदि सेवा में उपस्थित होने के समय वही सलाम करते थे, जो शरअ़ से अनुमोदित है और चलने के समय फातहा पढ़कर दुआ देते थे। जान पड़ता है कि यह तुर्किस्तान की प्राचीन प्रथा है; क्योंकि वहाँ अब भी यही प्रथा प्रचलित है। बल्कि साधारणतः सभी प्रकार की संगतियों में और सभी भेंटों में यही ढंग बरता जाता है।

प्रताप

संसार में प्रायः देखा जाता है कि जब प्रभुता और प्रताप किसी की ओर झुक पड़ते हैं, तब ऐंद्रजालिक जगत् को भी मात कर देते हैं। उस समय वह जो चाहता है, वही होता है। उसके मुँह से जो निकलता है, वह हो जाता है। अकबर के शासन-काल में भी इस प्रकार की अनेक बातें देखने में आई थीं। शासन-संबंधी समस्याओं और देशों की विजयों के अतिरिक्त उसके साहस आदि से संबंध रखनेवाली सब बातें भी उसके परम प्रताप के ही कारण थीं। बहुत से विषयों में जो कुछ आरंभ में कह दिया, अंत में वही हुआ। यदि ऐसी बातों की सूची बनाई जाय, तो बहुत बड़ी हो जाय; इसलिये उदाहरण के रूप में केवल दो एक बातें लिखी जाती हैं।

सन् ३७ जलूसी में अकबर ने काजी नूर उल्ला शस्तरी को काश्मीर के महालों की जमाबंदी के लिये भेजा। वे बहुत ही विद्वान्, बुद्धिमान् और ईमानदार थे। काश्मीर के राजकर्मचारियों को भय हुआ कि अब हमारे सब भेद खुल जायँगे। उन्होंने आपस में परामर्श किया। बादशाह भी लाहौर से उसी ओर जानेवाला था। काश्मीर का सूबेदार मिरजा यूसुफ खाँ स्वागत के लिये इधर आया और उसका संबंधी मिरजा यादगार, जो उसका सहकारी भी था, वहीं रहा। लोगों ने उसे विद्रोह करने पर उद्यत कर लिया और कहा कि यहाँ का रास्ता बहुत ही बीहड़ है; यह देश बहुत ठंडा है; युद्ध की बहुत सी सामग्री भी यहाँ उपस्थित है। यह कोई ऐसा देश नहीं है कि जहाँ हिंदुस्तान का लश्कर आवे और आते ही जीत ले। वह भी इन लोगों की बातों में आ गया और उसने विद्रोही होकर शाही ताज अपने सिर पर रख लिया।

दरबार में किसी को इन सब बातों का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था। अकबर ने लाहौर से कूच किया। रावी नदी पार करते समय उसने

यों ही किसी मुसाहब से पूछा कि कवि ने यह कविता किस गंजे के संबंध में कही थी—

کلاه[1] خسروی و تاج شاهی × بہرکل کے رسد حاشا و کلا ×

तमाशा यह हुआ कि मिरज़ा यादगार सिर से गंजा निकला !

जब लश्कर चनाब के किनारे पहुँचा, तब इस विद्रोह का समाचार मिला। अकबर की जबान से निकला—

ولدالزناست[2] حاسد منم آنکہ طالع من ×
ولدالزناکش آمد چو ستارہ یمانی ×

इसमें मजे की बात यह है कि यादगार का जन्म तुकरा नामक एक कंचनी के गर्भ से हुआ था; और यह भी पता नहीं था कि उसका पिता कौन था। अकबर ने यह भी कहा था कि वह दासीपुत्र मेरे मुकाबले पर आया है, सो मरने के लिये ही आया है। शेख अब्दुल-फजल ने दीवान हाफिज में फाल (शकुन) देखी, तो यह शेर निकला—

آں[3] خوشخبر کجاست کزیں فتح مژدہ دارد ×
تاجاں فشانمش چو زر و سیم در قدم ×

---

१ खुसरो की टोपी और राजमुकुट हर किसी को सहज में, अचानक और सहसा नहीं मिलता।

(खुसरो फारस का एक प्रसिद्ध प्रतापी और बहुत बड़ा बादशाह था। वह मुकुट की जगह "कुलाह" नाम की एक प्रकार की टोपी ही पहना करता था।)

२ मेरा प्रतिस्पर्धी हराम से उत्पन्न या हरामी है। और मैं वह आदमी हूँ कि मेरा भाग्य हरामियों को यमन के सितारे की भाँति मार डालनेवाला है।

(कहते हैं कि एक सितारा है जो केवल यमन देश में उगता है, और उसके उगने से हत्याएँ और रक्तपात आदि उत्पात होते हैं।)

३ वह सुसमाचार लानेवाला कहाँ है, जो विजय का सुसमाचार लाता है। ताकि मैं उसके पैरों पर अपने प्राण सोने और चाँदी की भाँति निछावर करूँ।

एक और विलक्षण बात यह थी कि जब यादगार का खुतबा पढ़ा गया था, तब उसे ऐसी थरथरी चढ़ी कि मानों ज्वर चढ़ रहा हो; और जब मोहर बनानेवाला उसके सिक्के की मोहर खोदने लगा, तब लोहे की एक कनी उसकी आँख में जा पड़ी, जिससे आँख बेकाम हो गई। अकबर ने यह भी कहा था कि देखना, जो लोग इसके विद्रोह में संमिलित हुए हैं, उन्हीं में से कोई इस गंजे का सिर काट लावेगा। ईश्वर की महिमा, अंत में ऐसा ही हुआ।

संसार का कोई व्यसन, कोई शौक ऐसा न था, अकबर जिसका प्रेमी न हो। भिन्न भिन्न नगरों, बल्कि विदेशों तक से उसने अनेक प्रकार के कबूतर मँगवाए थे। अब्दुल्ला खाँ उजबक को लिखा, तो उसने तूफ़ान से गिरहबाज कबूतर और उन कबूतरों के लिये कबूतर-बाज भेजे थे। यहाँ उनकी बहुत कदर हुई। मिरजा अब्दुलरहीम खानखानाँ को इन्हीं दिनों में एक आज्ञापत्र लिखा था, जिसमें सरस लेख रूपी बहुत कबूतर उड़ाए हैं और एक एक कबूतर का नाम देते हुए उनका सब हाल लिखा है। आईन अकबरी में जहाँ और कारखानों के नियम आदि लिखे हैं, वहाँ इन कबूतरों के संबंध में भी नियम दिए हैं। एक कबूतरनामा भी लिखा गया था। शेख अब्बुलफजल अकबर-नामे में लिखते हैं कि एक दिन कबूतर उड़ रहे थे। वे बाजियाँ कर रहे थे, अकबर तमाशा देख रहा था। उसके एक कबूतर पर बहरी गिरी। अकबर ने ललकारकर कहा—खबरदार! बहरी झपट्टा मारते मारते रुक गई। उसका नियम है कि यदि कबूतर कतराकर निकल जाता है, तो चक्कर मारती है और फिर आती है। बार बार झपट्टे मारती है और अंत में ले ही जाती है। पर इस बार वह फिर नहीं आई।

साहस और वीरता

भारतीय राजाओं के शासन संबंधी सिद्धांतों में एक सिद्धांत यह भी था कि राजा या राज्य का स्वामी प्रायः विकट अवसरों पर जान

जोखिम के काम करके सर्व साधारण के हृदय पर प्रभाव डाले, जिससे वे लोग यह समझें कि सचमुच कोई दैवी या अलौकिक शक्ति इसके पक्ष में है; प्रताप इसका इतना अधिक सहायक है, जितना हम में से किसी का नहीं है; और इसी वास्ते इसका महत्व ईश्वर का महत्व है और इसका आज्ञा-पालन ईश्वर के आज्ञा-पालन की पहली सीढ़ी है। यही कारण है कि हिंदू लोग राजा को ईश्वर का अवतार मानते हैं और मुसलमान कहते हैं कि उसपर ईश्वर की छाया रहती है। अकबर यह बात अच्छी तरह समझ गया था। तैमूरी और चंगेजी रक्त के प्रभाव से इसमें जो साहस, वीरता, आवेश और देशों पर अधिकार करने का शौक आया था, वह इसे और भी गरमाता रहता था। यह आवेश या तो बाबर की प्रकृति में था और या इसकी प्रकृति में कि जब नदी के तट पर पहुँचता था, तब कोई आवश्यकता न होने पर भी घोड़ा पानी में डाल देता था। जब वह स्वयं इस प्रकार नदी पार करे, तब उसके सेवकों में कौन ऐसा हो सकता था जो उसके लिये अपनी जान निछावर करने का तो दावा रखे और उससे आगे न हो जाय। हुमायूँ सदा सुख से ही रहना पसंद करता था। जब कहीं ऐसा ही बोझ पड़ता था, तब वह जान पर खेलता था। धावे करके युद्ध करना, साहस के घोड़े पर चढ़कर आप तलवार चलाना, किलों पर घेरा डालना, सुरंगें लगाना, साधारण सिपाहियों की भाँति मोरचे मोरचे पर आप घूमना अकबर का ही काम था। इसके पीछे और जितने बादशाह हुए, वे सब केवल आनंद-मंगल करनेवाले थे। वे लोगों से अपनी पूजा करानेवाले, बादशाही दरबार के रखवाले, पेट के मारे हुए लोगों के सिर कटवानेवाले बनिए-महाजन थे, जो बाप दादा की गद्दी पर बैठे हैं; या मानों किसी पीर की संतान हैं, जो अपने बड़ों की हड्डियाँ बेचते हैं और सुख से जीवन व्यतीत करते हैं। अकबर जब तक काबुल में था, तब तक उसे ऊँट से बड़ा कोई जानवर दिखाई न देता था; इसलिये वह उसी पर चढ़ता था,

उसे दौड़ाता था और लड़ाता था। कभी कुत्तों से और कभी तीर कमान से शिकार खेलता था। निशाने लगाता था और बाज़ बाशे उड़ाता था।

जब हुमायूँ ईरान से भारत की ओर लौटा और काबुल में आकर आराम से बैठा, तब अकबर की अवस्था पाँच वर्ष से कुछ ही अधिक होगी। यह भी चाचा की कैद से छूटा था। सैर शिकार आदि शाहजादों के जो व्यसन हैं, उन्हीं से अपना चित्त प्रसन्न करने लगा। एक दिन कुत्ते लेकर शिकार खेलने गया था। पहाड़ी देश था। एक पहाड़ में हिरन, खरगोश आदि शिकार के बहुत से जानवर थे। चारों ओर नौकरों को जमा दिया कि रास्ता रोके खड़े रहो; कोई जानवर निकलने न पावे। इसे लड़का समझकर नौकरों ने कुछ ला-परवाही की। एक ओर से जानवर निकल गए। अकबर बहुत बिगड़ा। लौट आया और जिन नौकरों ने ला-परवाही की थी, उन्हें सारे उर्दू में फिराया। हुमायूँ सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला कि ईश्वर को धन्यवाद है कि अभी से इस होनहार की तबीयत में राजाओं के शासन और नियम आदि बनाने का भाव है।

जब सन् ९६२ हि० में हुमायूँ ने अकबर को पंजाब के सूबे का प्रबंध सौंपकर दिल्ली से रवाना किया, तब सरहिंद पहुँचने पर हिसार फीरोज़ा की सेना भी आकर संमिलित हुई। उस सेना में उस्ताद अज़ीज सीस्तानी भी था। तोप और बंदूक के काम में वह बहुत ही दक्ष था। उसने बादशाह से रूमी खाँ[1] का खिताब पाया था। वह भी अकबर को सलाम करने के लिये आया। उसने ऐसी अच्छी निशानेबाजी दिखलाई कि अकबर को भी शौक हो गया। उसे शिकार का बहुत अधिक शौक तो पहले ही से था, अब वह उसका प्रधान अंग

---

१ उन दिनों तोपची प्रायः रूम से आया करते थे और इसी कारण शाही दरबारों से उन्हें रूमी खाँ की उपाधि मिलती थी। तोपें आदि पहले युरोप से दक्षिण में आई थीं और तब वहाँ से सारे भारत में फैली थीं।

हो गया। थोड़े ही दिनों में अकबर को ऐसा अभ्यास हो गया कि बड़े बड़े उस्ताद कान पकड़ने लगे।

चीतों का शौक

भारत में चीतों से जिस प्रकार शिकार खेलते हैं, ईरान और तुर्किस्तान में उस प्रकार से शिकार खेलने की प्रथा नहीं है। जब हुमायूँ दूसरी बार भारत में आया, तब अकबर भी उसके साथ था। उस समय उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी। सरहिंद में सिकंदर खाँ अफगान अपने साथ अफगानों की बहुत बड़ी सेना लिए पड़ा था। बड़ा भारी युद्ध हुआ और हजारों आदमी खेत रहे। अफगान भागे। शाही सेना के हाथ बहुत अधिक खजाने और माल लगे। वलीबेग जुल्कदर (बैरम खाँ का बहनोई और हुसेनकुली खाँ खानजहाँ का पिता) सिकंदर के चीताखाने में से एक चीता लाया। उसका नाम फतहबाज था और दोंदू उसका चीताबान था। दोंदू ने अपने करतब और चीते के गुण ऐसी खूबी से दिखलाए कि अकबर आशिक हो गया। उसी दिन से उसे चीतों का शौक हुआ। सैकड़ों चीते एकत्र किए। वे सब ऐसे सधे हुए थे कि संकेत पर सब काम करते थे और देखनेवाले चकित रहते थे। कमखाब और मखमल की झूलें ओढ़े हुए, गले में सोने की सिकड़ियाँ पहने, आँखों पर जरदोजी चश्मे चढ़े हुए बहलों में सवार होकर चलते थे। बैलों का सिंगार भी उनसे कुछ कम न था। सुनहरी रुपहली सिंगौटियाँ चढ़ी हुई, सिर पर जरदोजी का मुकुट, जरी की झम झम करती झूलें, तात्पर्य यह कि अपूर्व शोभा थी।

एक बार सब लोग पंजाब की यात्रा में चले जाते थे। इतने में एक हिरन दिखाई दिया। आज्ञा हुई कि इसपर चीता छोड़ो। छोड़ा। हिरन भागा। बीच में एक गढ़ा आ गया। हिरन ने चारों पुतलियाँ झाड़कर छलाँग भरी और साफ उड़ गया। चीता भी साथ ही उड़ा और हवा में हो जा दबोचा; जैसे कबूतर पर बहराज। दोनों ऊपर

नीचे गुथा गुद होते हुए एक विलक्षण ढंग से नीचे गिरे। सवारी की भीड़ साथ थी। सबने वाह वाह का शोर किया। अच्छे अच्छे चीते आते थे और उनमें जो सबसे अच्छे होते थे, वे चुनकर शाही चीतों में संमिलित किए जाते थे। विलक्षण संयोग यह है कि इनकी संख्या कभी हजार तक नहीं पहुँची। जब एक दो की कसर रहती, तब कोई ऐसा रोग फैलता कि कुछ चीते मर जाते थे। सब लोग चकित थे; और अकबर को भी सदा इस बात का आश्चर्य रहताथा।

हाथी

अकबर को हाथियों का भी बहुत अधिक शौक था; और यह शौक केवल बादशाहों और शाहजादों का नहीं था। हाथियों के कारण प्रायः युद्ध हो हो गए थे, जिनमें लाखों और करोड़ों रुपए व्यय हुए और हजारों सिर कट गए। अकबर स्वयं भी हाथी पर खूब बैठता था। बड़े जड़े मस्त और आदमियों को मार डालनेवाले हाथी होते थे, जिनके पास जाते हुए बड़े बड़े महावत डरते थे। पर अकबर उन हाथियों के पास बेलाग और बराबर जाता था। वह हाथी के बराबर पहुँचकर कभी उसका दाँत और कभी कान पकड़ता और गरदन पर दिखाई पड़ता। एक हाथी से दूसरे हाथी पर उछल जाता था और उसकी गरदन पर बैठकर खूब हँसता खेलता और उनको भगाता या लड़ाता था। गद्दी झूल कुछ भी नहीं, केवल कलावे में पैर हैं और गरदन पर जमा हुआ है। कभी कभी वृक्ष पर बैठ जाता था और जब हाथी सामने आता था, तब झट उछलकर उसकी गरदन या पीठ पर जा बैठता था। फिर वह बहुतेरी झुरझुरियाँ लेता है, सिर धुनता है, कान फटफटाता है, पर अकबर अपनी जगह से कब हिलता है!

एक बार अकबर का एक प्यारा हाथी मस्त होकर छूट गया और फीलखाने से निकलकर बाजारों में उपद्रव करने लगा। सारे शहर में कोहराम मच गया। अकबर सुनते ही किले से निकल

और पता लेता हुआ चला कि किधर गया है। एक बाजार में पहुँचकर शोर सुना कि वह सामने से आ रहा है; और और उसके आगे आगे एक भीड़ भागी चली आती है। अकबर इधर उधर देखकर एक कोठे पर चढ़ गया और उसके छज्जे पर आ खड़ा हुआ। ज्यों ही वह हाथी सामने आया, त्यों ही अकबर लपककर उसकी गरदन पर आ पहुँचा। देखनेवाले चिल्ला उठे—आहा! हा हा! बस फिर क्या था। देव वश में आ गया था। यह बात उस समय की है, जब अकबर केवल चौदह पंद्रह वर्ष का था।

लकना हाथी बदमस्ती और दुष्टता में सारे देश में बदनाम था। एक दिन अकबर दिल्ली में उसपर सवार हुआ और उसी के जोड़ का एक बदमस्त और खूनी हाथी मँगाकर मैदान में उससे लड़ाने लगा। लकना ने उसे भगा दिया और पीछा करके दौड़ाया। एक तो मस्त, दूसरे विजय का आवेश, लकना अपने विपक्षी के पीछे दौड़ा जाता था। एक छोटे पर गहरे गड्ढे में उसका पैर जा पड़ा। उसका पैर भी एक खंभा ही था। मस्ती के कारण बफर बफरकर उसने जो आक्रमण किए तो पुट्ठे पर से भुनैया भी गिर पड़ा। पहले तो अकबर सँभला, पर अंत में गरदन पर से उसका आसन भी उखड़ा। पर पैर कलावे में अटककर रह गया। उसके नमक-हलाल सेवक घबरा गए और लोग चिंता से व्याकुल होकर चिल्लाने लगे। अकबर उसपर से उतर पड़ा और जब हाथी ने गड्ढे में से पैर निकाला, तब वह फिर उसपर सवार होकर हँसता खेलता चल पड़ा। वह समय ही और था। खान-खानाँ जीवित थे। उन्होंने अकबर पर से रुपए और अशर्फियाँ निछावर कीं और ईश्वर जाने, और क्या क्या किया।

अकबर के खास हाथियों में से एक हाथी का नाम हवाई था, जो बद-हवाई और पाजीपन में बारूद का ढेर ही था। एक अवसर पर वह मस्त हो रहा था। अकबर ने उसे उसी दशा में चौगानबाजी के मैदान में मँगाया। आप उसपर सवार होकर उसे इधर उधर दौड़ाया-

फिराया, उठाया—बैठाया, सलाम कराया। रणबाघ नाम का एक और हाथी था। वह भी बदमस्ती और उद्दंडता में बहुत प्रसिद्ध था। उसे भी वहीं मँगवाया और आप हवाई को लेकर उसके सामने हुआ। शुभ-चिंताकों को बहुत चिंता हुई। जब दोनों देव टक्कर मारते थे, तब मानों दो पहाड़ टकराते थे या नदियाँ लहराती थीं। अकबर शेर की भाँति उसपर बैठा हुआ था। कभी गरदन पर हो जाता था, तो कभी पीठ पर। सेवकों में से कोई बोल न सकता था। अंत में लोग अतका खाँ को बुलाकर लाए, क्योंकि वही सब में बड़ा था। बेचारा बुड्ढा हाँपता काँपता दौड़ा आया और अकबर की दशा देखकर चकित हो गया। न्याय के भिखारी पीड़ितों की भाँति सिर नंगा कर लिया और अकबर के पास पहुँचकर फरयादियों की भाँति दोनों हाथ उठाकर जोर जोर से चिल्लाना आरंभ किया—"हे बादशाह, ईश्वर के लिये छोड़ दे। लोगों की दशा पर दया कर। बादशाह अपनी प्रजा का जीवन होता है।" चारों ओर लोगों की भीड़ लगी थी। अकबर की दृष्टि अतका खाँ पर पड़ी। उसने वहीं से पुकारकर कहा—"क्यों घबराते हो! यदि तुम शांत नहीं होगे, तो मैं अपने आप को स्वयं ही हाथी की पीठ पर से गिरा दूँगा।" वह प्रेम का मारा वहाँ से हट गया। अंत में रणबाघ भागा और हवाई आग बगूला होकर उसके पीछे पड़ा। दोनों हाथी आगा देखते थे न पीछा, गड्ढा न टीला; जो कुछ सामने आता था, सब लाँघते फलाँगते चले जाते थे। जमना का पुल सामने आया। उसकी भी परवा न की। दो पहाड़ों का बोझ, पुल की नावें दबती और उछलती थीं। किनारों पर लोगों को भीड़ लगी थी। मारे चिंता और भय के सब की विलक्षण दशा थी। जान निछावर करनेवाले सेवक नदी में कूद पड़े। पुल के दोनों ओर तैरते चले आते थे। किसी प्रकार हाथी पार हुए। बारे रणबाघ कुछ थमा। हवाई भी ढीला पड़ गया। तब जाकर लोगों के चित्त ठिकाने हुए। जहाँगीर ने इस घटना को अपनी

तुजुक में लिखकर इतना और कहा है—"पिता जी ने स्वयं मुझसे कहा था कि एक दिन हवाई पर सवार होकर मैंने अपनी दशा ऐसी बनाई, मानों नशे में हूँ।" और तब इसके उपरांत सारी घटना लिखी है और अकबर की जबानी यह भी लिखा है कि यदि मैं चाहता, तो हवाई को जरा से इशारे में रोक देता। पर पहले मैं स्वेच्छाचारिता प्रकट कर चुका था, इसलिये पुल पर आकर सँभलना उचित न समझा। मैंने सोचा कि लोग कहेंगे कि यह बनावट था। या वे यह समझेंगे कि स्वेच्छाचारिता तो थी, पर पुल और नदी देखकर नशा हिरन हो गया। और ऐसी ऐसी बातें बादशाहों को शोभा नहीं देतीं।

कई बार ऐसा हुआ कि शिकार या यात्रा के समय अकबर के सामने शेर बबर आ पड़े और उसने अकेले उनको मारा; कभी बंदूक से और कभी तलवार से। बल्कि प्रायः आवाज दे दी है कि—"खबरदार ! और कोई आगे न बढ़े।"

एक दिन अकबर सेना की हाजिरी ले रहा था। दो राजपूत नौकरी के लिये सामने आए। अकबर के मुँह से निकला—"कुछ वीरता दिखलाओगे ?" एक ने अपनी बरछी की बोंड़ी उतारकर फेंक दी और दूसरे की बरछी की भाल उस पर चढ़ाई। तलवारें सौंत लीं। बरछी की अनियाँ अपनी छाती पर लगाईं और घोड़ों को एड़ लगाई। बेखबर घोड़े चमककर आगे बढ़े। दोनों वीर छिदकर बीच में आ मिले। दोनों ने एक दूसरे को तलवार का हाथ मारा। दोनों वहीं कटकर ढेर हो गए और देखनेवाले चकित रह गए।

उस समय अकबर को भी आवेश आ गया। पर उसने किसी को अपने सामने रखना उचित न समझा। आज्ञा दी कि तलवार की मूठ खूब दृढ़ता से दीवार में गाड़ दो, फल बाहर निकला रहे। फिर तलवार की नोक अपनी छाती पर रखकर आक्रमण करना ही चाहता था कि मानसिंह दौड़कर लिपट गया। अकबर बहुत झुँझलाया। उसे उठाकर जमीन पर दे मारा। उसने सोचा होगा कि इसने मेरा ईश्वरदत्त

वीरतापूर्ण आवेश प्रकट न होने दिया। उसके अँगूठे की घाई में घाव भी हो गया था। मुजफ्फर सुल्तान ने घायल हाथ मरोड़कर मानसिंह को छुड़ाया। इस उठा-पटक में घाव अधिक हो गया था, पर चिकित्सा करने से शीघ्र अच्छा हो गया।

इन्हीं दिनों में एक बार कोई बात अकबर की इच्छा के विरुद्ध हो गई। उसने क्रुद्ध होकर सवारी का घोड़ा माँगा और आज्ञा दी कि साईस या खिदमतगार आदि कोई साथ न रहे। अकबर के खास घोड़ों में एक सुरंग ईरानी घोड़ा था, जो उसके मौसा खिज्र ख्वाजा खाँ ने भेंट किया था। घोड़ा बहुत ही सुंदर और बाँका था पर जिस प्रकार वह और गुणों में अद्वितीय था, उसी प्रकार दुष्टता और पाजीपन में भी बेजोड़ था। यदि छूट जाता था, तो किसी को अपने पास न आने देता था। कोई चाबुकसवार उसपर सवारी करने का साहस न कर सकता था। स्वयं अकबर ही सवार होता था; उस दिन अकबर क्रोध में था। उसे न जाने क्या ध्यान आया। वह घोड़े पर से उतरकर ईश-प्रार्थना करने लगा। घोड़ा अपनी आदत के अनुसार भागा और ईश्वर जाने कहाँ का कहाँ निकल गया। अकबर ईश-प्रार्थना में ही तन्मय था। उसे घोड़े का ध्यान ही नहीं था। जब वह चैतन्य हुआ, तब उसने दाहिने बाएँ देखा। वह कहाँ दिखाई देता! उस समय न तो कोई सेवक ही था और न कोई घोड़ा ही। खड़ा सोच रहा था कि इतने में देखा कि वही घोड़ा सामने से दौड़ा चला आता है। वह पास आया और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। जैसे कोई कहता हो कि यह सेवक उपस्थित है, सवार हो जाइए। अकबर भी चकित हो गया और उसपर चढ़कर लश्कर में आया।

यद्यपि सभी देशों और सभी समयों में बादशाहों को जीवन का भय रहता है, पर एशिया के देशों में, जहाँ एकतंत्री शासन होता है, यह भय और भी अधिक रहता है। पुराने जमाने में यह बात और भी अधिक थी; क्योंकि उन दिनों साम्राज्य के शासन का कोई सिद्धांत

का नियम नहीं था। यह सब कुछ होने पर भी वह किसी बात की परवा न करता था। उसे इस बात का बहुत ध्यान रहता था कि मुझे सारे देश का सब समाचार मिलता रहे और मेरी प्रजा सुखी रहे वह सदा इसी चिंता में रहा करता था।

स्वयं अकबर ने एक दिन अबुलफजल से कहा था कि एक रात आगरे के बाहर छड़ियों का मेला था। मैं भेस बदलकर वहाँ यह देखने के लिये गया कि लोगों की क्या दशा है और वे क्या करते हैं। एक साधारण सा बाजारी आदमी था। उसने मुझे पहचानकर अपने साथियों से कहा कि देखो, बादशाह जाता है। वह मेरे बराबर ही था। मैंने सुन लिया। झट आँख को भेंगा करके मुँह टेढ़ा कर लिया और बिलकुल बेपरवाही से बढ़कर आगे चला गया। उनमें से एक ने आगे बढ़कर ध्यानपूर्वक देखा और कहा—"भला कहाँ बादशाह अकबर और कहाँ इसकी यह सूरत! यह तो कोई टेढ़मुँहा है और भेंगा भी है।" मैंने धीरे धीरे भीड़ में से निकलकर किले का रास्ता लिया।

अजगर मारने का हाल आगे आवेगा।

अकबर ने अपने शत्रुओं पर बहुत जोर शोर से चढ़ाइयाँ की थीं; बहुत जान जोखिम सहकर धावे किए थे; और थोड़े से सैनिकों की सहायता से बड़ी बड़ी सेनाओं को परास्त किया था। पर एक धावा उसने ऐसा किया, उसका वर्णन यहाँ करना अप्रासंगिक न होगा। मोटा राजा की कन्या राजा जयमल से ब्याही थी। वह अकबर का मिजाज पहचानता था। सन् ९९१ हि० में अकबर ने उसे किसी आवश्यक कार्य के लिये बंगाल भेजा। वह आज्ञाकारी घोड़े की डाक पर बैठकर चल पड़ा। भाग्य की बात कि चौसा के घाट पर थकावट ने उसे बैठा दिया और थोड़ी ही देर में लेटाकर मृत्यु शय्या पर सुला दिया। बादशाह को समाचार मिला। सुनकर बहुत दुःखी हुआ। जब वह महल में गया, तब उसे मालूम हुआ कि उसका पुत्र और कुछ दूसरे

गँवार राजपूत उसकी स्त्री को बलपूर्वक सती करना चाहते हैं। दयालु बादशाह को दया आ गई। वह तड़पकर उठ खड़ा हुआ। उसने सोचा कि मैं किसी और अमीर को भेज दूँ। पर फिर उसे ध्यान हुआ कि मैं उसे भेज तो दूँगा, पर उसकी छाती में अपना यह दिल और उस दिल में यह दर्द कैसे भरूँगा! तुरंत स्वयं घोड़े पर चढ़ा और हवा के पर लगाकर उड़ा। अकबर बादशाह का अचानक राजमहल से गायब हो जाना कोई साधारण बात नहीं थी। सारे नगर और देश में चर्चा फैल गई। जगह जगह हथियारबंदी होने लगी। भला इस दौड़ादौड़ में सब अमीर और सेवक कहाँ तक साथ दे सकते थे। कुछ थोड़े से सेवक और खिदमतगार बादशाह के साथ में रह गए और सब लोग अचानक उस स्थान पर पहुँच गए, जहाँ लोग रानी को बलपूर्वक सती करना चाहते थे। अकबर को नगर के पास ही कहीं ठहरा दिया। राजा जगन्नाथ और राजा रायसाल घोड़ा मारकर आगे बढ़े। उन्होंने जाकर समाचार दिया कि महाबली आ गए। उन हठी गँवारों को रोका और लाकर बादशाह की सेवा में उपस्थित किया। बादशाह ने देखा कि ये लोग अपने किए पर पछता रहे हैं, इसलिये उन्हें प्राण-दंड की आज्ञा नहीं दी; पर यह आज्ञा दे दी कि ये लोग कुछ दिनों तक कारागार में रखे जायँ। रानी के प्राण के साथ उन लोगों के प्राण भी बच गए। उसी दिन वहाँ से लौटा। जब फतहपुर पहुँचा, तब सब के दम में दम आया।

सन् ९७४ हि० में पूर्व में युद्ध हो रहा था। अकबर खानजमाँ के साथ लड़ रहा था। कुछ दुष्ट मुसाहबों ने मुहम्मद हीम मिरजा को संमति दी कि आखिर आप भी हुमायूँ बादशाह के बेटे और देश के उत्तराधिकारी हैं। पंजाब तक आप का राज्य रहे। वह भोला भाला सीधा सादा शाहजादा उन लोगों की बातों में आकर लाहौर में आ गया। अकबर ने इधर की हरारत को क्षमा के शरबत और नजराने-जुरमाने की शिकंजबीन से दूर किया और अमीरों को सेनाएँ

देकर उधर भेजा; और आप भी सवार हुआ। मुहम्मद हकीम बादशाह के आने का समाचार सुनकर हवा में उड़कर काबुल पहुँचा। अकबर लाहौर में जाकर ठहरा और कमरगा शिकार की आज्ञा दी। सरदार, मनसबदार, कुरावल और शिकारी आदि दौड़े और सब ने चट पट आज्ञा का पालन किया।

कमरगा

कमरगा एक प्रकार का शिकार है, जिसका ईरान और तूरान के प्राचीन बादशाहों को बहुत शौक था। किसी बड़े जंगल के चारों ओर बड़े बड़े लक्कड़ोंकी दीवार घेर देते थे। कहीं टीलों की प्राकृतिक श्रेणियों से और कहीं बनाई हुई दीवारोंसे सहायता लेते थे। तीस तीस चालीस चालीस कोस से जानवरों को घेरकर लाते थे। उनमें सभी प्रकार के हिंसक पशु और पक्षी आदि आ जाते थे; और तब निकास के सब मार्ग बंद कर देते थे। बीच में बादशाह और शाहजादों आदि के बैठने के लिये कई ऊँचे स्थान बनाते थे। पहले स्वयं बादशाह सवार होकर शिकार मारता था; फिर शाहजादे शिकार करते थे; और तब फिर और लोगों को शिकार करने की आज्ञा हो जाती थी। उसमें कुछ खास खास अमीर भी संमिलित होते थे। दिन पर दिन घेरे को सिकोड़कर छोटा करते जाते थे और जानवरों को समेटते लाते थे। अंत में जब स्थान बहुत ही थोड़ा बच जाता था और जानवर बहुत अधिक हो जाते थे, तब उनकी धकापेल और रेल-धकेल, घबराहट, दौड़ना, चिल्लाना, भागना, कूदना-उछलना, और गिरना-पड़ना लोगों के लिये एक अच्छा तमाशा हो जाता था। इसी को कमरगा या जरगा कहते थे। इस अवसर पर चालीस कोस से जानवर घेरकर लाए गए थे और लाहौर से पाँच कोस पर शिकार के लिये घेरा डाला गया था। खूब शिकार हुए और अच्छे अच्छे शकुन दिखाई दिए। यहाँ आखेट से चित्त प्रसन्न करके काबुल के शिकार पर घोड़े उठाए। रावी के तट

पर पहुँचकर अपने शरीर पर के वस्त्र और तुर्की, ताज़ी आदि घोड़ों के मुँह पर से लगामें उतार डालीं। अकबर और उसके सब अमीर, मुसाहब तथा साथी आदि तैरकर नदी के पार हुए। अकबर के प्रताप से सब लोग सकुशल पार उतर गए। लेकिन खुशखबर खाँ, जो खुश-खबरी लाने में सब से आगे रहता था, इस अवसर पर भी सब से आगे बढ़कर परलोक के तट पर जा निकला। इस विलक्षण आखेट का एक पुराना चित्र मेरे हाथ आया था। पाठकों के देखने के लिये उसका दर्पण दिखाता हूँ।

सवारी की सैर

साम्राज्य का वैभव बरसगाँठ और जलूस के जशनों के समय अपनी बहार दिखलाता था। चाँदी के चौतरे पर सोने का जड़ाऊ सिंहासन रखा जाता था, जिस पर बादशाह बैठता था। प्रताप के राजमुकुट में हुमा का पर लगा होता था। सिर पर जवाहिरात का जड़ाऊ छतर होता था। जरदोजी का शामियाना होता था, जिसमें मोतियों की झालरें टँकी होती थीं। वह शामियाना सोने और रूपे के खंभों पर तना रहता था। रेशमी कालीनों के फर्श होते थे। दरवाजों और दीवारों पर काश्मीरी शाल टाँगे जाते थे। रूम की मखमलें और चीन की अतलसें लहराती थीं। अमीर लोग दोनों ओर हाथ बाँधे खड़े होते थे। चोबदार और खासदार प्रबंध करते फिरते थे। उनके तड़कीले भड़कीले वस्त्र होते थे। सोने और रूपे के नेजों और असाओं पर बानात के गिलाफ चढ़े होते थे। मानों वे सब जादू की पुतलियाँ थीं, जो सेवाएँ करती फिरती थीं। प्रसन्नता और बधाइयों की चहल-पहल और सुख तथा विलास की रेल-पेल होती थी।

बादशाह के निवास-स्थान के दोनों ओर शाहज़ादों और अमीरों

के खेमे होते थे। बाहर दोनों ओर सवारों और प्यादों की पंक्ति होती थी। बादशाह दोमंजिली रावटी या झरोखे में आ बैठता था। उसका खेमा जरदोजी का होता था, जिसपर प्रताप की छाया का शामियाना होता था। शाहजादे, अमीर और राजे महाराजे आते थे। उन्हें खिलअतें और पुरस्कार मिलते थे और उनके मन्सब बढ़ते थे। रुपए, अशर्फियाँ और सोने चाँदी के फूल ओलों की भाँति बरसते थे। एकाएक आज्ञा होती थी कि हाँ, नूर बरसे। बस फर्राश और खवास मनों बादला और मुक्केश कतर-कर झोलियों में भर लेते थे और संदलियों पर चढ़कर उड़ाने लगते थे। नक्कारखाने में नौबत झड़ती थी। हिंदुस्तानी, अरबी, ईरानी, तूरानी, फिरंगी बाजे बजते थे। बस इसी प्रकार की धमाधमी होती थी।

अब दुलहे के सामने से साम्राज्य रूपी दुलहिन की बारात गुजरती है। निशान का हाथी आगे है। उसके पीछे पीछे और हाथियों की पंक्ति है। फिर माही-मरातब और दूसरे निशानों के हाथी हैं। जंगी हाथियों पर फौलाद की पाखरें, माथे पर ढालें; कुछ के मस्तकों पर बेल बूटे बने हैं और कुछ के चेहरों पर गेंडों, अरने भैंसों और शेरों की खालें कल्लों समेत चढ़ी हुई हैं। भयावनी सूरत और डरावनी सूरत। सूँडों में गुर्ज, बरछियाँ और तलवारें लिए हैं। फिर साँडनियों की पंक्ति है। उसमें ऐसी ऐसी साँडनियाँ हैं, जिनके सौ सौ कोस के दम हैं। गरदन खिंची हुई, छाती तनी हुई; जैसे लक्का कबूतर हो। फिर घोड़ों की पंक्तियाँ; उनमें अरबी, ईरानी, तुर्की, हिंदुस्तानी सभी प्रकार के घोड़े खूब सजे सजाए और अच्छे अच्छे साजों में डूबे हुए; चालाकी और फुरती में मानों बिजली हैं। छलते, मचलते, खेलते, कूदते, शोखियाँ करते चले जाते हैं। फिर शेर, चीते, गेंडे आदि बहुत से सधे-सधाए और सीखे-सिखाए जंगली जानवर हैं। चीतों के छकड़ों पर अच्छे अच्छे बेल बूटे बने हुए, आँखों पर जरदोजी के गिलाफ

चढ़े हुए हैं। वह गिलाफ और उनकी बेलें काश्मीरी शालों की हैं और वे मखमल और जरदोजी की झूलें ओढ़े हुए हैं। बैलों के सिरों पर कलगियाँ और ताज हैं। उनके सींग चित्रकारों की चित्रकारी से मानों काश्मीर के कलमदान बने हैं। पैरों में झाँझन, गले में घुँघरू, छम छम करते चले जाते हैं। फिर शिकारी कुत्ते हैं, जो शेरों के सामने भी मुँह न फेरें; शिकार की गंध पाते ही, पाताल से उसका पता लगा लावें।

फिर अकबर के खास हाथी आते थे। भला उनकी तड़क भड़क का क्या पूछना है। आँखों में चकाचौंध आती थी। वे सब अकबर को विशेष रूप से प्रिय थे। उनकी झलाबोर झूलें जिनपर मोती और जवाहिरात टँके हुए, गहनों से लदे-फँदे; उनके विशाल वक्षस्थल पर सोने की हैकलें लटकती थीं। सोने और चाँदी की जंजीरें सूँडों में हिलाते थे। झूमते झामते और प्रसन्नता से मस्तियाँ करते चले जाते थे।

सवारों के दस्ते, प्यादों की पलटनें, सब सैनिक तुर्की और तातारी वस्त्र पहने हुए; वही युद्ध के अस्त्र शस्त्र लिए हुए; हिंदुस्तानी सेनाओं का अपना अपना बाना; सूरमा राजपूत केसरी दगले पहने हुए, हथियारों में ओपची बने हुए; दक्खिनियों के दक्खिनी सामान; तोपखाने और आतिशखाने; उनके कर्मचारियों की रूमी और फिरंगी वर्दियाँ। सब अपने अपने बाजे बजाते, राजपूत शहनाइयों पर कड़खे गाते, अपने निशान लहराते चले जाते थे। अमीर और सरदार अपने अपने सैनिकों को व्यवस्थापूर्वक लिए जाते थे। जब सामने पहुँचते थे। तब अभिवादन करते थे। जब दमामे पर डंका पड़ता था, तब लोगों के कलेजे में दिल हिल जाते थे। इसमें हिकमत यह थी कि सेना और उसकी समस्त आवश्यक सामग्री की हाजिरी हो जाय। यदि कोई त्रुटि हो तो वह पूरी हो जाय; दोष हो तो, वह दूर हो जाय। और यदि किसी नई बात की आवश्यकता हो, तो वह भी अपने स्थान पर आ जाय।

अकबर का चित्र

अकबर के चित्र जगह जगह मिलते हैं, पर सब में विरोध और भिन्नता है; इसलिये कोई विश्वसनीय नहीं। मैंने बड़े परिश्रम से कुछ चित्र महाराज जयपुर के पुस्तकालय से प्राप्त किए थे। उनमें अकबर का जो चित्र मिला, उसी को मैं सब से अधिक विश्वसनीय समझता हूँ। लेकिन यहाँ मैं उसका वह चित्र देता हूँ, जो जहाँगीर ने अपनी तुजुक में शब्दों से खींचा है। अकबर न बहुत लंबा था और न बहुत नाटा। उसका कद मझोला था। रंग गेहुआँ, आँखें और भँवें काली। गोराई नहीं थी और लावण्य अधिक था। छाती चौड़ी और उभरी हुई; बाँहें लंबी; बाएँ नथने पर आधे चने के बराबर एक मसा। जो लोग सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता थे, वे इसे वैभव और प्रताप का चिह्न समझते थे। आवाज ऊँची थी और बात चीत में प्राकृतिक मिठास और लावण्य था। सज धज में साधारण लोगों से उसकी कोई बराबरी ही नहीं हो सकती थी। ईश्वर-दत्त प्रताप उसकी आकृति से झलकता था।

यात्रा में सवारी

जब अकबर दौरे या शिकार के लिये निकलता था, तब बहुत थोड़ा सा लश्कर और बहुत ही आवश्यक सामग्री साथ जाती थी। पर वह सारे भारत का सम्राट् और ४४ लाख सैनिकों का सेनापति था, इसलिये उसकी संक्षिप्त सेना और सामग्री भी दर्शनीय ही होती थी। आईन अकबरी में जो कुछ लिखा है, उसे आजकल लोग अतिशयोक्ति समझते हैं। पर उस समय युरोप के जो यात्री भारत में आए थे, उनके लिखे हुए विवरणों से भी आईन अकबरी के लेखों की पुष्टि होती है। भला उसकी वह शोभा कागजी सजावट में क्योंकर आ सकती है! शिकार और पास की यात्रा में अकबर के साथ जो कुछ चलता था,

और उसके रहने-सहने की जो व्यवस्था होती थी, उसका चित्र यहाँ खींचता हूँ।

गुलाल बार—यह खरगाह की तरह का काठ का एक मकान होता था और तस्मों से बाँधकर मजबूत किया जाता था। लाल मखमल, बानात और कालीनों आदि से इसे सजाते थे। इसके चारों ओर एक अच्छा घेरा डालते थे। यह एक छोटा मोटा किला ही होता था। इसमें मजबूत दरवाजे होते थे जो ताली-ताले से खुलते थे। यह सौ गज लंबा और सौ गज चौड़ा अथवा इस से भी कुछ अधिक होता था। इस का आविष्कार स्वयं अकबर ने किया था।

बारगाह—गुलाल बाग के पूर्व में बारगाह होती थी। इसी सकेच के खंभो पर दो कड़ियाँ होती थीं। यह ५४ कमरों में विभक्त होता था। प्रत्येक कमरे की लंबाई २४ गज और चौड़ाई १४ गज होती थी। इससे दस हजार आदमियों पर छाया होती थी। इसे एक हजार फुरतीले फर्राश एक सप्ताह में सजाते थे। इसे खड़ा करने के लिये चर्खियाँ, पहिए आदि कई प्रकार के उठानेवाले यंत्रों और बल की आवश्यकता होती थी। लोहे की चादरें इसे दृढ़ करती थीं। बिलकुल साधारण बारगाह की लागत, जिसमें मखमल, कमखाब, जरबफ्त आदि कुछ भी न लगाते थे, दस हजार रुपए और कभी कभी इस से भी अधिक होती थी।

काठ की रावटी—यह बीच में दस खंभों पर खड़ी होती थी। ये खंभे थोड़े थोड़े जमीन में गड़े होते थे। और सब खंभे तो बराबर होते थे, दो खंभे कुछ अधिक ऊँचे होते थे, जिनपर एक कड़ी रहती थी। इनमें ऊपर और नीचे दासा लगाकर दृढ़ता की जाती थी। इसपर भी कई कड़ियाँ होती थीं। ऊपर से लोहे की चादरें सब को जोड़ती थीं। दीवारें और छतें नरसलों और बाँस की खपचियों से बनाई जाती थीं। इसमें एक या दो दरवाजे होते थे। नीचे के दासे के बराबर एक

चबूतरा होता था। अंदर जरबफ्त और मखमल से सजाते थे और बाहर बानात होती थी। रेशमी निवाड़ों से इसकी कमर मजबूत की जाती थी।

झरोखा—इससे मिला हुआ काठ का एक दो-महला महल होता था, जो अठारह खंभों पर खड़ा किया जाता था। ये खंभे छः छः गज ऊँचे होते थे, जिनपर तख्तों की छत होती थी। छत पर चौ-गजे खंभे खड़े किए जाते थे। इन खंभों में नर-मादावाले फँसानेवाले सिरों के जोड़ होते थे, जिनसे ये जोड़े जाते थे। इसके ऊपर दूसरे खंड की सजावट होती थी। युद्ध-क्षेत्र में इसका पार्श्व बादशाह के शयनागार से मिला रहता था। इसी में ईश-प्रार्थना भी होती थी। यह मकान भी एक अच्छे हृदयवाले मनुष्य के समान था। इसके एक पार्श्व में एकत्व की भावना होती थी, दूसरे पार्श्व में बहुत्व का भाव होता था। एक ओर ईश-प्रार्थना और दूसरी ओर युद्ध-क्षेत्र। सूर्य की उपासना भी इसी पर बैठकर होती थी। इसमें पहले महल की स्त्रियाँ आकर बादशाह के दर्शन करती थीं, और तब बाहरवाले सेवा में उपस्थित होते थे। दूर की यात्राओं में बादशाह की सेवा में भी लोग यहीं उपस्थित होते थे। इसका नाम दो-आशियाना मंजिल या झरोखा था।

जमीन-दोज—ये अनेक आकार और प्रकार के होते थे। इनमें बीच में एक या दो कड़ियाँ होती थीं। बीच में परदे डालकर अलग अलग घर बना लेते थे।

अजायबी—इसमें चार चार खंभों पर नौ शामियाने मिलाकर खड़े करते थे।

मंडल—इसमें पाँच शामियाने मिले हुए होते थे, जो चार चार खंभों पर ताने जाते थे। जब चारों ओर के चार परदे लटका दिए जाते थे, तब बिलकुल एकांत हो जाता था। और कभी एक ओर और कभी चारों ओर खोलकर चित्त प्रसन्न करते थे।

अठ-खंभा—इसमें आठ आठ खंभोंवाले सत्रह दर्जे सजाए शामियाने अलग अलग या एक में होते थे।

खरगाह—शेख अब्बुलफजल कहते हैं कि यह भिन्न भिन्न प्रकार की एक-दरी और दो-दरी होती थी। आजाद कहता है कि अब तक सारे तुर्किस्तान में जंगलों में रहनेवालों के घर इसी प्रकार के होते हैं। पहले बेंत आदि लचकदार पौधों की मोटी और पतली टहनियाँ सुखाते हैं और छोटी बड़ी काट काटकर गोल टट्टी खड़ी करते हैं। यह आदमी के बराबर ऊँची होती है। इसके ऊपर वैसी ही उपयुक्त लकड़ियों से बँगला छाते हैं। ऊपर मोटे, साफ, बढ़िया और अच्छे अच्छे रंगों के नमदे मढ़ते हैं। अंदर की दीवारों पर बूटेदार नमदे और कालीनें सजाते हैं और उनकी पट्टियों से किनारे या गोट चढ़ाते हैं। इसकी चोटी पर प्रकाश आदि आने के लिये गज भर गोल रोशनदार खुला रखते हैं, जिसपर एक नमदा डाल देते हैं। जब बरफ पड़ने लगती है, तब यह नमदा फैला रहता है; और नहीं तो उसे हटा देते और रोशनदार खुला रखते हैं। जब चाहा, लकड़ी से कोना उलट दिया। इसमें विशेषता यह है कि लोहा बिलकुल नहीं लगाते। लकड़ियाँ आपस में फँसी होती हैं। जब चाहा, खोल डाला। गठ्ठे बाँधे, ऊँटों, घोड़ों, गधों पर लादा और चल खड़े हुए।

हरम-सरा—यह बारगाह के बाहर उपयुक्त स्थान पर होती थी। इसमें काठ की चौबीस रावटियाँ होती थीं, जिनमें से प्रत्येक दस गज लंबी और छः गज चौड़ी होती थी। बीच में कनातों की दीवारें होती थीं। इसी में बेगमें उतरती थीं। कई खेमे और खरगाह खड़े होते थे, जिनमें खवासें उतरती थीं। इनके आगे जरदोजी के और मखमली सायबान शोभा देते थे।

सरा-परदा गलीमी—यह हरमसरा से मिला हुआ खड़ा

किया जाता था। यह ऐसा दल-बादल था कि इसके अंदर और कई खेमे लगाते थे। उर्दू-बेगनी[1] तथा दूसरी स्त्रियाँ इनमें रहती थीं।

महताबी—सारा-परदा के बाहर स्वयं बादशाह के निवासस्थान तक सौ गज चौड़ा एक आँगन सजाते थे। यही आँगन महताबी कहलाता था। इस के दोनों ओर बरामदे से होते थे। दो दो गज की दूरी पर छः-गजी चोबें खड़ी करते थे, जो गज गज भर जमीन में गड़ी होती थीं। इनके सिरों पर पीतल के लट्टू होते थे। इन चोबों को अंदर बाहर दो तनावें ताने रहती थीं। बराबर बराबर चौकीदार पहरे पर उपस्थित रहते थे। इसके बीच में एक चबूतरा होता था, जिस पर एक चार-चोबी शामियाना खड़ा किया जाता था। रात के समय बादशाह उसी शामियाने के नीचे बैठा करता था। कुछ विशिष्ट अमीरों आदि के सिवा और किसी को वहाँ आने की आज्ञा नहीं थी।

ऐचकी खाना—गुलालबार से मिला हुआ तीस गज व्यास का एक वृत्त बनाते थे, जिसे बारह भागों में विभक्त करते थे। गुलालबार का दरवाजा इधर ही निकालते थे। बारहगजे बारह शामियाने इस पर सायबानी करते थे और कनातें बहुत ही सुंदर ढंग से इन्हें विभक्त करती थीं।

सेहत-खाना—यह नाम पाखाने का रखा गया था। हर जगह उपयुक्त स्थान पर एक एक पाखाना भी होता था।

इसी से मिला हुआ एक और सरा परदा गलीमी होता था, जो डेढ़ सौ गज लंबा और इतना ही चौड़ा होता था। यह ७२ कमरों में बँटा हुआ होता था। इस के ऊपर पंद्रह गज का एक शहतीर होता था।

१ उर्दू बेगनी या उरदा बेगनी=वह सशस्त्र स्त्री जो शाही महलों में पहरा देने और आज्ञाएँ पहुँचाने का काम करती हो।

कलंदरी—इसके ऊपर कलंदरी खड़ी करते थे। यह खेमे के ढंग की होती थी। इसके ऊपर मोमजामा आदि लगा होता था। इसके साथ बारह-गजे पचास शामियाने होते थे। इसमें स्वयं बादशाह का निवास होता था। इसके द्वार में भी ताली-ताला लगता था। बड़े बड़े अमीर और सेनापति आदि भी बिना आज्ञा के इसमें न जा सकते थे। हर महीने इस बारगाह में नया शृंगार और नई सजावट होती थी। इसके अंदर बाहर रंगीन और बेल-बूटेदार फर्श और परदे होते थे, जो इसे चमन बना देते थे। इसके चारों ओर ३५० गज की दूरी पर तनाबें खिंची होती थीं। तीन तीन गज की दूरी पर एक एक चोब खड़ी की जाती थी। जगह जगह पहरेदार खड़े होते थे। यह दीवानखाना आम कहलाता था। अंत में जाकर १२ तनाब की दूरी पर ६० गज की एक और तनाब होती थी, जिसमें नक्कारखाना रहता था।

आकाश दीया—इस मैदान के बीच में आकाश दीया जलाया जाता था। आकाश दीए कई होते थे, जिनमें से एक यहाँ और एक सरा-परदा के आगे खड़ा किया जाता था। इनके खंभे ४० गज ऊँचे होते थे। उन्हें १५ तनाबें ताने खड़ी रहती थीं। हर एक दीए का प्रकाश बहुत दूर तक पहुँचता था। इनकी सहायता से भूले भटके सेवक अँधेरे में बादशाह के निवास-स्थान का मार्ग पाते थे और इसके दाएँ बाएँ का हिसाब लगाकर दूसरे अमीरों के खेमों आदि का पता लगा लेते थे।

१००० हाथी, ५०० ऊँट, ४०० छकड़े १०० कहार, ५०० मंसबदार और अहदी, १००० ईरानी, तूरानी और हिंदुस्तानी फराश, ५०० बेलदार, १०० पानी छिड़कनेवाले भिश्ती, ५० बढ़ई, बहुत से खेमे सीनेवाले और मशालची आदि, ३० चमड़ा सीनेवाले और १५० हलालखोर (यह पदवी झाड़ू देनेवाले को मिली थी) इस बसे हुए नगर के साथ चलते थे। प्यादे का महीना ३) से लेकर ६) तक होता था।

१५०० गज लंबे और इतने ही चौड़े समतल सुंदर मैदान में बारगाह खास का सामान फैलता था। ३०० गज के वृत्त की दूरी छोड़-कर दाहिने बाएँ पहरेदार खड़े होते थे। पीछे की ओर बीचो बोच ३०० गज की दूरी पर मरियम मकानी, गुलबदन बेगम तथा दूसरी बेगमों और शाहजादा दानियाल के रहने की व्यवस्था होती थी। दाहिनी ओर शाहजादा सुलतान सलीम (जहाँगीर) और बाईं ओर शाह मुराद का निवास-स्थान होता था। फिर जरा और आगे बढ़कर तोशा-खाना, आबदार-खाना, खुशबू-खाना आदि सब कारखाने होते थे। हर कोने पर सुंदर चौक होते थे। फिर अपने पद के अनुसार दोनों ओर अमीर होते थे। तात्पर्य यह कि शाही बारगाह और उसके साथ का लश्कर, सब मिलाकर एक चलता फिरता नगर होता था। जहाँ जाकर उतरता था, सुख और विलास का एक मेला लग जाता था। जंगल में मंगल हो जाता था। दोनों ओर चार पाँच मील तक बाजार लग जाता था। सारे लाव-लश्कर और उक्त सामग्री के कारण मानों जादू का नगर बस जाता था और उसके मध्य में गुलालबार एक किले के समान दिखाई देता था।

दरबार का वैभव

जब दरबार सजाया जा चुकता था, तब प्रतापी बादशाह औरंग पर शोभायमान होता था। औरंग एक बहुत ही सुंदर अठ-पहलू सिंहा-सन होता था। यह गंगा-जमनी अर्थात सोने और चाँदी का ढला हुआ होता था। नदियों ने अपना दिल, पहाड़ों ने अपना कलेजा निका-लकर भेंट किया था। लोग समझते थे कि हीरे, लाल मानिक और मोतियों से जड़ा हुआ है।

छतर —सिर पर जरदोजी का और जड़ाऊ छतर होता था। झालर में जवाहिरात झिलमिल झिलमिल करते थे। सवारी के समय साथ में सात छतर से कम न होते थे, जो कोतल हाथियों पर चलते थे।

सायबान—इसकी बनावट अंडाकार होती थी और यह गज भर लंबा होता था। इसे भी उसी प्रकार जरबफ्त और मखमल से सिंगारते थे। इसमें भी जवाहिरात टँके हुए होते थे। इसे चतुर खास-बरदार रिकाब के बराबर लेकर चलते थे। जब धूप होती थी, तब इस से छाया कर देते थे। इसे आफताब-गीर भी कहते थे।

कोकबः—सैकल और जिला किए हुए सोने के कुछ गोले दर-बार में आगे की ओर लटकाए जाते थे, जो सितारों की तरह चमकते थे। ये चारों चीजें केवल बादशाह ही रख सकता था। किसी शाह-जादे या अमीर को ये चीजें रखने का अधिकार न था।

अलम (झंडा)—सवारी के समय लश्कर के साथ कम से कम पाँच अलम होते थे। इनपर बानात के गिलाफ चढ़े रहते थे। युद्ध-क्षेत्र में ये अलम या झण्डे खुलकर हवा में लहराते थे।

चतर-तोग—यह भी एक प्रकार का अलम ही होता था, पर उस से कुछ छोटा होता था। इसपर सुरागाय की दुम के कई गुप्फे लगे होते थे।

तमन-तोग—यह भी प्रायः चतर-तोग के समान ही हुआ करता था, पर उससे कुछ ऊँचा होता था। इन दोनों के पद भी ऊँचे थे और ये केवल शाहजादों के लिये थे।

झंडा—यह वही अलम होता था, पर पलटन पलटन और रिसाले रिसाले का अलग अलग होता था। जब कोई बड़ा युद्ध होता था, तब इसकी संख्या बढ़ा देते थे। नक्कारे के साथ अलग झंडा होता था।

कोरका—इसे अरबी में दमामा कहते हैं। नक्कारखाने में इसकी प्रायः अठारह जोड़ियाँ होती थीं।

नक्कारा—इसकी प्रायः बीस जोड़ियाँ होती थीं।

दुहल—ये कई होते थे और कम से कम चार बजते थे।

करनाई—यह सोने, चाँदी और पीतल आदि की ढली हुई होती थी। ये भी चार से कम न बजती थीं।

सरनाई—ये ईरानी और हिंदुस्तानी दोनों प्रकार की होती थी और कम से कम नौ एक साथ बजती थीं।

नफ़ीर—ईरानी, हिंदुस्तानी, फिरंगी सब प्रकार की कई नफीरियाँ बजती थीं

सींग—यह गौ के सींग की तरह का होता था और ताँबे का ढला होता था। दो सींग एक साथ बजते थे।

संज या झाँझ—इसकी तीन जोड़ियाँ बजती थीं।

पहले चार घड़ी रात रहे और चार घड़ी दिन रहे नौबत बजा करती थी। अकबर के शासन-काल में एक आधी रात ढलने पर बजने लगी, क्योंकि उस समय सूर्य्य का चढ़ाव आरंभ होता है, और एक सूर्योदय के समय बजने लगी।

नौरोज का जशन

नौरोज या नव वर्षारंभ एक ऐसा दिन है, जिसे एशिया के सभी देशों और सभी जातियों के लोग बहुत ही आनंद का दिन मानते हैं। और फिर चाहे कोई माने या न माने, वसंत ऋतु में लोगों को एक स्वाभाविक आनंद होता है और उनके मन में नया उत्साह, नया बल उत्पन्न होता है। इसका प्रभाव केवल मनुष्यों या पशु पक्षियों आदि पर ही नहीं पड़ता, बल्कि यह ऋतु सब पदार्थों में नवीन जीवन का संचार करती है। हद है कि इस ऋतु में मिट्टी में से हरियाली होती है और हरियाली में फूल-फल लगते हैं। बस इसी का नाम ईद या प्रसन्नता है। चंगेजी तुर्कों का यद्यपि कोई धर्म नहीं था और वे निरे गँवार थे, तथापि

इस दिन उनमें के सभी छोटे बड़े, दरिद्र और धनवान् अपने घरों को सजाते थे। पकवानों के थाल लगाते थे, जिन्हें ख्वाने यग्मा कहते थे। सब मिलकर लूटते-लुटाते थे और इसे वर्ष भर के लिये शुभ शकुन समझते थे। ईरानी पहले भी इस दिन को अपना त्योहार मानते थे; पर जरतुश्त ने आकर उसपर धर्म की छाप लगा दी, क्योंकि उसके विचारों के अनुसार ईश्वर के अस्तित्व का सब से बड़ा प्रमाण सूर्य ही है। हिंदू भी इस विषय में उससे सहमत हैं। विशेषतः इस कारण कि उनके बड़े बड़े और प्रतापी बादशाहों का राज्यारोहण और बड़ी बड़ी विजय इसी दिन हुई हैं।

अकबर का संबंध इन्हीं जातियों से था; इसी लिये वह भी नौरोज के दिन राजसी ठाठ बाट से जशन मनाता था। वह भारत में था और उसे हिंदुओं में ही रहना सहना और उन्हीं में निर्वाह करना था; इसलिये उसने इस उत्सव में हिंदुओं की बहुत सी रीतियाँ और परिपाटियाँ भी संमिलित कर ली थीं। इस अशिक्षित बादशाह के मन में धन के उपासक विद्वानों ने यह बात अच्छी तरह बैठा दी थी कि सन् १००० हि० में सब बातें बदल जायँगी, नया युग आवेगा और उसके शासक आप ही होंगे। वह इस प्रसन्नता में ऐसा आपे से बाहर हो गया कि उसे जो बातें सन् १००० में करनी थीं, वे सब बातें वह पहले ही कर गुजरा। यहाँ तक कि सन् ९९० हि० में ही उसने सन् अलिफ (१००० का सूचक वर्ण) का सिक्का चला दिया; और नौरोज के जशन में भी बहुत सी नई नई बातें और विशेषताएँ उत्पन्न कीं। जशन के नियमों और रीतियों आदि में प्रति वर्ष कुछ न कुछ नई बातें, कुछ न कुछ विशेषताएँ होती थीं। पर आजाद उन सब को एक ही स्थान पर सजाता है।

दीवान आम और खास के चारों ओर १२० बड़े बड़े राज-प्रासाद थे, जो बहुत ही सुंदर और बहुमूल्य पत्थरों के बने थे। उनमें से एक एक प्रासाद एक एक बुद्धिमान् अमीर के

सुपुर्द इसलिये किया गया था कि वह उसे सजाकर अपनी योग्यता और उत्साह प्रदर्शित करे। एक ओर स्वयं बादशाह के रहने का आवास था, जो स्वयं शाही नौकरों के सुपुर्द होता था। वही लोग उसे सजाते थे। सभा-मंडल (मंडप) जो स्वयं बादशाह के बैठने का स्थान था, बहुत ही सुंदरतापूर्वक सजाया जाता था। सब मकानों के द्वारों और दीवारों पर पुर्तगाली बानातें, रूमी और काशानी मखमलें, बनारसी जरबफ्त और कमखाब, सेले, दुपट्टे, ताश, तमामी, गोटे-पट्ठे आदि लगाए जाते थे। काश्मीर की शालें लटकाई जाती थीं। पा-अंदाज की जगह ईरान और तुर्किस्तान की कालीनें बिछती थीं। फिरंग और चीन के रंग बिरंगे परदे लटकते थे। सुंदर सुंदर और अद्भुत चित्र, विलक्षण दर्पण, शीशे और बिल्लौर के कँवल, मृदंग, कंदीलें, झाड़, फानूस, कुमकुमे आदि लटकाए जाते थे। शामियाने और आसमानी खेमे ताने जाते थे। प्रासादों के आँगनों में वसंत ऋतु आकर फूल-पत्तों की सजावट करती थी और काश्मीर के उपवनों को तराशकर फतहपुर और आगरे में रख देती थी। इसे अत्युक्ति न समझना। जो कुछ आजाद आज लिख रहा है, वह उससे बहुत कम है, जो उस समय हुआ था। वह समय ही और था। उस समय जो कुछ हुआ था, वह वास्तविक रूप में हुआ था। आज वे सब बातें केवल स्वप्न और कल्पना हैं। उस समय ऐसी ऐसी अद्भुत सामग्रियाँ एकत्र थीं, जिन्हें देखकर बुद्धि चकरा जाती थी।

अगले जमाने के अमीरों को भी विलक्षण और अद्भुत पदार्थों के एकत्र करने का बहुत शौक होता था। और यह सामग्री जितनी ही अधिक होती थी, उनकी योग्यता और उनका उत्साह भी उतना ही अधिक समझा जाता था। यद्यपि अमीरों के लिये ये सब गुण आवश्यक थे, तथापि यह एक नियम है कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से कुछ खास खास चीजों का शौक होता है; बल्कि कुछ पद और मंसब कुछ विशिष्ट पदार्थों से संबंध रखते हैं। खानखानों

और खानआज़म के प्रासाद देश देश के विलक्षण पदार्थों के मानों संग्रहालय होते थे, जिनके द्वार और दीवारें वसंत ऋतु की चादर को हाथों पर फैलाए खड़ी होती थीं; और उनका एक एक खंभा एक एक बाग को बगल में दबाए खड़ा होता था। कई अमीर भारत तथा विदेशों से अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र आदि मँगाकर एकत्र करते थे। शाह फतहउल्ला ने अपने प्रासाद में विद्या और विज्ञान के अनेक पदार्थ एकत्र करके मानों ऐंद्रजालिक रचना रची थी और प्रत्येक बात में एक न एक विशेषता उत्पन्न की थी। घड़ियाँ और घंटे चलते थे। ज्योतिष संबंधी यंत्र, गोल, आकाशस्थ सितारों आदि के नकशे, और उनकी प्रत्यक्ष मूरतों में ग्रह और भिन्न भिन्न सौर जगत् चक्कर मारते थे। भार उठानेवाली कलें अपना काम कर रही थीं। भौतिक विज्ञान आदि से संबंध रखनेवाले अनेक अद्भुत पदार्थ क्षण क्षण पर रंग बदला करते थे।

युरोप के अच्छे अच्छे बुद्धिमान् उपस्थित थे। बेलान (बेलून) का खेमा खड़ा था। अरगनून या अरगन[1] बाजेवाला संदूक तरह तरह के स्वर सुनाता था। रूम और फिरंग देश की शिल्प-कला की अच्छी अच्छी और अनोखी चीजें बिलकुल जादू का काम और अचंभे की

१ खुलासह सन् ९८८ हि० में लिखते हैं कि बहुत ही विलक्षण अरगन बाजा आया। हाजी हबीबुल्ला फिरंगिस्तान से लाया था। बादशाह बहुत प्रसन्न हुए। दरबारियों को भी दिखलाया। आदमी के बराबर एक बड़ा संदूक था। एक फिरंगी अंदर बैठकर तार बजाता था। दो बाहर बैठते थे। संदूक में मोर के पर लगे थे। उनकी जड़ों पर वे उँगलियाँ मारते थे। क्या क्या स्वर निकलते थे कि आत्मा तक पर प्रभाव पड़ता था! फिरंगी क्षण क्षण पर कभी लाल और कभी पीला वेष धारण करके निकलते थे और क्षण क्षण पर रंग बदलते थे। विलक्षण शोभा थी। मजलिस के लोग चकित थे। उस समय की शोभा का ठीक ठीक और पूरा पूरा वर्णन हो ही नहीं सकता।

थीं। इन्होंने थिएटर का ही समाँ बाँध रखा था। जिस समय बादशाह आकर बैठा, उस समय युरोपीय बाजे ने बधाई का राग आरंभ किया। बाजे बज रहे थे। फिरंगी लोग क्षण क्षण पर अनेक प्रकार के रूप बदलकर आते थे और गायब हो जाते थे। बिलकुल परिस्तान की शोभा दिखाई देती थी।

अकबर केवल देश का सम्राट् न था; वह प्रत्येक कार्य और प्रत्येक गुण का सम्राट् था। वह सदा सब प्रकार की विद्याओं और कलाओं की उन्नति किया करता था। उसकी गुण-ग्राहकता ने युरोपीय बुद्धिमानों और गुणवानों को गोआ, सूरत और हुगली आदि बंदरों से बुलवाकर इस प्रकार बिदा किया कि युरोप के भिन्न भिन्न देशों से लोग उठ-उठकर दौड़े। अपने और दूसरे देशों के शिल्प और कला के अच्छे अच्छे पदार्थ लाकर भेंट किए। इस अवसर पर वे सब भी सजाए गए थे। भारत के कारीगरों ने भी उस अवसर पर अपनी कारीगरी दिखलाकर प्रशंसा और साधुवाद के फूल समेटे।

नौरोज से लेकर अठारह दिन तक सब अमीरों ने अपने अपने महल में दावत की। अकबर ने भी सब जगह जा जाकर वहाँ की शोभा बढ़ाई और निस्संकोच भाव से मित्रता-पूर्ण भेंट करके लोगों के हृदय में अपने प्रेम और एकता की जड़ जमाई। अमीरों ने अपने अपने पद के अनुसार अनेक पदार्थ भेंट स्वरूप सेवा में उपस्थित किए। गाने बजानेवाले काश्मीरी, ईरानी, तूरानी और हिंदुस्तानी अच्छे अच्छे गवैए, डोम, ढाढ़ी, मीरासी, कलावंत, गायक, नायक, सपरदाई, डोमनियाँ, पातुरें, कंचनियाँ हजारों की संख्या में एकत्र हुई। दीवान खास और दीवान आम से लेकर पार्श्वों के नक्कारखानों तक सब स्थान बँट गए थे। जिधर देखो, राजा इंदर का अखाड़ा है।

जशन की रस्में

जशन के दिन से एक दिन पहले शुभ साइत और शुभ लग्न में

एक सुहागिन जो अपने हाथ से दाल दलती थी। उसे गंगा जल में भिगोती थी। पीठी पीसकर रखती थी। जब जशन का समय समीप आता था, तब बादशाह स्नान करने के लिये जाता था। उस समय के नक्षत्रों आदि के विचार से किसी न किसी विशेष रंग का रंगीन जोड़ा तैयार रहता था। जामा पहना। राजपूती ढंग से खिड़कीदार पगड़ी बाँधी। सिर पर मुकुट रखा। कुछ अपने वंश के, कुछ हिंदुस्तानी गहने पहने। ज्योतिषी और नजूमी पोथी-पत्रा लिए बैठे हैं। जशन का मुहूर्त आया। ब्राह्मण ने माथे पर टीका लगाया; जड़ाऊ कंगन हाथ में बाँध दिया। कोयले दहक रहे हैं। सुगंधित द्रव्य उपस्थित हैं। हवन होने लगा। चौके में कड़ाई चढ़ी है। इधर उसमें बड़ा पड़ा, उधर बादशाह ने सिंहासन पर पैर रखा। नक़ारे पर चोट पड़ी। नौबतखाने में नौबत बजने लगी, जिससे आकाश गूँज उठा।

बड़े बड़े थालों और किश्तियों पर जरी के काम के रूमाल पड़े हुए हैं, जिनमें मोतियों की झालरें लटक रही हैं। अमीर लोग हाथों में लिए खड़े हैं। सोने और चाँदी के बने हुए बादाम, पिस्ते आदि मेवे, रुपए, अशर्फियाँ, जवाहिरात इस प्रकार निछावर होते हैं, जैसे ओले बरसते है। दरबार भी ईश्वरीय महिमा का ही द्योतक था। राजाओं के राजा-महाराज़ और ऐसे बड़े बड़े ठाकुर, जो आकाश के सामने भी सिर न झुकावें; ईरानी और तूरानी सरदार, जो रुस्तम और असफंद-यार को भी तुच्छ समझें, खोद, जिरह, बकतर, चार-आईना आदि पहने, सिर से पैर तक लोहे में डूबे हुए चित्र की भाँति चुपचाप खड़े हैं। शाहज़ादों के अतिरिक्त और किसी को बैठने की आज्ञा नहीं है। पहले शाहजादों ने और फिर अमीरों ने अपने अपने पद के अनुसार नजरें दीं। सलाम करने के स्थान पर गए। वहाँ से सिंहासन तक तीन बार आदाब और कोर्निश बजा लाए। जब चौथा सिजदा, जिसे आदाब-जमीनबोस कहते थे, किया, तब नकीब ने आवाज दी—"आदाब बजा लाओ! जहाँपनाह बादशाह सलामत! महाबली बादशाह सला-

सत !" राजकवि कवि-सम्राट् ने आकर बधाई का कसीदा पढ़ा। खिल-अत और पुरस्कार से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई गई।

वर्ष में दो बार तुलादान होता था एक नौरोज के दिन होता था। उसमें सोने की तराजू खड़ी होती थी। बादशाह बारह चीजों में तुलता था--सोना, चाँदी, रेशम, सुगंधित, द्रव्य, लोहा, ताँबा, जस्ता, तूतिया, घी, दूध, चावल और सतनजा। दूसरा तुलादान वर्ष-गाँठ के अवसर पर चांद्र गणना के अनुसार ५ रजब को होता था। उसमें चाँदी, कलई, कपड़ा, बारह प्रकार के मेवे, मिठाई, तिलों का तेल और तर-कारी होती थी। सब चीजें ब्राह्मणों और भिखमंगों आदि में बाँट दी जाती थीं। सौर गणना से जिस दिन बरस-गाँठ होती थी, उस दिन भी इसी हिसाब से तुलादान होता था।

मीना बाजार या जनाना बाजार

तुर्किस्तान में यह प्रथा है कि प्रत्येक नगर और प्रायः देहातों में सप्ताह में एक या दो बार बाजार लगते हैं। उस बस्ती के और उसके आस पास के पाँच पाँच छः छः कोस के लोग पिछली रात के समय अपने अपने घर से निकलते हैं और सूर्योदय के समय बाजार में आकर एकत्र होते हैं। स्त्रियाँ सिर पर बुरका और मुँह पर नकाब डाले आती हैं और रेशम, सूत, टोपियाँ, अपनी दस्तकारी के फुलकारी के रूमाल या दूसरे आवश्यक पदार्थ बेचती हैं। सभी पेशे के पुरुष भी अपनी अपनी चीजें लाकर बाजार में रखते हैं। मुरगी और अंडों से लेकर बहुमूल्य घोड़ों तक, गजी-गाढ़े से लेकर मूल्यवान् कालीनों तक, मेवों से लेकर अनाज, भूसे और घास तक, तेल, घी, बढ़ई और लोहारी के काम, यहाँ तक कि मिट्टी के बरतन भी बिकने के लिये आते हैं और दोपहर तक सब बिक जाते हैं। प्रायः लेन देन पदार्थों के विनि-मय के रूप में ही होता है। अकबर ने इसमें भी बहुत कुछ सुधार करके इसकी शोभा बढ़ाई। आईन अकबरी में लिखा है कि प्रति मास साधारण

बाजार के तीसरे दिन किले में जनाना बाजार लगता था। संभवतः यह केवल नियम बन गया होगा, और इसका पालन कभी कभी होता होगा।

जब लोग जशन की शोभा बढ़ाने में अपनी योग्यता और सामर्थ्य आदि के सब भांडार खाली कर चुकते थे और सजावट की भी सारी कारीगरी खर्च हो चुकती थी, तब उन्हीं प्रासादों में, जो वास्तव में आविष्कार, बुद्धि और योग्यता के बाजार थे, जनाना हो जाता था। वहाँ महलों की बेगमें इसलिये लाई जाती थीं कि जरा उनकी भी आँखें खुलें और वे योग्यता की आँखों में सुघड़ापे का सुरमा लगावें। अमीरों और रईसों आदि की स्त्रियों को भी आज्ञा थी कि जो चाहे, सो आवे और तमाशा देखे। सब दूकानों पर स्त्रियाँ बैठ जाती थीं। सब सौदा भी प्रायः जनाना रखा जाता था। ख्वाजासरा, कलमाकनियाँ[1], उर्दू बेगनियाँ युद्ध के अस्त्र शस्त्र लेकर प्रबंध के घोड़े दौड़ाती फिरती थीं। पहरे पर भी स्त्रियाँ ही होती थीं। मालियों के स्थान पर मालिनें बाग आदि सजाती थीं। इसका नाम खुशरोज रखा गया था।

स्वयं अकबर भी इस बाजार में आता था और अपनी प्रजा की बहू-बेटियों को देखकर ऐसा प्रसन्न होता था कि माता-पिता भी उतने प्रसन्न न होते होंगे। वह कोई उपयुक्त स्थान देखकर बैठ जाता था। बेगमें, बहनें और कन्याएँ पास बैठती थीं; अमीरों की स्त्रियाँ आकर सलाम करती थीं; नजरें देती थीं, अपने बच्चों को सामने उपस्थित करती थीं। उनके वैवाहिक संबंध वहीं बादशाह के सामने निश्चित होते थे; और वास्तव में यह शासन का एक अंग था, क्योंकि यही लोग साम्राज्य के स्तंभ थे। आपस में शतरंज के मोहरों का सा संबंध रखते थे और सबको एक दूसरे का जोर पहुँचता था। इनके पारस्परिक

१ कलमाकनी=उर्दू बेगनियों की भाँति पहरा देनेवाली सशस्त्र स्त्रियाँ जिन्हें विवाह करने की आज्ञा नहीं होती थी।

प्रेम और द्वेष, एकता और विरोध; व्यक्तिगत हानि और लाभ का प्रभाव बादशाह के कार्यों तक पर पड़ता था[1]। इनके वैवाहिक संबंधों का निश्चय इस जशन के समय अथवा और किसी अवसर पर एक अच्छा और शुभ तमाशा दिखलाते थे। कभी कभी दो अमीरों में ऐसा वैमनस्य होता था कि दोनों अथवा उनमें से कोई एक राजी न होता था; और बादशाह चाहता था कि उनमें बिगाड़ न रहे, बल्कि मेल हो जाय। इसका यही उपाय था कि दोनों घर एक हो जायँ। जब वे लोग किसी प्रकार न मानते थे, तब बादशाह कहता था कि अच्छा, यह लड़का और यह लड़की दोनों हमारे हैं। तुम लोगों का इनसे कोई संबंध नहीं। वह अथवा उसकी स्त्री भी प्रेमपूर्ण नखरे से कहती थी कि यह दासी भी इस बच्चे को छोड़ देती है। हम लोगों ने इसे भी आखिर हुजूर के लिये ही पाला था। हम लोगों ने अपना

१ अब्दुलरहीम खानखानाँ को ही देखो, जो बिना पिता का पुत्र है और जो बैरमखाँ का पुत्र है। अब तक कुछ अमीर दरबार में ऐसे हैं जिनके मन में वह काँटे सा खटक रहा है; इसलिये उसका विवाह शम्सुद्दीन मुहम्मदखाँ अतका की कन्या अर्थात् खान आजम मिरजा अजीज कोका की बहन से कर दिया। अब भला मिरजा अजीज कोको कब चाहेगा कि अब्दुल रहीम को कोई हानि पहुँचे और बहन का घर नष्ट हो। और जब अब्दुल रहीम के घर में अतका की कन्या और खान आजम की बहन हो, तब उसके मन में कब यह ध्यान बाकी रह सकता है कि इसका पिता मेरे पिता के सामने तलवार खींचकर आया था और खूनी लश्कर लेकर उसके सामने हुआ था। खानखानाँ की कन्या से अपने पुत्र दानियाल का विवाह कर दिया। चार-हजारी मंसबदार सेनापति कुलीचखाँ की कन्या से मुराद का विवाह कर दिया। सलीम (जहाँगीर) को मानसिंह की बहन व्याही थी और उसके पुत्र खुसरो से खान आजम की कन्या का विवाह कर दिया था। इसमें बुद्धिमत्ता यह थी कि प्रत्येक शाहजादे और अमीर को परस्पर इस प्रकार संबद्ध कर दें कि एक का बल दूसरे को हानि न पहुँचा सके।

परिश्रम भर पाया। पिता कहता था कि यह बहुत ही शुभ है; पर इस सेवक का इसके साथ कोई संबंध न रह जायगा। यह दास अपना कर्त्तव्य पूरा कर चुका। बादशाह कहता था—"बहुत ठीक, हमने भी भर पाया।" कभी विवाह का भार बेगम ले लेती थी और कभी बादशाह; और विवाह की व्यवस्था इतनी उत्तमता से हो जाती थी, जितनी उत्तमता से माता-पिता से भी न हो सकती।

संसार की सभी बातें बहुत नाजुक होती हैं। कोई बात ऐसी नहीं होती जिसमें लाभ के साथ साथ हानि का खटका न हो। इसी प्रकार के आने जाने में सलीम (जहाँगीर) का मन जैन खाँ कोका की कन्या पर आ गया और ऐसा आया कि वश में ही न रहा। कुशल यही थी कि अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ था। अकबर ने स्वयं विवाह कर दिया। परंतु शिक्षा ग्रहण करने योग्य वह घटना है, जो बड़े लोगों के मुँह से सुनी है। अर्थात् मीना बाजार लगा हुआ था। बेगमें पड़ी फिरती थीं, जैसे बागों में कुमरियाँ या हरियाली में हिरनियाँ। जहाँगीर उन दिनों नवयुवक था। बाजार में घूमता हुआ बाग में आ निकला। हाथ में कबूतरों का जोड़ा था। सामने एक खिला हुआ फूल दिखाई दिया, जो उस मद की अवस्था में बहुत भला जान पड़ा। चाहा कि तोड़ ले, पर दोनों हाथ रुके हुए थे। वहीं ठहर गया। सामने से एक लड़की आई। शाहजादे ने कहा कि जरा हमारे कबूतर तुम ले लो, हम वह फूल तोड़ लें। लड़की ने दोनों कबूतर ले लिए। शाहजादे ने क्यारी में जाकर कुछ फूल तोड़े। जब लौटकर आया, तब देखा कि लड़की के हाथ में एक ही कबूतर है! पूछा—दूसरा कबूतर क्या हुआ? निवेदन किया—पृथ्वीनाथ, वह तो उड़ गया। पूछा—हैं! कैसे उड़ गया? उसने हाथ बढ़ाकर दूसरी मुट्ठी भी खोल दी और कहा कि हुजूर, ऐसे उड़ गया। यद्यपि दूसरा कबूतर भी हाथ से निकल गया था, पर शाहजादे का मन उसके इस भोलेपन पर लोट पोट हो गया। पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? निवेदन किया—मेहरुन्निसा खानम।

पूछा—तुम्हारे पिता का क्या नाम है ? निवेदन किया--मिरजा गयास। हुजूर का नाजिस है। कहा—और अमीरों की कन्याएँ हमारे यहाँ महल में आया करती हैं। तुम हमारे यहाँ नहीं आतीं ! उसने निवेदन किया कि मेरी माता तो जाती है, पर मुझे अपने साथ नहीं ले जाती। आज भी बहुत मिन्नत खुशामद करने पर यहाँ लाई है। कहा--तुम अवश्य आया करो। हमारे यहाँ बहुत अच्छी तरह परदा रहता है। कोई पराया नहीं आता।

लड़की सलाम करके विदा हुई। जहाँगीर बाहर आया। पर दोनों को ध्यान रहा। भाग्य की बात है कि फिर जब मिरजा गयास की स्त्री बेगम को सलाम करने को जाने लगी, तो लड़की के कहने से उसे भी साथ ले लिया। बेगम ने देखा, इस बाल्यावस्था में भी उसमें अदब-कायदा और सब बातों की अच्छी योग्यता थी। उसकी सब बातें बेगम को बहुत भली जान पड़ीं। उसकी बातचीत भी बहुत प्यारी लगी। बेगम ने कहा कि इसे भी तुम अपने साथ अवश्य लाया करो। धीरे धीरे आना जाना बढ़ गया। अब शाहजादे की यह दशा हो गई कि जब वह वहाँ आती थी, तब यह भी वहाँ जा पहुँचता था। वह दादी के पास सलाम करने के लिये जाती थी, तो यह वहाँ भी जा पहुँचता था और किसी न किसी बहाने से उससे बातचीत करता था। और जब बातचीत करता था, तब उसका रंग ही कुछ और होता था; उसकी दृष्टि को देखो, तो उसका ढंग ही कुछ और होता था। तात्पर्य यह कि बेगम ताड़ गई। उसने एकांत में बादशाह से निवेदन किया। अकबर ने कहा कि मिरजा गयास की स्त्री को समझा दो कि वह कुछ दिनों तक अपने साथ कन्या को यहाँ न लावे; और मिरजा गयास से कहा कि तुम अपनी कन्या का विवाह कर दो।

जब खानखानाँ भक्कर के युद्ध में गया हुआ था, तब ईरान से तहमास्पकुली बेग नामक एक कुलीन वीर नवयुवक आया था और उक्त युद्ध में कई अच्छे कार्य करके खानखानाँ के मसाहबों में संमिलित

हो गया था। वह सज्जनों का आदर करनेवाला उसे अपने साथ लाया था और अकबर से उसकी सेवाएँ निवेदन करके उसे दरबार में प्रविष्ट करा दिया था। उसने वीरता और पौरुष के दरबार से शेर अफगन की उपाधि प्राप्त की थी। बादशाह ने उसीके साथ मिरजा गयास की कन्या का विवाह निश्चित कर दिया और शीघ्र ही विवाह भी कर दिया। यही विवाह उस युवक के लिये घातक हुआ। यद्यपि उपाय में कोई कसर नहीं की गई थी, पर भाग्य के आगे किसका बस चल सकता है। परिणाम वही हुआ, जो नहीं होना चाहिए था। शेर अफगन युवावस्था में ही मर गया। मेहरउन्निसा विधवा हो गई। थोड़े दिनों बाद जहाँगीर के महलों में आकर नूरजहाँ बेगम हो गई। न तो जहाँगीर रहा और न नूरजहाँ रही। दोनों के नामों पर एक धब्बा रह गया।

बैरमखाँ खानखानाँ

जिस समय अकबर ने शासन का सारा कार्य अपने हाथ में लिया था, उस समय देशों पर अधिकार करनेवाला यह अमीर दरबार में नहीं रह गया था। परंतु इस बात से किसी को इन्कार नहीं हो सकता कि भारत में केवल अकबर ही नहीं, बल्कि हुमायूँ के राज्य की भी इसी ने दो बार नींव डाली थी। फिर भी मैं सोचता था कि इसे अकबरी दरबार में लाऊँ या न लाऊँ। सहसा उसकी वे सेवाएँ, जो उसने जान लड़ाकर की थीं और वे युक्तियाँ जो कभी चूकती नहीं थीं, सिफारिश के लिये आईं। साथ ही उसके शेरों के से आक्रमण और रुस्तम के से युद्ध भी सहायता के लिये आ पहुँचे। वे राजसी ठाट बाट के साथ उसे लाए। अकबर के दरबार में उसे सबसे पहला और ऊँचा स्थान दिया और शेरों की भाँति गरजकर कहा कि यह वही सेनापति है, जो अपने एक हाथ में शाही झंडा लिए हुए था। वह जिसकी ओर उस झंडे की छाया कर देता, वह सौभाग्यशाली हो

जाता। उसके दूसरे हाथ में मंत्रियोंवाली राजनीतिक युक्तियों का भांडार था, जिसकी सहायता से वह साम्राज्य को जिस ओर चाहता, उसी ओर फेर सकता था। उसकी नीयत भी सदा अच्छी रहती थी और वह काम भी सदा अच्छे ही किया करता था। ईश्वर-दत्त प्रताप उसका सहायक था। वह जिस काम में हाथ डालता था, वही काम पूरा हो जाता था। यही कारण है कि समस्त इतिहास-लेखकों की जबानें इसकी प्रशंसा में सूख जाती हैं। किसी ने बुराई के साथ इसका कोई उल्लेख ही नहीं किया। मुल्ला साहब ने ऐतिहासिक विवरण देते हुए अनेक स्थानों में इसका उल्लेख किया है। पुस्तक के अंत में उसने कवियों के साथ भी इसे स्थान दिया है। वहाँ बहुत ही गंभीरतापूर्वक पर संक्षेप में इसका सारा विवरण दिया है। खानखानाँ के स्वभाव और व्यवहार आदि का इससे अच्छा वर्णन, इसके गुणों और योग्यता का इससे अच्छा प्रमाण-पत्र और कोई हो ही नहीं सकता। मैं इसका अविकल अनुवाद यहाँ देता हूँ। लोग देखेंगे कि इसका यह संक्षिप्त विवरण उसके विस्तृत विवरण से कितना अधिक मिलता है; और समझेंगे कि मुल्ला साहब भी वास्तविक तत्व तक पहुँचने में किस कोटि के मनुष्य थे। उक्त विवरण का अनुवाद इस प्रकार है—

"वह मिरजा शाह जहान की संतान था। बुद्धिमत्ता, उदारता, सत्यता, सद्व्यवहार और नम्रता में सब से आगे बढ़ गया था। प्रारंभिक अवस्था में वह बाबर बादशाह की सेवा में और मध्य अवस्था में हुमायूँ बादशाह की सेवा में रहकर बढ़ा चढ़ा था; और खानखानाँ की उपाधि से विभूषित हुआ था। फिर अकबर ने समय समय पर उसकी उपाधियों में और भी वृद्धि की। वह त्यागियों आदि का मित्र था और सदा अच्छी अच्छी बातें सोचा करता था। भारत जो दोबारा विजित हुआ और बसा, वह भी उसी के उद्योग, वीरता और कार्य-कुशलता के कारण। सभी देशों के बड़े बड़े विद्वान् चारों ओर से आकर उसके पास एकत्र होते थे और उसके नदी-तुल्य हाथ से लाभ

उठाकर जाते थे। विद्वानों और निपुणों के लिये उसका दरबार मानों केंद्र-तीर्थ था और जमाना उसके शुभ अस्तित्व के कारण अभिमान करता था। उसकी अंतिम अवस्था में कुछ लड़ाई लगानेवालों की शत्रुता के कारण बादशाह का मन उसकी ओर से फिर गया और वहाँ तक नौबत पहुँची, जिसका उल्लेख वार्षिक विवरण में किया गया है।"

शेख दाऊद जहनीवाल का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—"बैरम खाँ के काल में, जो औरों के काल से कहीं अच्छा था और भारत-भूमि दुलहिनों का सा अधिकार रखती थी, आगरे में विद्याध्ययन किया करता था।"

मुहम्मद कासिम फरिश्ता ने इनकी वंशावली अधिक विस्तार से दी है; और हफ्त अकलीम नामक ग्रंथ में उससे भी और अधिक दी है, जिसका सारांश यह है कि ईरान के कराकूइल जाति के तुर्कमानों में के बहारलो वर्ग में से अली शकरबेग तुर्कमान नामक एक प्रसिद्ध सरदार था, जिसका संबंध तैमूर के वंश से था। वह हमदान देश, दीनवर, कुर्दिस्तान और उसके आसपास के प्रदेशों का हाकिम था। हफ्त अकलीम नामक ग्रंथ अकबर के शासन-काल में बना था। उसमें लिखा है कि अब तक वह इलाका "कलमरौ[1] अलीशकर" के नाम से प्रसिद्ध है। अली शकर के वंशजों में शेरअली बेग नामक एक सरदार था। जब सुलतान हुसैन बायकरा के उपरांत साम्राज्य नष्ट हो गया, तब शेरअली बेग काबुल की ओर आया और सीस्तान आदि से सेना एकत्र करके शीराज पर चढ़ गया। वहाँ से पराजित होकर फिरा। पर फिर भी वह हिम्मत न हारा। इधर उधर से सामग्री एकत्र करने लगा। अंत में बादशाही लश्कर आया और शेर अली युद्ध-क्षेत्र में वीरगति को प्राप्त हुआ। उसका पुत्र यारअली बेग और पोता सैफअली बेग दोनों फिर अफगानिस्तान में आए।

---

१ राज्य।

यारअली बेग बाबर की सहायता करके गजनी का हाकिम हो गया; पर थोड़े ही दिनों में मर गया। सैफअली बेग अपने पिता के स्थान पर नियुक्त हुआ; पर आयु ने उसका साथ न दिया। उसका एक प्रतापी छोटा पुत्र था, जो बैरमखाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सैफअली बेग की मृत्यु ने उसके घरवालों का ऐसा दिल तोड़ दिया कि वे वहाँ न रह सके और छोटे से बच्चे को लेकर बलख में चले आए। वहाँ उनके वंश के कुछ लोग रहते थे। वह बालक कुछ दिनों तक उन्हीं में रहा। वहीं उसने कुछ पढ़ा-लिखा और होश सँभाला।

जब बैरमखाँ नौकरी के योग्य हुआ, तब हुमायूँ शाहजादा था। बैरम आकर नौकर हुआ। उसने विद्या तो थोड़ी बहुत उपार्जित की थी, पर वह मिलनसार बहुत था और लोगों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करता था। दरबार और महफिल के अदब-कायदे जानता था और उसकी तबीयत बहुत अच्छी थी। संगीत विद्या का भी वह अच्छा ज्ञान रखता था और एकांत में स्वयं भी गाता बजाता था। इसलिये वह अपने समवयस्क स्वामी का मुसाहब हो गया। एक युद्ध में उसके द्वारा ऐसा अच्छा काम हो गया कि सहसा उसकी बहुत प्रसिद्धि हो गई। उस समय उसकी अवस्था सोलह वर्ष की थी। बाबर बादशाह ने उसे स्वयं बुलाया और उससे बातें करके उसका हाल पूछा और उस नवयुवक वीर का बहुत अधिक उत्साह बढ़ाया। वह रंग ढंग से बहुत होनहार जान पड़ता था और उसके ललाट से प्रताप प्रकट होता था। ये बातें देखकर बाबर ने उसकी बहुत कदर की और कहा कि तुम शाहजादे के साथ दरबार में उपस्थित हुआ करो। फिर पीछे से उसे अपनी सेवा में ले लिया। वह सुयोग्य और सुशील बालक अपने उत्तम कार्यों और सेवाओं के अनुसार उन्नति करने लगा; और जब हुमायूँ बादशाह हुआ, तब उसकी सेवा में रहने लगा।

उस दयालु स्वामी और स्वामिनिष्ठ सेवक के सब हाल देखने पर

जान पड़ता है कि दोनों में केवल प्रेम ही न था, बल्कि एक स्वाभाविक मेल था, जिसका ठीक ठीक वर्णन हो ही नहीं सकता। हुमायूँ दक्खिन के युद्ध में चाँपानेर के दुर्ग को घेरे पड़ा था। दुर्ग ऐसे बेढब स्थान में था कि उसका हाथ आना बहुत कठिन था। बनानेवालों ने उसे ऐसे ही अवसरों के लिये बिलकुल खड़े पहाड़ों की चोटी पर बनाया था और उसके चारों ओर सघन बन रखा था। उस समय शत्रु पक्ष के लोग बहुत सा अन्न पानी भरकर निश्चिंततापूर्वक अंदर बैठे थे। हुमायूँ किले को घेरे बाहर पड़ा था। कुछ समय बीतने पर पता चला कि एक ओर से जंगल के लोग रसद आदि लेकर आते हैं और किलेवाले ऊपर से रस्से डालकर खींच लेते हैं। हुमायूँ ने लोहे और काठ की बहुत सी मेखें बनवाईं और एक रात को उसी चोर रास्ते की ओर गया। पहाड़ में और किले की दीवार में मेखें गड़वाकर रस्से डलवाए, सीढ़ियाँ लगवाईं और तब दूसरे पार्श्वों से युद्ध आरंभ कर दिया। किलेवाले लड़ाई के लिये उधर झुके। इधर से पहले उन्तालीस वीर जान पर खेलकर रस्सों और सीढ़ियों पर चढ़े और उनके उपरांत चालीसवाँ वीर स्वयं बैरमखाँ था। उसने कमंद पर चढ़ने के समय अच्छी दिल्लगी की। ऊपर चढ़ने के लिये हुमायूँ ने रस्सी की एक गाँठ पर पैर रखा। बैरमखाँ ने कहा कि जरा ठहर जाइए, मैं जोर देकर देख लूँ कि रस्सी मजबूत है न। हुमायूँ पीछे हटा। इसने चट गाँठ पर पैर रखा और चार कदम मारकर किले की दीवार पर दिखाई देने लगा। तात्पर्य यह कि दिन चढ़ते चढ़ते जान पर खेलनेवाले और तीन सौ वीर किले में पहुँच गए। फिर स्वयं बादशाह भी वहाँ जा पहुँचा। अभी भली भाँति सबेरा भी नहीं हुआ था कि किला जीत लिया गया और उसका द्वार खुल गया।

सन् ९४६ हि० में चौसे में शेरशाह-वाला जो पहला युद्ध हुआ था, उसमें बैरमखाँ ने सब से पहले साहस दिखलाया। वह अपनी सेना लेकर बढ़ गया और शत्रु पर जा पड़ा। उसने वीरोचित आक्रमणों

और तुर्कोंवाली धूमधाम से शत्रु की सेना को तितर बितर कर दिया और उसके लश्कर को उलटकर फेंक दिया। पर उसके साथ के अमीर कोताही कर गए, इसलिये वह सफल न हुआ और युद्ध ने तूल खींचा। परिणाम यह हुआ कि शत्रु विजयी हुआ और हुमायूँ पराजित होकर आगरे भाग आया। यह स्वामिनिष्ठ सेवक कभी तलवार बनकर अपने स्वामी के आगे रहा और कभी ढाल बनकर पीठ पर रहा। दूसरा युद्ध कन्नौज के पास हुआ। पर हुमायूँ के भाग्य ने यहाँ भी साथ न दिया और दुर्भाग्यवश वह वहाँ भी पराजित हुआ। उसके अमीर और सैनिक इस प्रकार तितर बितर हुए कि एक को दूसरे का ध्यान ही न रहा। वे सब मारे गए, डूब गए, भाग गए या जंगलों में जाकर मर गए। उन्हीं में बैरमखाँ भी भागा[1] और संभल की ओर जा निकला। संभल के रईस मियाँ अब्दुलवहाब से इसका पहले का मेल जोल था। उन्होंने इसे अपने घर में रख लिया। पर ऐसा प्रसिद्ध आदमी कहाँ तक छिप सकता था; इसलिये उसे लखनऊ के राजा मित्रसेन के पास भेज दिया और कहला दिया कि इसे तुम कुछ दिनों तक अपने जंगली प्रदेश में रखो। वहीं यह बहुत दिनों तक रहा। संभल के हाकिम नसीरखाँ को समाचार मिल गया। उसने मित्रसेन के पास आदमी भेजा। मित्रसेन की क्या मजाल थी कि शेरशाही अमीर के आदमियों को टाल देता। विवश होकर उसने उसे भेज दिया। नसीरखाँ ने उसे मरवा डालना चाहा। उसी अवसर पर शेरशाह का भेजा हुआ ईसा खाँ, जो अफगानों का बुड्ढा अमीरजादा था, आया था। मियाँ अब्दुलवहाब के साथ उसकी सिकंदर लोदी के समय से मित्रता चली आती थी। मियाँ ने ईसा खाँ से कहा कि अत्याचारी नसीर खाँ ऐसे प्रसिद्ध और साहसी सरदार की हत्या करना चाहता है। यदि तुमसे हो सके, तो इसे बचाने में कुछ सहायता करो। मियाँ और

---

[1] देखो तारीख़-शेरशाही जो अकबर की आज्ञा से लिखी गई थी।

उनके वंश के सत्व का सब लोग आदर करते थे। ईसाखाँ गए और बैरमखाँ को कैद से छुड़ाकर अपने घर ले आए।

शेरशाह ने ईसा खाँ को एक युद्ध में सहायता देने के लिये बुला भेजा। वह मालवे के रास्ते में जाकर मिले। बैरमखाँ को साथ लेते गए थे। उसका भी जिक्र किया। उसने मुँह बनाकर पूछा कि अब तक कहाँ था? ईसा खाँ ने कहा कि उसने शेख मल्हन कत्ताल के यहाँ आश्रय लिया था। शेरशाह ने कहा कि मैंने उसे क्षमा कर दिया। ईसा खाँ ने कहा कि आपने इसके प्राण तो उनकी खातिर से छोड़ दिए, अब घोड़ा और खिलअत मेरी सिफारिश से दीजिए। और ग्वालियर से अब्दुल कासिम आया है; आज्ञा दीजिए कि यह उसी के पास उतरे। शेरशाह ने स्वीकृत कर लिया।

शेरशाह समय पड़ने पर लगावट भी ऐसी करते थे कि बिल्ली को मात कर देते थे। बैरमखाँ की सरदारी की अब भी धाक बँधी हुई थी। शेरशाह भी जानते थे कि यह बहुत गुणी और बहुत काम का आदमी है। ऐसे आदमी के वे स्वयं दास हो जाते थे और उससे काम लेते थे। इसी लिये जब बैरम खाँ सामने आया, तब वे उठकर खड़े हुए और गले मिले। देर तक बातें कीं। स्वामिनिष्ठा और सत्यनिष्ठा के विषय में बातें होती थीं। शेरशाह देर तक उसे प्रसन्न करने के उद्देश्य से बातें करते रहे। उसी सिलसिले में उनकी जबान से निकला कि जो सत्यनिष्ठ होता है, उससे कोई अपराध नहीं होता[१]। वह जलसा बरखास्त हुआ। शेरशाह ने उस मंजिल से कूच किया। यह और अब्दुल-कासिम भागे। मार्ग में शेरशाह का राजदूत मिला। वह गुजरात से आता था और इनके भागने का समाचार सुन चुका था। पर पहले कभी भेंट न हुई थी। उसे देखकर कुछ संदेह हुआ। अब्दुलकासिम लंबा चौड़ा और सुंदर जवान था। उसने समझा कि यही बैरमखाँ

१ هرکه اخلاص دارد خطا نمیکند ×

है। उसी को पकड़ लिया। धन्य है बैरमखाँ की वीरता और नेकनीयती कि उसने स्वयं आगे बढ़कर कहा कि इसे क्यों पकड़ा है? बैरमखाँ तो मैं हूँ। पर उससे भी बढ़कर धन्य अब्दुलकासिम था, जिसने कहा कि यह तो मेरा दास है, पर बहुत स्वामिनिष्ठ है। मेरे नमक पर अपनी जान निछावर करना चाहता है। इसे छोड़ दो। पर सच तो यह है कि दिना मृत्यु आए न तो कोई मर सकता है और न मृत्यु आने पर कोई बच सकता है। वह बेचारा शेरशाह के सामने आकर मारा गया और बैरमखाँ मृत्यु को मुँह चिढ़ाकर साफ निकल गया। शेरशाह को भी पता लगा। इस घटना को सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ और उसने कहा कि जब उसने हमारे उत्तर में कहा था कि "यही बात है कि जिसमें सत्यनिष्ठा होती है, वह कोई अपराध नहीं कर सकता" [१] उसी समय हमें खटका हुआ था कि यह ठहरनेवाला आदमी नहीं है। जब ईश्वर ने फिर अपनी महिमा दिखलाई, अकबर का शासन-काल आया और बैरमखाँ के हाथ में सब प्रकार का अधिकार आया, तब एक दिन किसी मुसाहब ने पूछा कि ईसाखाँ ने उस समय आप के साथ कैसा व्यवहार किया था? खानखानाँ ने कहा कि मेरे प्राण उन्होंने बचाए थे। क्या करूँ, वे इधर आए ही नहीं। यदि आवें तो कम से कम चँदेरी का इलाका उनकी भेंट करूँ। बैरमखाँ वहाँ से गुजरात पहुँचा। सुलतान महमूद से मिला। वह भी बहुत चाहता था कि यह मेरे पास रहे। यह उससे हज का बहाना करके बिदा हुआ और सूरत पहुँचा। वहाँ से अपने प्यारे स्वामी का पता लेता हुआ सिंध की सीमा में जा पहुँचा। हुमायूँ का हाल सुन ही चुके हो कि कन्नौज के मैदान से भागकर आगरे में आया था। उसका भाग्य उससे विमुख था। उसके भाई मन में कपट रखते थे। सब अमीर भी साथ देनेवाले नहीं थे। सब ने यही कहा कि अब यहाँ कुछ नहीं हो सकता। अब लाहौर चलकर और वहीं बैठकर परामर्श होगा। लाहौर पहुँचकर भला क्या होना

१. چلن راست ہو کہ جوہر اخلاص ، داود حط نمونہ ×

था। कुछ भी न हुआ। हाँ यह अवश्य हुआ कि शत्रु दबाए चला आया। विफल-मनोरथ बादशाह ने जब देखा कि धोखा देनेवाले भाई समय टाल रहे हैं, उनकी मुझे फँसाने की नीयत है और शत्रु सारे भारत पर अधिकार करता हुआ व्यास नदी के किनारे सुलतानपुर तक आ पहुँचा है, तब विवश होकर उसने भारत का ध्यान छोड़ दिया और सिंध की ओर चल पड़ा। तीन बरस तक वह वहीं अपने भाग्य की परीक्षा करता रहा। जिस समय बैरमखाँ वहाँ पहुँचा था, उस समय हुमायूँ सिंध नदी के तट पर जौन नामक स्थान में अरगूनियों से लड़ रहा था। नित्य युद्ध हो रहे थे। यद्यपि वह उन्हें बराबर परास्त करता था, पर उसके साथी एक एक करके मारे जा रहे थे; और जो बचे भी थे, उनसे यह आशा नहीं थी कि ये पूरा पूरा साथ देंगे। खानखानाँ जिस दिन पहुँचा, उस दिन सन् ९५० हि० के मुहर्रम मास की ५ वीं तारीख थी। लड़ाई हो रही थी। बैरमखाँ ने आकर दूर से ही एक दिल्लगी की। बादशाह के पास पहुँचकर पहले उसे सलाम भी न किया। सीधा युद्ध-क्षेत्र में जा पहुँचा। अपने टूटे फूटे सेवकों को क्रम से खड़ा किया और तब एक उपयुक्त अवसर देखकर शेरों की तरह गरजता हुआ वीरोचित आक्रमण करने लगा। लोग चकित हो गए कि यह कौन दैवी दूत है और कहाँ से सहायता करने के लिये आ गया। देखें तो बैरमखाँ है। सारी सेना मारे आनंद के चिल्लाने लगी। उस समय हुमायूँ एक ऊँचे स्थान पर खड़ा हुआ युद्ध देख रहा था। वह भी चकित हो गया। उसकी समझ में न आया कि यह क्या मामला है। उस समय कुछ सेवक उसकी सेवा में उपस्थित थे। एक आदमी दौड़कर आगे बढ़ा और समाचार लाया कि खानखानाँ आ पहुँचा।

यह वह समय था जब कि हुमायूँ विफल-मनोरथ होने के कारण निराश होकर भारत से चलने के लिये तैयार था। पर उसका कुम्हलाया हुआ मन फिर प्रफुल्लित हो गया और उसने ऐसे प्रतापी जान निछावर करनेवाले के आगमन को एक शुभ शकुन समझा। जब वह आया, तब

हुमायूँ ने उठकर उसे गले लगाया। दोनों मिलकर बैठे। बहुत दिनों की बिछुड़ियाँ थीं। दोनों ने अपनी अपनी कहानियाँ सुनाईं। बैरमखाँ ने कहा कि यहाँ किसी प्रकार की आशा नहीं है। हुमायूँ ने कहा— “चलो, जिस मिट्टी से आप दादा उठे थे, उसी मिट्टी पर चलकर बैठें।” बैरमखाँ ने कहा कि जिस जमीन से श्रीमान के पिता ने कोई फल न पाया, उससे श्रीमान् क्या पावेंगे। ईरान चलिए। वहाँ के लोग अति-थियों का सत्कार करनेवाले हैं। श्रीमान अपने पूर्वज अमीर तैमूर का स्मरण करें। उनके साथ शाह सफी ने कैसा व्यवहार किया था। उन्हीं शाह सफी की संतान ने दो बार श्रीमान् के पिता को सहायता दी थी। मावरा-उल्-नहर देश पर उनका अधिकार करा दिया था। अमना, न अमना ईश्वर के अधिकार में है, इसलिये अब वह रहे या न रहे। और फिर ईरान इस सेवक और सेवक के पूर्वजों का देश है। वहाँ की सब बातों से यह सेवक भली भाँति परिचित है। हुमायूँ की समझ में भी यह बात आ गई और उसने ईरान की ओर प्रस्थान किया।

उस समय बादशाह और उसके साथी अमीरों की दशा लुटे हुए यात्रियों की सी थी। अथवा यों कहिए कि उसके साथ थोड़े से स्वामि-भक्तों का एक छोटा दल था, जिसमें नौकर चाकर सब मिलाकर सत्तर आदमियों से अधिक न थे। पर जिस पुस्तक में देखो, बैरमखाँ का नाम सब से पहले मिलता है। और यदि सच पूछो तो उन स्वामि-भक्तों की सूची का अग्र भाग इसी के नाम से सुशोभित भी होना चाहिए। वह युद्ध-क्षेत्र का वीर और राजसभा का मुसाहब अपने प्यारे स्वामी के साथ छाया की भाँति लगा रहता था। जब किसी नगर के पास पहुँचता, तब आप आगे जाता और इतनी सुंदरता से अपना अभि-प्राय प्रकट करता था कि जगह जगह राजसी ठाठ से स्वागत और बहुत ही धूमधाम से दावतें होती थीं। कजवीन नामक स्थान से ईरान के शाह के पास एक पत्र लेकर गया और दूतत्व का कार्य इतनी उत्तमता से किया कि अतिथि-सत्कार करनेवाले शाह की आँखों में पानी भर आया।

उसने बैरमखाँ का भी यथेष्ट आदर-सत्कार किया और आतिथ्य भी बहुत ही प्रतिष्ठापूर्वक किया। हुमायूँ के पत्र के उत्तर में उसने जो पत्र लिखा, उसमें उसकी बहुत ही प्रतिष्ठा करते हुए उससे भेंट करने की अपनी इच्छा प्रकट की; बल्कि यहाँ तक लिखा कि यदि मेरे यहाँ आपका आगमन हो, तो मैं इसे अपना परम सौभाग्य समझूँगा।

हुमायूँ जब तक ईरान में था, तब तक बैरमखाँ भी छाया की भाँति उसके साथ था। हर एक काम और सँदेसा उसी के द्वारा भुगतता था। बल्कि शाह प्रायः स्वयं ही बैरमखाँ को बुला भेजता था; क्योंकि उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण और मजेदार बातें, कहानियाँ, कविताएँ, चुटकुले आदि सुनकर वह भी परम प्रसन्न होता था। शाह यह भी समझ गया था कि यह खानदानी सरदार नमकहलाली और स्वामिनिष्ठा का गुण रखता है। इसी लिये उसने नक्कारे और झंडे के साथ खान का खिताब दिया था। जरगा नामक शिकार में भी बैरमखाँ का वही पद रहता था, जो शाह के भाई-बंद शाहजादों का होता था।

जब हुमायूँ ईरान से फिर सेना लेकर इधर आया, तब वह मार्ग में कंधार को घेरे पड़ा था। उसने बैरमखाँ को अपना दूत बनाकर अपने भाई कामरान मिरजा के पास इसलिये काबुल भेजा था कि वह उसे समझा-बुझाकर मार्ग पर ले आवे। और यह नाजुक काम वास्तव में इसी के योग्य था। मार्ग में हजारा जाति के लोगों ने उसे रोका और उनसे इसका घोर युद्ध हुआ। इस वीर ने हजारों को मारा और सैकड़ों को बाँधा या भगाया; और तब मैदान साफ करके काबुल पहुँचा। वहाँ कामरान से मिला और ऐसे अच्छे ढंग से बात-चीत की कि उस समय कामरान का पत्थर का दिल भी पसीज गया। यद्यपि कामरान से उसका और कोई कार्य न निकला, तथापि इतना लाभ अवश्य हुआ कि उसके साथ रहनेवाले और उसकी कैद में रहने-वाले शाहजादों और सरदारों से अलग अलग मिला। उनमें से कुछ को हुमायूँ की ओर से उपहार आदि दिए और कुछ लोगों को पत्र

आदि के साथ बहुत ही प्रेमपूर्ण सँदेसे दिए और सब लोगों का मन परचाया। कामरान ने भी डेढ़ महीने बाद बड़ी फूफी खानाजाद बेगम को बैरमखाँ के साथ मिरजा अस्करी के पास उसे समझाने बुझाने के लिये भेजा और अपनी भूल स्वीकृत करते हुए हुमायूँ के पास मेल और संधि का सँदेसा भेजा।

जब हुमायूँ ने कंधार पर विजय प्राप्त की, तब उसने वह इलाका ईरानी सेनापति के हवाले कर दिया; क्योंकि वह शाह से यही करार करके आया था; और तब आप काबुल की ओर चला, जिसे भाई कामरान दबाए बैठा था। अमीरों ने कहा कि शीत काल सिर पर है। रास्ता बेढब है। बाल-बच्चों और सामग्री को साथ ले चलना कठिन है। उत्तम है कि कंधार से ही बदागखाँ को छुट्टी दे दी जाय। यहाँ राज-परिवार की स्त्रियाँ-बच्चे सुख से रहेंगे और हम सेवकों के बाल-बच्चे भी उनकी छाया में रहेंगे। हुमायूँ को भी यह परामर्श अच्छा जान पड़ा और ईरानी सेनापति बदागखाँ को लौट जाने के लिये कहला भेजा। ईरानी सेना ने कहा कि जब तक हमारे शाह की आज्ञा न होगी, तब तक हम यहाँ से न जायँगे। हुमायूँ अपने लश्कर समेत बाहर पड़ा था। बरफीला देश था। उसपर पास में सामग्री आदि भी कुछ नहीं थी। तात्पर्य यह कि सब लोग बहुत कष्ट में थे।

अमीरों ने सैनिकोंवाली चाल खेली। पहले कई दिनों तक विदेशी और भारतीय सैनिक भेस बदल-बदलकर नगर में जाते रहे और घास तथा लकड़ियों की गठड़ियों में हथियार आदि वहाँ पहुँचाते रहे। एक दिन प्रभात के समय घास से लदे हुए ऊँट नगर को जा रहे थे। कई सरदार अपने वीर सैनिकों को साथ लिए उन्हीं की आड़ में दबके दबके नगर के द्वार पर जा पहुँचे। ये जान पर खेलनेवाले वीर भिन्न भिन्न द्वारों से गए थे। गंदगाँ नामक दरवाजे से बैरमखाँ ने भी आक्रमण किया था। पहरेवालों को काटकर डाल दिया और बात की बात में हुमायूँ के सैनिक सारे नगर में इस प्रकार फैल गए कि

ईरानी हैरानी में आ गए। हुमायूँ ने लश्कर समेत नगर में प्रवेश किया और जाड़ा वहीं सुख से बिताया।

दिल्लगी यह हुई कि शाह को भी खाली न छोड़ा। हुमायूँ ने शाह के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा कि बदागखाँ ने आज्ञाओं का ठीक ठीक पालन नहीं किया; और साथ चलने से भी इनकार किया; इसलिये उचित यह समझा गया कि उससे कंधार देश ले लिया जाय और बैरमखाँ के सपुर्द कर दिया जाय। बैरमखाँ का आपके दरबार से संबंध है। वह ईरान की ही मिट्टी का पुतला है। हमें विश्वास है कि अब भी आप कंधार देश को ईरान दरबार के साथ ही संबद्ध समझेंगे। अब बुद्धिमान् पाठक इस विशिष्ट घटना के संबंध में बैरमखाँ के साहस और चातुर्य पर भली भाँति सोच-विचारकर अपनी संमति स्थिर करें कि यह प्रशंसनीय है या आपत्ति-जनक। क्योंकि इसे जिस प्रकार अपने स्वामी की सेवा के लिये पूरा पूरा प्रयत्न करना उचित था, उसी प्रकार अपने स्वामी को यह भी समझाना चाहिए था कि बरफ की ऋतु तो निकल जायगी, पर बात रह जायगी। और ईरान का शाह, बल्कि ईरान की सारी प्रजा इस घटना का हाल सुनकर क्या कहेगी। उसे अपने स्वामी को यह भी समझाना चाहिए था कि जिस सिर और जिस सेना की कृपा से हमको यह दिन नसीब हुए, उसी को तलवार से काटना और इस बरफ और पानी में तलवार की आँच दिखलाकर घरों से निकालना कहाँ तक उचित है। स्वामिनिष्ठ बैरम! यह उस शाह की सेना और सेनापति है, जिससे तुम एकांत और दरबार में क्या क्या बातें करते थे। और अब यदि फिर कोई अवसर आ पड़े तो तुम्हारा वहाँ जाने का मुँह है या नहीं। बैरमखाँ के पक्षपाती यह अवश्य कहेंगे कि वह नौकर था और उस अकेले आदमी की संमति सारी परामर्श-सभा की संमति को क्योंकर दबा सकती थी। कदाचित् उसे यह भी भय होगा कि मावरा-उल्-नहर के अमीर स्वामी के मन में मेरी ओर से कहीं यह

संदेह न उत्पन्न कर दें कि बैरमखाँ ईरानी है और ईरानियों का पक्ष लेता है।

दूसरे वर्ष हुमायूँ ने फिर काबुल पर चढ़ाई की और विजय पाई। बैरमखाँ को कंधार का हाकिम बनाकर छोड़ आया था। हुमायूँ ने काबुल का जो विजयपत्र लिखा था, उसमें स्वयं फारसी के कई शेर बनाकर लिखे थे और वह विजयपत्र अपने हाथ से लिखकर और उसे प्रेमपत्र बनाकर बैरमखाँ के पास भेजा था।

बैरमखाँ कंधार में था और वहाँ का प्रबंध करता था। हुमायूँ उसके पास जो आज्ञाएँ भेजा करता था, उनका पालन वह बहुत ही तत्परता और परिश्रम से किया करता था। विद्रोहियों और नमक-हरामों को कभी तो वह मार भगाता था और कभी अपने अधिकार में करके दरबार को भेज दिया करता था।

इतिहास जाननेवाले लोगों से यह बात छिपी नहीं है कि बाबर को जन्मभूमि के अमीरों आदि ने उसके साथ कैसी नमक-हरामी की थी। पर उसमें ऐसा शील-संकोच था कि उसने उन लोगों से भी कभी आँख नहीं चुराई थी। हुमायूँ ने भी उसी पिता की आँख से शील-संकोच के सुरमे का नुसखा लिया था; इसलिये बुखारा, समरकंद और फरगाना के बहुत से लोग आ पहुँचे थे। एक तो यों ही बहुत प्राचीन काल से तूरान की मिट्टी भी ईरान की शत्रु है। इसके अतिरिक्त इन दोनों में धार्मिक मतभेद भी है। सब तूरानी सुन्नी हैं और सब ईरानी शीया। सन् ९६१ हि० में कुछ लोगों ने हुमायूँ के मन में यह संदेह उत्पन्न कर दिया कि बैरमखाँ कंधार में स्वतंत्र होने का विचार कर रहा है और ईरान के शाह से मिला हुआ है। उस समय की परिस्थिति भी ऐसी ही थी कि हुमायूँ की दृष्टि में संदेह की यह छाया विश्वास का पुतला बन गई। किसी ने ठीक ही कहा है कि जब विचार आकर एकत्र हो जायँ, तब फिर कविता

करना कोई कठिन काम नहीं है[1]। काबुल के झगड़े, हजारों और अफगानों के उपद्रव सब उसी तरह छोड़ दिए और आप थोड़े से सवारों को साथ लेकर कंधार जा पहुँचा। बैरमखाँ प्रत्येक बात के तत्व को बहुत अच्छी तरह समझ लेता था। दुष्टों ने उसकी जो बुराई की थी और हुमायूँ के मन में उसकी ओर से जो संदेह उत्पन्न हो गया था, उसके कारण उसने अपना मन तनिक भी मैला न किया। उसने इतनी श्रद्धा-भक्ति और नम्रता से हुमायूँ की सेवा की कि चुगली खानेवालों के मुँह आप से आप काले हो गए। हुमायूँ दो महीने तक वहाँ रहा। भारत का झगड़ा सामने था। वह निश्चिंत होकर काबुल की ओर लौटा। बैरमखाँ को भी सब हाल मालूम हो चुका था। चलते समय उसने निवेदन किया कि इस दास को श्रीमान् अपनी सेवा में लेते चलें। मुनइमखाँ अथवा और जिस सरदार को आप उचित समझें, यहाँ छोड़ दें। हुमायूँ भी उसके गुणों की परीक्षा कर चुका था। इसके अतिरिक्त कंधार की स्थिति भी एक बहुत ही नाजुक जगह में थी। उसके एक ओर ईरान का पार्श्व था और दूसरी ओर उजबक तुर्कों का। एक ओर विद्रोही अफगान भी थे। इसलिये उसने बैरमखाँ को कंधार से हटाना उचित न समझा। बैरमखाँ ने निवेदन किया कि यदि श्रीमान् की यही इच्छा हो, तो मेरी सहायता के लिये एक और सरदार प्रदान करें। इसलिये हुमायूँ ने अलाकुलीखाँ शैबानी के भाई बहादुरखाँ को दावर प्रदेश का हाकिम बनाकर वहीं छोड़ दिया।

एक बार किसी आवश्यकता के कारण बैरमखाँ काबुल आया। संयोग से ईद का दूसरा दिन था। हुमायूँ बहुत प्रसन्न हुआ और बैरमखाँ की खातिर से बासी ईद को फिर से ताजा करके दोबारा शाही जशन के साथ दरबार किया। दोबारा लोगों ने नजरें दीं और सबको फिर से पुरस्कार आदि दिए गए। फिर से चौगान-बाजी आदि हुई।

---

[1] چوں مضامیں جمع گردد شاعری دشوار نیست ×

बैरमखाँ अकबर को लेकर मैदान में आया। उस दस बरस के बालक ने जाते ही कद्दू पर तीर मार कर उसे ऐसा साफ उड़ाया कि चारों ओर शोर मच गया। बैरमखाँ ने उस अवसर पर एक कसीदा भी कहा था।

अकबर के शासन-काल में भी कंधार कई वर्षों तक बैरमखाँ के ही नाम रहा। शाह मुहम्मद कंधारी उसकी ओर से वहाँ नायब की भाँति काम करता था। सब प्रबंध आदि उसी के हाथ में था।

हुमायूँ ने आकर काबुल का प्रबंध किया और वहाँ से सेना लेकर भारत की ओर प्रस्थान किया। बैरमखाँ से कब बैठा जाता था! वह कंधार से बराबर निवेदनपत्र भेजने लगा कि इस युद्ध में यह दास सेवा से वंचित न रहे। हुमायूँ ने उसे बुलाने के लिये आज्ञापत्र भेजा। वह अपने पुराने अनुभवी वीरों को लेकर दौड़ा और पेशावर पहुँचकर शाही सेना में संमिलित हो गया। वहाँ उसे सेनापति की उपाधि मिली और कंधार का सूबा जागीर में मिला। सब लोगों ने वहाँ से भारत की ओर प्रस्थान किया। यहाँ भी अमीरों की सूची में सब से पहले बैरमखाँ का ही नाम दिखाई देता है। जिस समय हुमायूँ ने पंजाब में प्रवेश किया था, उस समय सारे पंजाब में इधर उधर अफगानों की सेनाएँ फैली हुई थीं। पर उनके बुरे दिन आ चुके थे। उन्होंने कुछ भी साहस न किया। लाहौर तक का प्रदेश बिना लड़े-भिड़े ही हुमायूँ के हाथ आ गया। वह आप तो लाहौर में ठहर गया और अपने अमीरों को आगे भेज दिया। तब तक अफगान कहीं कहीं थे, पर घबराए हुए थे और आगे को भागते जाते थे। जालंधर में शाही लश्कर ठहरा हुआ था। इतने में समाचार मिला कि अफगान बहुत अधिक संख्या में एकत्र हो गए हैं। बहुत सा माल और खजाना आदि भी साथ है और वे सब लोग जाना चाहते हैं। तरदीबेग तो धन-संपत्ति के परम लोभी थे ही। उन्होंने चाहा कि आगे बढ़कर हाथ मारें। सेनापति खानखानाँ ने कहला भेजा कि नहीं, अभी ऐसा करना

ठीक नहीं। शाही सेना थोड़ी है और शत्रु की संख्या बहुत अधिक है। उसके पास धन-संपत्ति भी बहुत है। संभव है कि वह उलट पड़े और धन के लिये जान पर खेल जाय। अधिकांश अमीर भी इस विषय में खानखानाँ से सहमत थे। पर तरदीबेग ने चाहा कि अपनी थोड़ी सी सेना को साथ लेकर शत्रु पर जा पड़े। अब इन्हीं लोगों में आपस में तलवार चल गई। दोनों ओर से बादशाह की सेवा में निवेदनपत्र भेजे गए। वहाँ से एक अमीर आज्ञापत्र लेकर आया। उसने अपने लोगों को आपस में मिलाया और लश्कर ने आगे की ओर प्रस्थान किया।

सतलज के तट पर आकर फिर आपस में लोगों में मतभेद हुआ। समाचार मिला कि सतलज के उस पार माछीवाड़ा नामक स्थान में तीस हजार अफगान पड़े हैं। खानखानाँ ने उसी समय अपनी सेना को लेकर प्रस्थान किया। किसी को खबर ही न की और आप मारामार करता हुआ पार उतर गया। संध्या होने को थी कि शत्रु के पास जा पहुँचा। जाड़े के दिन थे। गुप्तचर ने आकर समाचार दिया कि अफगान एक बस्ती के पास पड़े हैं और खेमों के आगे लकड़ियाँ और घास जलाकर सेंक रहे हैं, जिसमें नींद न आवे और रात के समय प्रकाश के कारण रक्षा भी रहे। इसने उस अवसर को और भी गनीमत समझा। शत्रु की संख्या की अधिकता का कुछ भी ध्यान न किया और अपने बहुत ही चुने हुए एक हजार सवारों को साथ लिया। सबने घोड़े उठाए और शत्रु की सेना के पास जा पहुँचे। उस समय वे लोग बजवाड़ा नामक स्थान में नदी के किनारे पड़े हुए थे। सिर उठाया तो छाती पर मौत दिखाई दी। वहाँ लकड़ियों और घास के जितने ढेर थे, उनमें बल्कि बस्ती के छप्परों में भी उन मूर्खों ने यह समझकर आग लगा दी कि जब अच्छी तरह प्रकाश हो जायगा, तब शत्रुओं को देखेंगे। तुर्कों को और भी अच्छा अवसर मिल गया। खूब ताक ताककर निशाने मारने लगे। अफगानों के लश्कर में खल-

खली मच गई। अलीकुली खाँ शैबानी, जो खानखानाँ के बल से हमेशा बलवान रहता था, सुनते ही दौड़ा। और और सरदारों को भी समाचार मिला। वे भी अपनी अपनी सेनाएँ लिए हुए दौड़कर आ पहुँचे। अफगानों के होश ठिकाने न रहे। वे लड़ाई का बहाना करके घोड़ों पर सवार हुए और खेमे, डेरे तथा सब सामग्री उसी प्रकार छोड़कर सीधे दिल्ली के ओर भागे। बैरमखाँ ने तुरंत सब खजानों का प्रबंध किया। जो कुछ अच्छे अच्छे पदार्थ तथा घोड़े हाथी आदि हाथ आए, उन सब को निवेदनपत्र के साथ लाहौर भेज दिया। हुमायूँ ने प्रण किया था कि मैं जब तक जीवित रहूँगा, तब तक भारत में किसी व्यक्ति को दास या गुलाम न समझूँगा। जितने बालक, बालिकाएँ और स्त्रियाँ पकड़ी गई थीं, उन सब को छोड़ दिया और इस प्रकार उनसे प्रताप की वृद्धि का आशीर्वाद लिया। उस समय माच्छीवाड़े की आबादी बहुत अधिक थी। बैरमखाँ आप तो वहीं ठहर गया और अपने सरदारों को इधर उधर अफगानों का पीछा करने के लिये भेज दिया। जब दरबार में उसके निवेदनपत्र के साथ वे सब पदार्थ और खजाने आदि उपस्थित हुए, तब बादशाह ने उन सब को स्वीकृत किया और उसकी उपाधि में खानखानाँ शब्द के साथ "यार वफादार" और "हमदम गमगुसार" और बढ़ा दिया। उसके भले, बुरे, तुर्क, ताजीक जितने नौकर थे, उन सब के, बल्कि पानी भरनेवालों, फर्राशों, बावर्चियों और ऊँट आदि चलानेवालों तक के नाम बादशाही दफतर में लिख लिए गए और वे सब लोग खानी और सुलतानी उपाधियों से देश में प्रसिद्ध हुए। संभल का प्रदेश उसके नाम जागीर के रूप में लिखा गया।

सिकंदर सूर ८० हजार अफगानों का लश्कर लिए सरहिंद में पड़ा था। अकबर अपने शिक्षक बैरमखाँ के साथ अपनी सेना लेकर उस पर आक्रमण करने गया। इस युद्ध में भी बहुत अच्छी तरह विजय हुई। उसके विजयपत्र अकबर के नाम से लिखे गए। बारह तेरह

बरस के लड़के को घोड़ा कुदाने के सिवा और क्या आता था। यह सब बैरमखाँ का ही काम था।

जब हुमायूँ ने दिल्ली पर अधिकार किया, तब शाही जशन हुए। अमीरों को इलाके, खिलअतें और पुरस्कार आदि मिले। उसकी सारी व्यवस्था खानखानाँ ने की थी। सरहिंद में हाल ही में भारी विजय हुई थी, इसलिये वह सूबा उसके नाम लिखा गया। अलीकुली खाँ शैबानी को संभल दिया गया। पंजाब के पहाड़ों में पठान फैले हुए थे। सन् ९६२ हि० में उनकी जड़ उखाड़ने के लिये अकबर को भेजा। इस युद्ध की सारी व्यवस्था खानखानाँ के ही सपुर्द हुई थी। वह सेना पति और अकबर का शिक्षक भी था। अकबर उसे खान बाबा कहता था। होनहार शाहजादा पहाड़ों में दुश्मनों का शिकार करने का अभ्यास करता फिरता था कि अचानक हुमायूँ की मृत्यु का समाचार मिला। खानखानाँ ने इस समाचार को बहुत ही होशियारी से छिपा रखा। पास और दूर से लश्कर के अमीरों को एकत्र किया। वह साम्राज्य के नियमों आदि से भली भाँति परिचित था। उसने शाही दरबार किया और अकबर के सिर पर राजमुकुट रखा। अकबर अपने पिता के शासन-काल से ही उसकी सेवाएँ और महत्व देख रहा था और जानता था कि यह लगातार तीन पीढ़ियों से मेरे वंश की सेवा करता आया है; इसलिये उसे वकील मुतलक या पूर्ण प्रतिनिधि भी बना दिया। उसे अधिकार आदि प्रदान करने के अतिरिक्त उसकी उपाधियों में खान बाबा की उपाधि और बढ़ा दी और स्वयं उससे कहा कि खान बाबा, शासन आदि की सारी व्यवस्था लोगों को पदों पर नियुक्त करने अथवा हटाने का सारा अधिकार, साम्राज्य के शुभचिंतकों और अशुभचिंतकों को बाँधने, मारने और छोड़ने आदि का सारा अधिकार तुमको है। तुम अपने मन में किसी प्रकार का संदेह न करना और इसे अपना उत्तरदायित्व समझना। ये सब तो इसके साधारण काम थे ही। उसने आज्ञापत्र प्रचलित कर दिए

और सब कारबार पहले की भाँति करता रहा। कुछ सरदारों के संबंध में वह समझता था कि ये स्वतंत्र होने का विचार रखते हैं। उनमें से अब्दुलमुआली भी एक थे। उन्हें तुरंत बाँध लिया। इस नाजुक काम को ऐसी उत्तमता से पूरा करना खानखानाँ का ही काम था।

अकबर दरबार और लश्कर समेत जालंधर में था। इतने में समाचार मिला कि हेमूँ दूसर ने आगरा लेकर दिल्ली मार ली। वहाँ का हाकिम तरदीबेग भागा चला आता है। सब लोग चकित हो गए। अकबर भी बालक होने के कारण घबरा गया। वह इसी मामले में जान गया था कि कौन सरदार कितने पानी में है। बैरमखाँ से कहा कि खान बाबा, राज्य के सभी कार्यों में तुम्हें पूरा पूरा अधिकार है। जो उचित समझो, वह करो। मेरी आज्ञा पर कोई बात न रखो। तुम मेरे कृपालु चाचा हो। तुम्हें पूज्य पिता जी की आत्मा की और मेरे सिर की सौगंध है; जो उचित समझना, वही करना। शत्रुओं की कुछ भी परवा न करना। खानखानाँ ने उसी समय सब अमीरों को बुलाकर परामर्श किया। हेमूँ का लश्कर तीन लाख से अधिक सुना गया था और शाही सेना केवल बीस हजार थी। सब ने एक स्वर से कहा कि शत्रु का बल और अपनी अवस्था सब पर प्रकट ही है। और फिर यह पराया देश है। अपने आपको हाथियों से कुचलवाना और अपना मांस चील-कौओं को खिलाना कौन सी वीरता है। इस समय उसका सामना करना ठीक नहीं। काबुल चलना चाहिए। वहाँ से सेना लेकर आवेंगे और अगले वर्ष अफगानों का भली भाँति उपाय कर लेंगे।

पर खानखानाँ ने कहा कि जिस देश को दो बार लाखों मनुष्यों के प्राण गँवाकर लिया, उसको बिना तलवार हिलाए छोड़ जाना डूब मरने की जगह है। बादशाह तो अभी बालक है। उसे कोई दोष न देगा। पर उसके पिता ने हमारा मान बढ़ा कर ईरान और तूरान तक हमें प्रसिद्ध किया था। वहाँ के शासक और अमीर क्या कहेंगे और इन सफेद दाढ़ियों पर यह कालिख कैसी शोभा देगी! उस समय अकबर

तलवार टेककर बैठ गया और बोला—खान बाबा बहुत ठीक कहते हैं। अब कहाँ जाना और कहाँ आना। बिना मरे मारे भारत नहीं छोड़ा जा सकता। चाहे तख्त हो और चाहे तख्ता। दिल्ली की ओर विजय के झंडे खोल दिए। मार्ग में आगे भटके सिपाही और सरदार भी आ-आकर मिलने लगे। खानखानाँ वीरता और उदारता आदि में बेजोड़ था और संसार रूपी जौहरी की दूकान में एक विलक्षण रकम था। किसी को भाई और किसी को भतीजा बना लेता था। तरदीबेग को "तक्कान तरदी" कहा करता था। पर सच बात यह है कि मन में दोनों अमीर एक दूसरे से खटके हुए थे। दोनों एक स्वामी के सेवक थे। खानखानाँ को अपने बहुत से अधिकारों और गुणों का और तरदी को केवल पुराने होने का गर्व था। मंसूबों में दोनों में ईर्ष्या होती थी और सेवाओं में प्रतिस्पर्धा पीछा नहीं छोड़ती थी। इन्हीं दोनों बातों से दोनों के दिल भरे हुए थे। अब ऐसा अवसर आया कि खानखानाँ का उपाय रूपी तीर ठीक निशाने पर बैठा। उसने तरदीबेग की पुरानी और नई कमहिम्मती और नमकहरामी के सब हाल अकबर को सुना दिए थे, जिससे उसकी हत्या की भी आज्ञा लेने का कुछ विचार पाया जाता था। अब जब वह पराजित होकर बुरी दशा में लज्जित होकर लश्कर में पहुँचा, तो उसको और भी अच्छा अवसर मिला। इन दोनों में परस्पर कुछ रंजिश भी थी। पहले मुल्ला पीर मुहम्मद ने जाकर वकालत की करामात दिखलाई, जो उन दिनों खानखानाँ के विशेष शुभचिंतकों में थे। फिर संध्या को खानखानाँ सैर करते हुए निकले। पहले आप उसके खेमे में गए; फिर वह इनके खेमे में आया। दोनों बहुत तपाक से मिले। तौकान भाई को बहुत अधिक आदर-सत्कार से और प्रेमपूर्वक बैठाया और आप किसी आवश्यकता के बहाने से दूसरे खेमे में चले गए। नौकरों को संकेत कर दिया था। उन लोगों ने उस बेचारे को मार डाला और कई सरदारों को कैद कर लिया। अकबर तेरह, चौदह बरस का था। शिकरे का शिकार खेलने गया हुआ था। जब आया, तब

एकांत में मुल्ला पीर मुहम्मद को बुला भेजा। उन्होंने जाकर फिर उस सरदार की अगली पिछली नमक-हरामियों का उल्लेख किया और यह भी निवेदन किया कि यह सेवक स्वयं तुगलकाबाद के मैदान में देख रहा था। इसकी बेहिम्मती से जीती हुई लड़ाई हारी गई। खानखानाँ ने निवेदन किया है कि श्रीमान् दयासागर हैं। सेवक ने यह सोचा कि यदि श्रीमान् ने आकर इसका अपराध क्षमा कर दिया, तो फिर पीछे से उसका कोई उपाय न हो सकेगा; इसलिये इस अवसर पर यही उचित समझा गया। सेवक ने उसे मार डाला, यह अवश्य बहुत बड़ी गुस्ताखी है; पर यह अवसर बहुत नाजुक है। यदि इस समय उपेक्षा की जायगी, तो सब काम बिगड़ जायगा। और फिर श्रीमान् के बहुत बड़े बड़े विचार हैं। यदि सेवक लोग ऐसी बातें करने लगेंगे, तो बड़े बड़े कार्य कैसे सिद्ध हो सकेंगे। इसलिये यही उचित समझा गया। यद्यपि यह साहस गुस्ताखी से भरा हुआ है, पर फिर भी श्रीमान् इस समय क्षमा करें।

अकबर ने भी मुल्ला को संतुष्ट कर दिया; और जब खानखानाँ ने स्वयं सेवा में उपस्थित होकर निवेदन किया, तो उसे भी गले लगाया और उसके विचार तथा कार्य की प्रशंसा की। साथ ही यह भी कहा कि मैं तो कई बार कह चुका हूँ कि सब बातों का तुम्हें अधिकार है। तुम किसी की परवा या लिहाज न करो। ईर्ष्यालुओं और स्वार्थियों की कोई बात न सुनो। जो उचित समझो, वह करो। साथ ही यह भी कहा कि मित्र यदि भली भाँति मित्रता का निर्वाह करे, तो फिर यदि दोनों जहान भी शत्रु हो जायँ, तो कोई चिंता नहीं; वे दबाए जा सकते हैं [1]। इसके अतिरिक्त बहुत से इतिहास-लेखक यह भी लिखते हैं कि यदि उस अवसर पर ऐसा न किया जाता, तो चगताई अमीर कभी वश में न आते; और फिर वही शेरशाहवाले पराजय का

---

[1] دوست گر دوست شود هر دو جهاں دشمن گیر ×

अवसर आ जाता। यह व्यवस्था देखकर सभी मुगल सरदार, जोअपने आप को कैकाऊस और कैकुबाद समझे हुए थे, सतर्क हो गए और सब लोग स्वेच्छाचारिता तथा द्वेष के भाव छोड़कर ठीक तरह से सेवा करने लग गए। यह सब कुछ हुआ और उस समय सब शत्रु भी दब गए, पर सब लोग मन ही मन जहर का घूँट पीकर रह गए। फिर पानीपत के मैदान में हेमूँ से युद्ध हुआ; और ऐसा घमासान युद्ध हुआ कि विजय के तमगों पर अकबरी सिक्का बैठ गया। पर इस युद्ध में जितना काम खानखानाँ के साहस और युक्ति ने किया था, उससे अधिक काम अलीकुली खाँ की तलवार ने किया था। घायल हेमूँ बाँधकर अकबर के सामने ला खड़ा किया गया। शेख गदाई कंबोह ने अकबर से कहा कि इसकी हत्या कर डालिए। पर अकबर ने यह बात नहीं मानी। अंत में बैरमखाँ ने बादशाह की मरजी देखकर यह शेर पढ़ा--

چه حاجت تیغ شاهی را بخون هرکس آلودن +
تو بنشیں اشارات کن بچشمے یا با بروئے + ¹

और बैठे बैठे एक हाथ झाड़ा। फिर शेख गदाई ने एक हाथ फेंका। मरे को मारें शाह मदार। दिन रात ईश्वर और धर्म की चर्चा करनेवाले लोग थे। भला इन्हें यह पुण्य कब कब प्राप्त होता था! भाग्यवान् ऐसे ही होते हैं। यह सब तो ठीक है, पर खानखानाँ! तुम्हारे लोहे को जगत् ने माना। कौन था जो तुम्हारी वीरता को न मानता। यदि युद्धक्षेत्र में सामना हो जाता, तो भी तुम्हारे लिये बेचारे बनिए को मार लेना कोई अभिमान की बात न होती। भला ऐसी दशा में उस अधमरे मुरदे को मारकर अपनी वीरता और उच्च कोटि के साहस में क्यों धब्बा लगाया?

लोग आपत्ति करते हैं कि खानखानाँ ने उसे जीवित क्यों न रहने

---

¹ राजकीय तलवार को हर किसी के रक्त से रंजित करने की क्या आवश्यकता है। तू बैठा रह और आँखों अथवा भँवों से संकेत मात्र किया कर।

दिया। वह प्रबंधकुशल आदमी था। रहता तो बड़े बड़े काम करता। पर यह सब कहने की बातें हैं। जब विकट अवसर उपस्थित होता है, तब बुद्धि चक्कर में आ जाती है; और जब अवसर निकल जाता है, तब लोग अच्छी अच्छी युक्तियाँ बतलाते हैं। युक्तियाँ बतानेवालों को न्याय से काम लेना चाहिए। भला उस समय को तो देखो कि क्या दशा थी। शेरशाह की छाया अभी आँखों के सामने से हटी भी न थी। अफगानों के उपद्रव से सारे भारत में मानों आग का तूफान आ रहा था। ऐसे बलवान और विजयी शत्रु पर विजय पाई; विनाशक भँवर से नाव निकल आई; और वह बँधकर सामने उपस्थित हुआ। भला ऐसे अवसर पर मन के आवेश पर किसका अधिकार रह सकता है और किसे सूझता है कि यदि यह रहेगा, तो इसके द्वारा अमुक कार्य की व्यवस्था होगी? सब लोग विजयी होकर प्रसन्नतापूर्वक दिल्ली पहुँचे। इधर उधर सेनाएँ भेजकर व्यवस्था आरंभ कर दी। अकबर की बादशाही थी और बैरमखाँ का नेतृत्व। दूसरे को बीच में बोलने का कोई अधिकार ही न था। इधर उधर शिकार खेलते फिरना, महलों में कम जाना; और जो कुछ हो, वह खानखानाँ की आज्ञा से हो।

यद्यपि दरबार के अमीर और बाबरी सरदार उसके इन योग्यतापूर्ण अधिकारों को देख नहीं सकते थे, पर फिर भी ऐसे ऐसे पेचीले काम आ पड़ते थे कि उनमें उसके सिवा और कोई हाथ ही न डाल सकता था। सब को उसके पीछे पीछे ही चलाना पड़ता था। इसी बीच में कुछ छोटी मोटी बातों में सम्राट् और महामंत्री में विरोध हुआ। इस पर यारों का चमकाना और भ गजब का था। ईश्वर जाने, नाजुक-मिजाज वजीर यों ही कई दिन तक सवार न हुआ या प्राकृतिक बात हुई कि कुछ बीमार हो गया, इसलिये कई दिन तक अकबर की सेवा में नहीं गया। समय वह था कि सन् २ जलूसी में सिकंदर जालंधर के पहाड़ों में घिरा हुआ पड़ा था। अकबर का लश्कर मानकोट के किले को घेरे हुए था। खानखानाँ को

एक फोड़ा निकला था, जिसके कारण वह सवार भी नहीं हो सकता था। अकबर ने फतूहा और लकना नामक हाथी सामने मँगाए और उनकी लड़ाई का तमाशा देखने लगा। ये दोनों बड़े धावे के हाथी थे। देर तक आपस में रेलते ढकेलते रहे और लड़ते लड़ते बैरमखाँ के डेरों पर आ पड़े। तमाशा देखनेवालों की बहुत बड़ी भीड़ साथ थी। सब लोग बहुत शोर मचा रहे थे। बाजार की दूकानें तहस नहस हो गई थीं। ऐसा कोलाहल मचा की बैरमखाँ घबराकर बाहर निकल आया।

खानखानाँ के मन में यह बात आई कि शम्सुद्दीन मुहम्मद खाँ अतका ने कदाचित् मेरी ओर से बादशाह के कान भरे होंगे; और हाथी भी बादशाह के ही संकेत से इधर हूले गए हैं। माहम अतका योग्यता की पुतली और बहुत साहसवाली स्त्री थी। खानखानाँ ने उसके द्वारा कहला भेजा कि कोई ऐसा अपराध ध्यान में नहीं आता जो इस सेवक ने जान बूझकर किया हो। फिर इस अनुचित व्यवहार का क्या कारण है? यदि इस सेवक के संबंध में कोई अनुचित बात श्रीमान् तक पहुँचाई गई हो, तो आज्ञा हो कि सेवक अपनी सफाई दे। नौबत यहाँ तक पहुँची कि हाथी इस सेवक के खेमों तक हूल दिए गए। इसी निवेदन के साथ एक सौ महल में मरियम मकानी की सेवा में पहुँची। जो कुछ हाल था, वह सब माहम ने आप ही कह दिया और कहा कि हाथी संयोग से ही उधर जा पड़े थे। बल्कि शपथ खाकर कहा कि न तो किसी ने तुम्हारी ओर से कोई उलटी सीधी बात कही है और न श्रीमान् को तुम्हारी ओर से किसी तरह का बुरा खयाल है। जब लाहौर पहुँचे तब अतकाखाँ अपने पुत्र को साथ लेकर खानखानाँ के पास आए और कुरान पर हाथ रखकर कसम खाई कि मैंने एकांत में या सब लोगों के सामने तुम्हारे संबंध में श्रीमान् से कुछ भी नहीं कहा और न कहूँगा। पर इतिहास-लेखक यही कहते हैं कि इतने पर भी खानखानाँ का संतोष नहीं हुआ।

इस छोटी अवस्था में भी अकबर की बुद्धिमत्ता का प्रमाण एक बात से मिलता है। सलीमा सुलतान बेगम हुमायूँ की फुफेरी बहन थी और उसने उसका विवाह अपनी मृत्यु से थोड़े ही दिनों पूर्व बैरमखाँ से निश्चित कर दिया था। सन् ९६४ हि० सन् २ जलूसी में लाहौर से आगरे की ओर आ रहे थे। जालंधर या दिल्ली में अकबर ने उसका विवाह कर दिया, जिससे एकता का संबंध और भी दृढ़ हो गया। विवाह बहुत धूमधाम से हुआ। खानखानाँ ने भी जशन की राजसी व्यवस्था की। उसकी आकांक्षा पूरी करने के लिये अकबर अपने अमीरों को साथ लेकर उसके घर गया। खानखानाँ ने बादशाह को निछावरों और लोगों को पुरस्कार आदि देने में धन की ऐसी नदियाँ बहाईं कि उसकी उदारता की जो प्रसिद्धि लोगों की जबानों पर थी, वह उनकी झोलियों में आ पड़ी। इस विवाह के संबंध में बेगमों ने भी बहुत जोर दिया था। पर बुखारा और मावरा-उल्-नहर के तुर्क, जो अपने आप को अभिमानपूर्वक अमीर कहा करते थे, इस संबंध से बहुत ही रुष्ट हुए और कहने लगे कि यह ईरानी तुर्कमान, और उस पर भी नौकर! उसके घर में हमारी शाहजादी जाय, यह हमें कदापि सह्य नहीं है। आश्चर्य यह है कि पीर मुहम्मद खाँ ने इस आग पर और भी तेल टपकाया। पर वास्तविक बात यह है कि ईरानी और तूरानी का केवल एक बहाना था और शीया-सुन्नी की भी केवल कहने की बात थी। उन्हें ईर्ष्या वही उसके मन्सब और अधिकारों के संबंध में थी। उन्हें तैमूर के वंशजों और बाबर के वंशजों की क्या परवाह थी। उन्होंने स्वयं नमकहरामियाँ करके बाबर का छः पीढ़ी का देश नष्ट किया था। भारत में आकर पोते के ऐसे शुभचिंतक बन गए। और फिर बैरमखाँ भी कुछ नया अमीर नहीं था। कई पीढ़ियों का अमीरजादा था। इसके अतिरिक्त उसके ननिहाल का तैमूर के वंश से भी संबंध था। ख्वाजा अंसार के पुत्र ख्वाजा हसन थे, जिनका लड़का मिरजा अलाउद्दीन और पोता मिरजा नूरुद्दीन था। उनकी स्त्री शाह बेगम महमूद मिरजा

की कन्या थी। महमूद मिरजा सुलतान का लड़का और अब्बुसईद का पोता था। यह शाह बेगम चौथी पीढ़ी में अलीशकर बेग की नतनी थी; क्योंकि अलीशकरबेग की कन्या शाह बेगम शाहजादा महमूद मिरजा से ब्याही गई थी। इस पुराने संबंध के विचार से ही बाबर ने अपनी कन्या गुलरंग बेगम का विवाह मिरजा नूरउद्दीन से किया था। और यह अलीशकर खानखानाँ का पड़दादा था। अब इस हिसाब से ईश्वर जाने, खानखानाँ का तैमूर के वंश से क्या संबंध हुआ; पर कुछ न कुछ संबंध हुआ अवश्य। (देखो अकबरनामा दूसरा भाग और मआसिर उल् उमरा में खानखानाँ का हाल।)

गक्खड़ नामक जाति को बहुत दिनों से इस बात का दावा है कि हम नौशेरवाँ के वंशज हैं। ये लोग झेलम के उस पार से अटक तक की पहाड़ियों में फैले हुए थे। सदा के उद्दंड थे और राज्याधिकार का दावा रखते थे। उस समय भी उन लोगों में ऐसे साहसी सरदार उपस्थित थे, जिनके हाथों शेरशाह थक गया था। बाबर और हुमायूँ के मामलों में भी उनका प्रभाव पड़ता रहता था। उन दिनों सुल्तान आदम गक्खड़ और उनके भाई बड़े दावे के सरदार थे, और सदा लड़ते भिड़ते रहते थे। खानखानाँ ने सुलतान आदम को कौशल से बुलाया। वह मखदूमउलमुल्क मुल्ला अब्दुल्ला सुलतानपुरी के द्वारा आया था। उन्होंने उसे दरबार में उपस्थित किया और खानखानाँ ने भारतीय परिपाटी के अनुसार उससे अपनी पगड़ी बदलकर उसे अपना भाई बनाया। जरा इसकी राजनीतिक चालों के ये अंदाज तो देखो।

ख्वाजा कलाँ बेग बाबर के समय का एक पुराना सरदार था। उसका पुत्र मुसाहब बेग बहुत बड़ा पाजी और उपद्रवी था। खानखानाँ ने उसे उपद्रव करने के एक अभियोग में जान से मरवा डाला। उसकी हत्या करानेवाले भी मुल्ला पीर मुहंमद ही थे। पर शत्रुओं को तो एक बहाना चाहिए था। उन्होंने बदनामी का शीशा

खानखानाँ की छाती पर तोड़ा। बादशाह के सभी अमीरों में इस पर भी कोलाहल मच गया; बल्कि बादशाह को भी उसके मारे जाने का दुःख हुआ।

हुमायूँ कहा करता था कि यह मुसाहब मुनाफिक (कपटी या धोखेबाज मुसाहब) है; और उसके अनुचित कृत्यों से वह बहुत ही तंग रहता था। जब काबुल में कामरान से युद्ध हो रहे थे, तब एक अवसर पर वह नमकहराम भी हुमायूँ के पास था और कामरान की शुभचिंतना के मन्सूबे खेल रहा था। अंदर अंदर उसके परचे भी दौड़ा रहा था। यहाँ तक कि युद्ध क्षेत्र में उसने हुमायूँ को घायल तक करा दिया। सेना पराजित हुई। परिणाम यह हुआ कि काबुल हाथ से निकल गया। अकबर अभी बच्चा था। फिर निर्दय चचा के फंदे में फँस गया। इसका नियम था कि कभी इधर आ जाता था, कभी उधर चला जाता था; और यह सब इसका बाएँ हाथ का खेल था। हुमायूँ एक बार काबुल के आस पास कामरान से लड़ रहा था। उस समय यह और इसका भाई मुबाजरबेग दोनों हुमायूँ के पास थे। एक दिन युद्धक्षेत्र में किसी ने आकर समाचार दिया कि मुबाजरबेग मारा गया। हुमायूँ ने बहुत दुःख प्रकट किया और कहा कि यदि उसके बदले मुसाहबबेग मारा जाता, तो अच्छा होता। हुमायूँ के उपरांत जब अकबर का शासनकाल आया, तब शाह अब्बुलमुआली जगह जगह फिसाद करता फिरता था। यह जाकर उसका मुसाहब बन गया और बहुत दिनों तक उसी के साथ मिट्टी छानता रहा। जब खान-जमाँ विद्रोही हो गया, तब यह उसके पास जा पहुँचा। अपने बेटे को वहाँ मोहरदार करा दिया और आप ओहदेदार बन गया। बहुत कुछ युक्तियाँ लड़ाकर दिल्ली में आया। खानखानाँ ने उसका मिजाज ठिकाने लाने के लिये बहुत कुछ उपाय किए, पर कुछ भी फल न हुआ और वह सीधे रास्ते पर न आया। वह वहीं राजधानी में बैठकर कुछ उपद्रव खड़ा करने की चिंता में लगा। बैरमखाँ ने उसे कैद कर लिया

और मक्के भेज देना निश्चित किया। मुल्ला पीर मुहम्मद उस समय खान-खानाँ के मुसाहब थे और हत्या तथा हिंसा के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने कहा कि नहीं, बस इनकी हत्या ही होनी चाहिए। बहुत कुछ सोच-विचार के उपरांत यह निश्चित हुआ कि एक पुरजे पर "हत्या" और एक पर, "मुक्ति" लिखकर तकिए के नीचे रख दो। फिर एक परचा निकालो। उसमें जो कुछ निकले, उसी को ईश्वर की आज्ञा समझो। आश्चर्य की बात कि पीर करामात सच्ची निकली और मुसाहब दिल्ली में मारा गया। बादशाही अमीरों में हाहाकार मच गया कि पुराने पुराने सेवकों और इसी दरबार में पले हुए लोगों के वंशज जान से मारे जाते हैं; और कोई कुछ पूछता नहीं। तैमूर के वंश का तो यह नियम है कि खानदानी नौकरों को बहुत प्रिय रखते हैं। बादशाह को भी इस बात का बहुत खयाल हुआ।

मुसाहबबेग की आग अभी ठंढी भी न होने पाई थी कि एक और आग भड़क उठी। मुल्ला पीर मुहम्मद अब बढ़ते बढ़ते अमीर-उल्उमरा या सर्वप्रधान अमीर के पद तक पहुँचकर वकील मुतलक या पूर्ण प्रतिनिधि हो गए थे। सन् ३ जलूसी में बादशाह अपने लश्कर समेत दिल्ली से आगरे की ओर चला। एक दिन प्रातःकाल खानखानाँ और पीर मुहम्मद शिकार खेलते चले जाते थे। खानखानाँ को भूख लगी। उसने अपने रिकाबदारों से पूछा कि रिकाबखाने में जलपान के लिये कुछ है ? पीर मुहम्मद खाँ बोल उठे कि यदि आप जरा सा ठहर जायँ, तो जो कुछ हाजिर है, वह आ जाय। खानखानाँ नौकरों समेत एक वृक्ष के नीचे उतर पड़ा। दस्तरखान बिछ गया। तीन सौ प्यालियाँ शरबत की और सात सौ रिकाबियाँ खाने की उपस्थित थीं। खानखानाँ को बहुत आश्चर्य हुआ, पर उसने मुँह से कुछ न कहा। हाँ, उसके मन में इस बात का कुछ खयाल अवश्य हो गया। मुल्ला अब वकील मुतलक हो गया था और हर दम बादशाह की सेवा में उपस्थित रहता था। सब लोगों के निवेदनपत्र

उसी के हाथ में पड़ते थे। सब अमीर और दरबारी भी उसी के पास उपस्थित रहते थे। इतना अवश्य था कि वह असाहसी, घमंडी, निर्दय और कमीने मिजाज का आदमी था। भले आदमी उसके यहाँ जाते थे और दुर्दशा भोगते थे। इतने पर भी बहुतों को उसके साथ बात करना नसीब न होता था।

आगरे पहुँचकर मुल्ला कुछ बीमार हुआ। खानखानाँ उसे देखने के लिये गए। द्वार पर एक उजबक दास था। उसे क्या मालूम कि मुल्ला वास्तव में क्या है और खानखानाँ का पद क्या और मर्यादा क्या है; और दोनों का पुराना संबंध क्या और कैसा है। वह दिन भर में बहुत से बड़े-बड़ों को रोक दिया करता था। अपने स्वभाव के अनुसार उसने इन्हें भी रोका और कहा कि जब तक आप की दुआ (आशीर्वाद और आने का समाचार) पहुँचे, तब तक आप ठहरें। जब बुलावेंगे, तब जाइएगा। मुल्ला आखिर खानखानाँ का चालिस बरस का नौकर था। खानखानाँ को आश्चर्य पर आश्चर्य हुआ और वह दंग होकर रह गया। उसके मुँह से निकल गया कि जो काम आप ही किया हो, उसका क्या उपाय या प्रतिकार हो सकता है[1]। पर यह आना भी खानखानाँ का आना था, या एक प्रलय का आना था। मुल्ला सुनते ही आप दौड़े आए और बराबर कहते जाते थे कि क्षमा कीजिएगा, दरबान आप को पहचानता न था। यह बोले—बल्कि तुम भी। इसपर भी मजा यह हुआ कि खानखानाँ तो अंदर गए, पर उनके सेवकों में से कोई अंदर न जा सका। केवल ताहिर मुहम्मद सुलतान मीर फरागत ने बहुत धक्कापेल से अपने आपको अंदर पहुँचाया। खानखानाँ दम भर बैठे और घर चले आए।

दो तीन दिन के बाद ख्वाजा अमीना (जो अंत में ख्वाजा जहान हो गए थे) और मीर अब्दुल्ला बख्शी को मुल्ला के पास भेजा और

१ بلے خود کردہ را درماں نہ باشد +

कहलाया कि तुम्हें स्मरण होगा कि तुम कंधार में एक दीन विद्यार्थी की दशा में हमारे पास आए थे। हमने तुम में योग्यता देखी और सत्य-निष्ठा के गुण पाए। और कोई कोई सेवा भी तुमसे अच्छी बन आई; इसलिये हमने तुम्हें परम दुरवस्था से उठाकर बहुत ही ऊँचे स्थान और अमीर उल् उमरा के पद तक पहुँचाया। पर तुम्हारे हौसले में संपत्ति और वैभव के लिये स्थान नहीं है। हमें भय है कि तुम कोई ऐसा उप-द्रव न खड़ा करो, जिसका प्रतिकार कठिन हो जाय। इन्हीं बातों का ध्यान रखकर कुछ दिनों के लिये अभिमान की यह सामग्री तुमसे अलग कर देते हैं, जिसमें तुम्हारा बिगड़ा हुआ मिज़ाज और अभिमान से भरा हुआ मस्तिष्क ठीक हो जाय। तुम्हें उचित है कि अलम और नक्कारा तथा वैभव की और सब सामग्री सपुर्द कर दो। मुल्ला को क्या मजाल थी जो दम भी मार सकता। अभिमान का वह साधन, जिसने मनुष्य का स्वरूप रखने-वाले बहुतों को निर्बुद्धि और पागल कर रखा है, बल्कि मनुष्यत्व के मार्ग से गिराया और गिराता है, उन्हें जंगल के भूतों में मिलाया और मिलाता है, सब उसी समय हवाले कर दिया। अब वही मुल्ला पीर मुहम्मद रह गए जो पहले थे[1]। पहले बयाना नामक स्थान के किले

---

१ मुल्ला पीर मुहम्मद यहाँ से चले। गुजरात के पास राधनपुर में पहुँचकर ठहरे। वहाँ फतह खाँ बलोच ने उनका बहुत आदर सत्कार किया। यहाँ से अहमद आदि अमीरों के पत्र उनके नाम पहुँचे कि जहाँ हो, वहीं ठहर जाओ और प्रतीक्षा करो कि ईश्वर के यहाँ से क्या होता है। बैरम खाँ को समाचार मिला कि मुल्ला वहाँ बैठे हैं। उन्होंने कई सरदारों को सेना सहित भेजा। मुल्ला एक पहाड़ी की घाटी में घुसकर अड़े और दिन भर लड़े। फिर रात को वहाँ से निकल गए। उनका सब माल असबाब बैरम खाँ के सैनिकों के हाथ आया। अहलकार देखते थे, पर कर कुछ भी नहीं सकते थे। अकबर भी देखता था और शरबत के घूँट पीए जाता था। पर आजाद की संमति कुछ और है। तमाशा देखनेवाले इन बातों को सुनकर जो चाहें, सो कहें; पर यहाँ विचार

में भेज दिया। मुल्ला ने खानखानाँ के लिये एक बहुत बड़ा लेख तैयार किया। उसमें बहुत सा पांडित्य भरा और एक आयत भी दी, जिससे यह संकेत निकलता था कि यह मेरी मूर्खता थी जो मैं आपकी बारगाह के सामने अपना खेमा लगाता था। अब मैं आपपर ईमान लाकर तोबा करता हूँ। यह लेख भी भेजा और बहुत कुछ नम्रता दिखलाते हुए निवेदन और प्रार्थनाएँ कीं। पर वे सब स्वीकृत न हुईं, क्योंकि बेमौके थीं। कुछ दिनों के उपरांत गुजरात के मार्ग से मक्के भेज दिया। उसके स्थान पर हाजी मुहम्मद सीस्तानी को पादशाह का शिक्षक बना दिया और वकील मुतलक भी कर दिया, क्योंकि वह भी अपना ही आश्रित था। पादशाह को यह हाल मालूम हुआ। उसे दुःख हुआ, पर उसने कुछ न कहा।

शेख गदाई कंबोह[1] शेख जमाली के पुत्र थे और बड़े बड़े

करने की बात है। एक व्यक्ति पर सारे साम्राज्य का बोझ है। वह बनने बिगड़ने का उत्तरदायी है। जब साम्राज्य के स्तंभ ऐसे स्वेच्छाचारी और उद्दंड हों, तो साम्राज्य का कार्य किस प्रकार चल सकता है? वास्तव में यही लोग उसके हाथ पैर हैं। जब हाथ पैर ठीक तरह से काम करने के बदले काम बिगाड़नेवाले हों, तब उसे उचित है कि या तो नए हाथ पैर उत्पन्न करे और या काम से अलग हो जाय।

१ मुझे अब तक यह नहीं मालूम हुआ कि शेख गदाई व्यक्तित्व में या गुणों में क्या दोष या कलंक था। सभी इतिहास-लेखक उनके विषय में गोल गोल बातें कहते हैं, पर खोलकर कोई कुछ नहीं कहता। भिन्न भिन्न स्थानों से इनका और इनके वंश का जो कुछ हाल मिला है, वह परिशिष्ट में दिया गया है। खानखानाँ ने इन्हें सदारत का मन्सब दिया था। बादशाही आज्ञापत्र में जहाँ और आपत्तियाँ की गई हैं, वहाँ एक इस संबंध में भी आपत्ति की गई है। खानखानाँ ने अवश्य कहा होगा कि शेख ने जो मेरा साथ दिया था, वह बादशाह का सेवक समझकर दिया था और बादशाह की आज्ञा पर दिया

विद्वान् शेखों में संमिलित हो गए थे। जिस समय साम्राज्य बिगड़ा और खानखानाँ के बुरे दिन आए, तो इन्होंने गुजरात में उनका कुछ भी साथ न दिया। अब उन्हें सदारत का पद देकर भारत के सभी विद्वानों और शेखों से ऊँचा उठाया। खानखानाँ स्वयं उनके घर जाते थे, बल्कि अकबर भी कई बार उनके घर गया था। इसपर लोगों में बहुत चर्चा होने लगी। बल्कि वे यहाँ तक कहने लगे कि गीदड़ की जगह कुत्ता आ बैठा है[१]।

था। अब जो कुछ उसके साथ किया गया, वह बादशाह की सेवा करने का पुरस्कार है। इसमें कोई व्यक्तिगत संबंध नहीं है। जो लोग आज बाप दादा का नाम लेकर सेवा में उपस्थित हैं, वे उस समय कहाँ गए थे? या तो शत्रुओं के साथ थे और या संकट देखकर जान बचा गए थे। जिन्होंने साथ दिया, वे प्रत्येक दशा में कृपा के अधिकारी हैं, और फिर श्रीमान् इस पात्रापात्र का विचार छोड़कर देखें कि राजनीति क्या कहती है। यह स्पष्ट है कि जो लोग विपत्ति के समय साथ देते हैं, यदि अच्छा समय आने पर उनके साथ अच्छा व्यवहार न किया जायगा, तो भविष्य के लिये किसी को क्या आशा होगी और किस भरोसे पर कोई साथ देगा? मसजिदों में बैठनेवाले मुल्ला लोग जो चाहें, सो कहें। यह मसजिद या मदरसे की वृत्ति नहीं कि हजरत पीर साहब की संतान हैं या मौलवी साहब के पुत्र हैं, इन्हीं को दो। ये साम्राज्य की समस्याएँ हैं। जरा से ऊँच नीच में बात बिगड़ जाती है और ऐसा उत्पात उठ खड़ा होता है कि देश और राज्य नष्ट हो जाते हैं; और जरा सी ही बात में बन भी जाते हैं। फिर किसी को पता भी नहीं लगता कि यह क्या हुआ था। और फिर शेख गदाई को जिन शेखों और इमामों से ऊँचे बैठाया था, जरा सोचो तो कि वे कौन थे। वही भले आदमी थे न जिनकी कलई थोड़े ही वर्षों बाद खुल गई थी? यदि ऐसे लोगों से उन्हें ऊँचे बैठा दिया, तो क्या धर्म-द्रोह हो गया?

१ سگ نشینر بجائے گربانی +

कहाँ तो वह समय था कि खानखानाँ जो कुछ करते थे, वह बहुत ठीक करते थे, और अब कहाँ यह समय आ गया कि उनकी प्रत्येक बात आखों में खटकने लगी। उनकी प्रत्येक आज्ञा पर लोग असंतुष्ट होने लगे और शोर मचाने लगे। पर वह तो नाम के लिये मंत्री था। वास्तव में वह बुद्धिमत्ता का बादशाह था। जब उसने सुना कि मेरे संबंध में लोगों में अनेक प्रकार की बातें होने लगी हैं और बादशाह भी मुझसे खटक रहा है, तब उसने वहाँ से हट जाना ही उचित समझा। ग्वालियर का इलाका बहुत दिनों से स्वेच्छाचारी हो रहा था। शाही सेना भी गई थी, पर कुछ व्यवस्था न हो सकी थी। अब उसने बादशाह से कुछ भी सहायता न ली। अपनी निज की सेना लेकर वहाँ गया और अपने पास से व्यय करके आक्रमण किया। आप जाकर किले के नीचे डेरे डाल दिए और शेरों की भाँति आक्रमण करके तथा वीरों की भाँति तलवार चलाकर किला तोड़ा, बल्कि देश भी जीत लिया। बादशाह भी प्रसन्न हो गए और लोगों के मुँह भी बंद हो गए।

पूर्वी देशों में अफगानों ने ऐसा सिक्का बैठाया हुआ था कि कोई सरदार उधर जाने का साहस ही न करता था। खानजमाँ बैरम खाँ का दाहिना हाथ था। उसपर भी शत्रुओं का दाँत था। उसने उधर के युद्ध का जिम्मा लिया और वीरता के ऐसे ऐसे कार्य किए कि रुस्तम का नाम फिर से जीवित कर दिखाया।

चँदेरी और काल्पी का भी वही हाल था। खानखानाँ ने उधर के लिये भी साहस किया। पर अमीरों ने सहायता देने के बदले काम में उलटे और बाधाएँ खड़ी कर दीं। काम को बनाने के बदले और बिगाड़ दिया। शत्रुओं से गुप्त रूप से मिल गए; इसलिये खानखानाँ सफल-मनोरथ न हो सका। सेना भी कटी और रुपए भी नष्ट हुए। वह विफल होकर चला आया।

मालवे पर सेना भेजने की चर्चा हो रही थी। खानखानाँ ने निवेदन किया कि यह दास वहाँ स्वयं जायगा और अपने निज के व्यय से

वहाँ लड़कर विजय प्राप्त करेगा। वह स्वयं सेना लेकर गया। दरबार के अमीर इस बार भी सहायता देने के बदले अशुभ-चिंतना करने लगे। आस पास के जमींदारों में प्रसिद्ध कर दिया कि खानाखानाँ पर बादशाह का कोप है; और बादशाह की ओर से गुप्त रूप से पत्र लिख लिखकर लोगों के पास भेजे कि जहाँ पाओ, इसे समाप्त कर दो। अब भला उसका क्या आतंक रह सकता था! ऐसी दशा में यदि वह किसी सरदार या जमींदार को तोड़कर अपनी ओर मिलाना चाहता और उसे बदले में पुरस्कार देने या उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने का वचन देता, तो कौन मानता? परिणाम यह हुआ कि वहाँ से भी वह विफल-मनोरथ ही लौटा।

फिर उसने बंगाल सर करने का बीड़ा उठाया। वहाँ भी दोगले कपटी मित्रों ने दोनों ओर मिलकर काम बिगाड़े। बल्कि नेकनामी तो दूर रही, पहले अभियोगों पर तुर्रा यह बढ़ा कि खानखानाँ जहाँ जाता है, वहाँ जान-बूझकर काम बिगाड़ता है! वास्तविक बात यही है कि उसके प्रताप का अंत हो चुका था। वह जिस बने हुए काम में हाथ डालता था, वह भी बिगड़ जाता था।

यह भी ईश्वर की महिमा है कि या तो वह समय था कि जो बात हो, पूछो खान बाबा से; जो मुकदमा हो, कहो खानखानाँ से। साम्राज्य की भलाई बुराई का सारा अधिकार उसी को था। प्रताप का सूर्य इतना ऊपर पहुँच चुका था जिससे और ऊपर पहुँचना संभव ही नहीं था (कठिनता तो यह है कि उस बिंदु तक पहुँचने के उपरांत फिर वहाँ ठहरने की ईश्वर की आज्ञा ही नहीं है) पर अब उसके ढलने का समय आ गया था। ऊपरी परिस्थितियाँ यह हुई कि बादशाही हाथियों में एक मस्त हाथी फीलवानों के अधिकार से निकल गया और बैरमखाँ के हाथी से जा लड़ा। बादशाही फीलवान ने उसे बहुत रोका; पर एक तो हाथी, दूसरे मस्त, न रुक सका। ऐसी बेजगह टक्कर मारी

कि बैरमखाँ के हाथी की अंतड़ियाँ निकल पड़ीं । खान बहुत बिगड़े और उन्होंने शाही फीलवान को मरवा डाला।

इन्हीं दिनों में बादशाह के खास हाथियों में से एक और हाथी मस्त होकर जमना में उतर गया और बदमस्ती करने लगा। बैरमखाँ भी एक नाव पर बैठे हुए इधर उधर सैर करते फिरते थे। हाथी हथियाई करने लगा और टक्कर के लिये नदी के हाथी (नाव) पर आया। यह दशा देखकर किनारों पर से कोलाहल मचा। मल्लाह भी घबरा गए हाथ पाँव मारते थे, पर उनके दिल डूबते जाते थे। खान की भी विलक्षण दशा हुई। बारे महावत ने हाथी को दबा लिया और बैरमखाँ इस आई हुई आपत्ति से बच गए। अकबर को समाचार मिला। उसने महावत को बाँधकर भेज दिया। पर ये फिर चाल चूक गए। उसे भी वही दंड दिया। अकबर को बहुत दुःख हुआ; और यदि थोड़ा भी हुआ होगा, तो उसे बढ़ानेवाले वहाँ उपस्थित ही थे। बूँद को नदी बना दिया होगा। भूल पर भूल यह हुई कि स्वयं बादशाह के हाथियों को अमीरों में इसलिये बाँट दिया कि वे अपनी ओर से उन्हें तैयार करते रहें। खानखानाँ ने यही समझा होगा कि नवयुवक बादशाह का मिजाज इन्हीं हाथियों के कारण बिगड़ा करता है। न ये हाथी होंगे, न ये खराबियाँ होंगी। पर अकबर दिन रात उन्हीं हाथियों से मन बहलाया करता था; इसलिये वह बहुत घबराया और दिक हुआ।

यों तो खानखानाँ के बहुतेरे शत्रु थे; पर माहम बेगम, उसका पुत्र अदहमखाँ, संबंध में उसका दामाद शहाबखाँ और उसके और कई ऐसे संबंधी थे, जिन्हें अंदर बाहर सब प्रकार से निवेदन करने का अवसर मिला करता था। माहम बेगम और उसके संबंधियों की बातें अकबर बहुत मानता था। यह दुष्टा बुढ़िया हर दम लगाती बुझाती रहती थी। उनमें से और लोग भी जब अवसर पाते थे, तब उसकाते रहते थे। कभी कहते थे कि यह श्रीमान् को बालक समझता है और ध्यान में नहीं लाता; बल्कि कहता है कि मैंने ही सिंहासन पर बैठाया है। जब

चाहूँ, तब उठा दूँ, और जिसे चाहूँ, उसे बैठा दूँ। कभी कहते थे कि ईरान के शाह के पत्र इसके पास आते हैं और इसके निवेदनपत्र वहाँ जाते हैं। अमुक सौदागर के हाथ इसने वहाँ उपहार भेजे हैं; इत्यादि।

दरबारी प्रतिस्पर्धी जानते थे कि बाबर और हुमायूँ के समय के पुराने पुराने सेवक कहाँ कहाँ हैं और कौन कौन लोग ऐसे हैं, जिनके हृदय में खानखानाँ की प्रतिस्पर्धा या विरोध की आग सुलग सकती है। उन उन लोगों के पास आदमी भेजे गए। शेख मुहम्मद गौस ग्वालियर-वाले का दरबार से संबंध टूट गया था और वे उस बात को खान-खाना के अधिकारों का फल समझे हुए थे। उनके पास भी पत्र भेजे गए। मुकदमे के एंच पेंच से उन्हें परिचित कराके उनसे कहा गया कि आप भी ईश्वर से प्रार्थना कीजिए। वे पहुँचे हुए फकीर थे। वे भी साफ नीयत से षड्यंत्र में संमिलित हो गए।

यद्यपि विस्तार बहुत होता जाता है, तथापि आजाद इतना कहे बिना आगे नहीं बढ़ सकता कि बैरम खाँ में इतने अधिक गुण और विशेषताएँ होने पर भी, इतनी अधिक बुद्धिसत्ता और कर्त्तव्य-परा-यणता होने पर भी, कुछ ऐसी बातें थीं जो अधिकांश में उसके पतन का कारण हुईं। वे बातें इस प्रकार हैं—

(१) वह बहुत अध्यवसायी और साहसी था। जो उचित समझता था, वह कर गुजरता था। उसमें किसी का लिहाज नहीं करता था। और तब तक समय भी ऐसा ही था कि साम्राज्य के कठिन और भारी भारी कामों में और कोई हाथ भी नहीं डाल सकता था। पर अब वह समय निकल गया था। पहाड़ कट गए थे। नदियों में घुटने घुटने पानी हो गया था। अब ऐसे ऐसे काम सामने आते थे, जिन्हें और लोग भी कर सकते थे। पर वे यह भी जानते थे कि खानखानाँ के रहते हमारी दाल न गल सकेगी।

(२) वह अपने ऊपर किसी और को देख भी न सकता था। पहले वह ऐसे स्थान पर था, जिससे और ऊपर जाने का मार्ग ही न

था। पर अब साफ सड़क बन गई थी और सभी लोगों के होंठ बादशाह के कानों तक पहुँच सकते थे। फिर भी उसके होते किसी का वश चलना कठिन था।

(३) बड़े बड़े युद्धों और पेचीले मामलों के लिये उसे ऐसे ऐसे योग्य व्यक्ति और सामग्रियाँ तैयार रखनी आवश्यक होती थीं, जिनसे वह अपनी उपयुक्त युक्तियों और उच्चाकांक्षाओं को पूरा कर सके। इसके लिये रुपयों की नहरें और झरने (जागीरें और इलाके) अधिकार में होने चाहिए थे। अब तक वे सब उसके हाथ में थे; पर अब उन पर और लोग भी अधिकार करना चाहते थे। लेकिन उन्हें यह भय अवश्य था कि इसके सामने हमारा पैर जमना कठिन होगा।

(४) उसकी उदारता और गुणग्राहकता के कारण हर समय बहुत से योग्य व्यक्तियों और वीर सैनिकों का इतना अधिक समूह उसके पास उपस्थित रहता था कि उसके दस्तरख्वान पर तीस हजार हाथ पड़ते थे। इसी लिये वह जिस काम में चाहता था, उसमें तुरंत हाथ डाल देता था। उसकी राजनीतिज्ञता और उपाय का हाथ प्रत्येक राज्य में पहुँच सकता था और उदारता उसकी पहुँच को और भी बढ़ाती रहती थी। इसलिये लोग उसपर जो अभियोग लगाना चाहते थे, वह लग सकता था।

(५) वह जरूर यह समझता होगा कि अकबर अभी वह बच्चा है जो मेरी गोद में खेला है; और यहाँ बच्चे के लहू में स्वाधीनता की गरमी सुरसुराने लगी थी। इसपर विरोधियों का उसकाना उसे और भी गरमाए जाता था।

यह सब कुछ था, पर श्रद्धा और स्वामिभक्ति के कारण उसने जो जो सेवाएँ की थीं, उनकी छाप अकबर के मन में बैठी हुई थी। इसके साथ ही यह भी था कि अकबर किसी को कुछ दे न सकता था और किसी को नौकर भी नहीं रख सकता था। अच्छे अच्छे इलाकों में खानखानाँ के आदमी तैनात थे। वे सब तरह से संपन्न और

प्रसन्न दिखाई देते थे; और जो लोग खास बादशाही नौकर कहलाते थे, वे उजड़ी हुई जागीरें पाते थे और बुरी दशा में पाए जाते थे। अंडा यहाँ से फूटता है कि सन् ९६७ हि०, सन् ५ जलूसी में बैरमखाँ और अकबर दरबारियों समेत आगरे में थे। मरियम मकानी दिल्ली में थीं। शत्रु साथ में लगे हुए थे और हर दम झगड़े के मंत्र फूँकते चले जाते थे। बयाना नामक स्थान में एक जलसे में यही चर्चा छिड़ी। अकबर के बहनोई मिरजा शरफउद्दीन [1] भी उपस्थित थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि इसने इस बात की सब व्यवस्था कर ली है कि आपको सिंहासन से उठा दे और कामरान को उसपर आसीन कर दे। स्वार्थियों की ये बातें अनुकूल बैठ गई और अकबर शिकार के लिये उठा। सब लोग आगरे से जालेसर और सिकंदरे होते हुए खुरजे होकर सराय बख्वल में आ उतरे। मार्ग में माहम ने देखा कि इस समय बैरमखाँ नहीं है, मैदान खाली है। वह बिसूरती सूरत बनाकर अकबर के सामने आई और बोली की वृद्धावस्था और दुर्बलता के कारण बेगम मरियम मकानी की विलक्षण दशा है। मेरे पास कई पत्र आए हैं। वे श्रीमान् को देखने के लिये तरसती हैं। बादशाह को भी इस बात का ध्यान हो गया। अदहम खाँ तथा और कई संबंधी, जो अमीर और अच्छे पदों पर थे, दिल्ली में ही थे। इसी बीच में उनके निवेदन पत्र भी आ पहुँचे। लहू का खिंचाव था। बाद-

---

१ मिरज़ा शरफउद्दीन एक काश्गरी ख्वाजा की संतान थे। जब आए थे, तब बिलकुल, भींगी बिल्ली बने थे। अकबर ने खानखानाँ की संमति से अपनी बहन का विवाह उनके साथ कर दिया था। खानखानाँ के बाद वे विद्रोही हो गए। वे देश को नष्ट भ्रष्ट करते फिरते थे और अमीर लोग उनके पीछे सेना लिए फिरते थे। वह खानखानाँ का ही आतंक था, जिसने ऐसे लोगों को दबा रखा था। इन विद्रोहियों ने जो कुछ किया, उसका दंड पाया। इनमें से कुछ के विवरण आगे दिए गए हैं।

शाह दुःखी हो गया और दिल्ली को चल पड़ा[१]। शहाब खाँ पंज-हज़ारी अमीर था। वह माहम का संबंधी भी था। उसकी स्त्री पापा आगा मरियम मकानी की संबंधिनी थी। उस समय वही दिल्ली का हाकिम था। दिल्ली पचीस तीस कोस रही होगी कि वह आगे बढ़कर स्वागत के लिये आया। उसने बहुत से उपहार आदि सेवा में प्रस्तुत किए और शहाबउद्दीन अहमदखाँ हो गया। इसके उपरांत वह एकांत में अकबर के पास गया और हाँपती काँपती सूरत बनाकर बोला कि अहो भाग्य जो मैंने श्रीमान् के चरणों के दर्शन किए! पर अब हम प्राण निछावर करनेवाले सेवकों के प्राणों की रक्षा नहीं। खानखानाँ समझेगा कि हम लोगों के संकेत से ही श्रीमान् का दिल्ली में पदार्पण हुआ है; इसलिये जो दशा मुसाहब बेग की हुई, वही हम लोगों की भी होगी। महल में माहम ने भी यही रोना रोया; बल्कि खानखाना के अधिकारों और उनके परिणाम स्वरूप आनेवाली कठिनाइयों का वर्णन करके तिनके को पहाड़ कर दिखाया; और कहा कि यदि बैरमखाँ है, तो श्रीमान् का साम्राज्य न रहेगा। और फिर शासन तो अब भी वही करता है। इस समय सब से बड़ी कठिनता यही है कि वह कहेगा कि आप बिना मेरी आज्ञा के दिल्ली गए, इन लोगों के कहने से गए। इतनी सामर्थ्य किसमें है जो उसका सामना कर सके या उसका क्रोध सँभाल सके! अब श्रीमान् की यही बहुत बड़ी कृपा होगी कि आज्ञा मिल जाय और हम सब पुराने सेवक तथा सेविकाएँ मक्के कि ओर चली जायँ। वहाँ ईश्वर से प्रार्थना कर करके ही हम श्रीमान् की सेवा करते रहेंगे।

---

१ इतिहास-लेखक कहते हैं कि बादशाह आगरे से शिकार के लिए निकले थे। मार्ग में यह चालबाजियाँ हुईं। अब्बुफजल कहते हैं कि अकबर ने भीतर ही भीतर इन सब लोगों से बातचीत पक्की कर ली थी। वह शिकार का बहाना करके दिल्ली में आया, और वहाँ पहुँचकर खानखानाँ की समस्या का निराकरण कर डाला।

अकबर ने कहा कि मैं खान बाबा को लिखता हूँ कि वे तुम लोगों को क्षमा कर दें; और एक पत्र लिखा कि हम स्वयं मरियम मकानी के दर्शनों के लिए यहाँ आए हैं। इन लोगों का इससे कोई संबंध नहीं है। ये लोग यही बात सोच सोचकर बहुत चिंतित हैं। तुम अपनी मोहर और हस्ताक्षर से एक पत्र इन को लिख भेजो, जिस में इनका संतोष हो जाय और ये लोग निश्चिंत होकर सेवा में लगे रहें, इत्यादि इत्यादि। बस इतनी गुंजाइश देखते ही सब लोग फूट बहे। उन्होंने निंदाओं के दफ्तर खोल दिए। शहाब उद्दीन अहमदखाँ ने कई असली और नकली मिसलें तैयार कर रखी थीं। उन सब के विवरण निवेदन किए। साक्षी के लिए दो तीन साथी भी पहले से तैयार कर रखे थे। उन्होंने साक्षियाँ दीं। तात्पर्य यह कि बादशाह के मन में खानखानाँ की अशुभचिंतना और विद्रोह का विचार ऐसी अच्छी तरह बैठा दिया कि उसका दिल फिर गया। उसने इसके सिवा और कोई उपाय न देखा कि अपने आप को उन लोगों की युक्ति और परामर्श के अधीन कर दे।

इधर जब खानखानाँ के पास अकबर का पत्र पहुँचा और साथ ही उसके शुभचिंतकों के पत्र पहुँचे कि दरबार का रंग बेरंग है, तब वह कुछ चकित और कुछ दुःखी हुआ। उसने बहुत ही नम्रतापूर्वक एक निवेदन पत्र लिखा, जिसमें धर्म की शपथ खाकर अपनी सफाई दी थी। उसका सारांश यही था कि जो सेवक निष्ठापूर्वक श्रीमान् की सेवा करते हैं, उनकी ओर से इस दास के मन में किसी प्रकार की बुराई नहीं है। उसने यह निवेदनपत्र ख्वाजा अमीनउद्दीन महमूद (जो बाद में ख्वाजा जहान हो गए थे), हाजी मुहम्मद खाँ सीस्तानी और रसूल मुहम्मदखाँ आदि विश्वसनीय सरदारों के हाथ भेजा और साथ ही कुरान भी भेज दिया, जिसमें शपथों की प्रामाणिकता और भी बढ़ जाय। पर यहाँ बात सीमा से बहुत आगे बढ़ चुकी थी; इसलिये उस निवेदनपत्र का कुछ भी प्रभाव न हुआ। कुरान

ताऊपर रख दिया गया और जो लोग निवेदन करने के लिये आए थे, वे बंदी हो गए। बाहर शहाबउद्दीन अहमद खाँ वकील मुतलक हो गए और अंदर माहम बैठी बैठी आज्ञाएँ प्रचलित करने लगी। अब सब लोगों में यह बात प्रसिद्ध कर दी गई कि खानखानाँ पर बादशाह का कोप है। बात मुँह से निकलते ही दूर पहुँच गई। आगरे में खानखानाँ के पास जो अमीर और सेवक आदि उपस्थित थे, वे उठ उठकर दिल्ली को दौड़े। अपने हाथ के रखे हुए नौकर चाकर और आश्रित लोग अलग हो होकर चलने लगे। यहाँ जो आता था, माहम और शहाबउद्दीन अहमद खाँ मिलकर उसका मन्सब बढ़ाते थे और उसे नई नई जागीरें तथा सेवाएँ दिलवाते थे।

आस पास के प्रांतों तथा सूबों आदि में जो अमीर थे, उनके नाम आज्ञाएँ प्रचलित की गईं। शम्सुद्दीन खाँ अतका के पास भेरे (पंजाब) में आज्ञा पहुँची कि अपने इलाके का प्रबंध करके लाहौर को देखते हुए शीघ्र दिल्ली में श्रीमान् की सेवा में उपस्थित हो। आज्ञाएँ और सूचनाएँ भेजकर मुनइम खाँ भी क़ाबुल से बुलवाए गए। ये सब पुराने और अनुभवी सिपाही थे, जो सदा बैरम खाँ की आँखें देखते रहते थे। साथ ही नगर के प्रकार तथा दिल्ली के किले की मरम्मत और मोरचे-बंदी भी आरंभ हो गई। वाह रे बैरम, तेरा आतंक!

यहाँ खानखानाँ ने अपने मुसाहबों से परामर्श किया। शेख गदाई तथा कुछ दूसरे लोगों की यह संमति थी कि अभी शत्रुओं का पल्ला भारी नहीं हुआ है। आप यहाँ से चटपट सवार हों और बादशाह को ऊँच नीच समझाकर अपने अधिकार में ले आवें, जिसमें उपद्रवियों को अधिक उपद्रव खड़ा करने का अवसर न मिले। कुछ लोगों की यह संमति थी कि बहादुर खाँ को सेना देकर मालवे पर भेजा है। स्वयं वहाँ चलकर और देश पर अधिकार करके बैठ जाना चाहिए। फिर जैसा अवसर होगा, वैसा किया जायगा। कुछ लोगों की यह भी संमति थी कि खानजमाँ के पास चले चलो। पूरब का इलाका

अफगानों से भरा हुआ है; उसे साफ करो और कुछ दिन वहीं बिताओ।

खानखानाँ सब लोगों के मिजाज बहुत अच्छी तरह पहचाने हुए था। उसने कहा कि अब श्रीमान् का मन मुझसे फिर गया। अब किसी प्रकार निभने की नहीं। मैंने अपना सारा जीवन साम्राज्य की शुभ-चिंतना में बिताया। इस बुढ़ापे में माथे पर अशुभ-चिंतना का टीका लगाना सदा के लिये मुँह काला करना है। इन विचारों को भूल जाओ। मेरी बहुत दिनों से हज करने की कामना थी। ईश्वर ने स्वयं ही उसका साधन प्रस्तुत कर दिया है। अब उधर का ही विचार करना चाहिए। उस समय वहाँ जो अमीर आदि साथ थे, उन्हें स्वयं दरबार में भेज दिया। उसने समझा था और बहुत ठीक समझा था कि ये सब बादशाही नौकर हैं। यद्यपि इन्होंने मुझसे बहुत से लाभ उठाए हैं, बल्कि इनमें से अधिकांश मेरे ही हाथ के बनाए हुए हैं, लेकिन फिर भी उधर बादशाह है। यदि ये मेरे पास रहे भी तो कोई आश्चर्य नहीं कि उधर समाचार भेज रहे हों; या अब भेजने लगें और अंत में उठ भागें। इसलिये यही उत्तम है कि इन्हें मैं ही बिदा कर दूँ। संभव है, ये वहाँ पहुँचकर कुछ बनावें; क्योंकि मैंने इनकी कभी कोई हानि नहीं की है। इन्होंने मुझसे सदा लाभ ही उठाया है। बैरमखाँ ने खानजमाँ के भाई बहादुरखाँ को सेना देकर मालवे पर भेजा हुआ था। दरबार का यह हाल देखकर उसने उसे यह सोचकर वापस बुला लिया कि वहाँ उसकी आवश्यकताएँ कौन पूरी करेगा। दरबार से उसकी बुलाहट की भी आज्ञा पहुँची। इसमें कई मतलब होंगे। पहली बात तो यह थी कि ये दोनों भाई खानखानाँ के दोनों हाथ थे। सोचा गया होगा कि कहीं ये लोग मिलकर उठ न खड़े हों। दूसरे यह भी सोचा गया होगा कि ये अपने निज के लाभ की आशा पर खानखानाँ से विमुख हों और इधर मुड़ें। यदि इधर न मुड़ें तो भी हमारे विरुद्ध न हों। पर बहादुरखाँ बाल्यावस्था में अकबर के

साथ खेला हुआ था और अकबर उसे भाई कहता था; इसलिये वह अकबर से प्रत्येक बात निस्संकोच होकर कहता था। संभवतः वह इन लोगों के ढब का न निकला होगा और खानखानाँ की ओर से सफाई दिखलाता होगा; इसलिये बहुत शीघ्र उसे हटाने का हाकिम बनाकर पश्चिम से पूर्व की ओर फेंक दिया।

शेख गदाई आदि साथियों ने परामर्श दिया और खानखानाँ ने भी चाहा कि स्वयं बादशाह की सेवा में उपस्थित हो और उसपर जो अभियोग या अपराध लगाए गए हैं, उनके संबंध में अपना वक्तव्य उपस्थित करके सफाई दे और तब विदा हो। या जब जैसा अवसर आवे, तब वैसा करे। पर शत्रुओं ने यह भी न होने दिया। उन्हें यह भय हुआ कि यदि खानखानाँ अकबर के सामने आया, तो वह अपना अभिप्राय इतने प्रभावशाली रूप में प्रकट करेगा कि इतने दिनों में हमने जो बातें बादशाह के मन में बैठाई हैं, उन सब का प्रभाव जाता रहेगा और वह दो चार बातों में ही हमारा बना बनाया महल ढा देगा। उन लोगों ने अकबर को यह भय दिखलाया कि खानखानाँ के पास स्वयं ही बहुत बड़ी सेना है। सब अमीर आदि भी उससे मिले हुए हैं। नमक-हलालों की संख्या बहुत कम है। यदि वह यहाँ आया, तो ईश्वर जाने, क्या बात हो जाय। बादशाह भी अभी बालक ही था। वह डर गया और उसने स्पष्ट रूप से लिख भेजा कि इधर आने का विचार न करना। सेवा में उपस्थित न होने पाओगे। अब तुम हज के लिये चले जाओ। जब वहाँ से लौटकर आओगे, तब तुम्हें पहले से भी अधिक सेवाएँ मिलेंगी। वृद्ध सेवक अपने मुसाहबों की ओर देखकर रह गया कि पहले तुम क्या कहते थे और मैं क्या कहता था; और अब क्या कहते हो। विवश होकर उसे मक्के जाने का विचार ही निश्चित करना पड़ा।

अकबर के गुणों की प्रशंसा नहीं हो सकती। मीर अब्दुललतीफ कजवीनी को, जो अब मुल्ला पीर मुहम्मद के स्थान पर शिक्षक थे और

दीवान हाफ़िज पढ़ाया करते थे, अपनी ओर से खानखानाँ के पास भेजा और जबानी कहला दिया कि तुम्हारी सेवाएँ और राजनिष्ठा सारे संसार को विदित है। अब तक हमारा मन सैर और शिकार आदि की ओर प्रवृत्त था; इसलिये हमने राज्य के सब कार्य तुमपर छोड़ दिए थे। अब हमारा विचार है कि सर्व साधारण और प्रजा के कार्यों को स्वयं किया करें। तुम बहुत दिनों से संसार को त्यागने का विचार रखते हो और तुम्हें हजाज की यात्रा करने का शौक है। तुम्हारा यह शुभ विचार मंगलजनक हो। भारतीय परगनों में से जो इलाका तुम्हें पसंद हो, लिखो; वह तुम्हारी जागीर हो जायगा। तुम जहाँ कहोगे, वहाँ तुम्हारे गुमाश्ते उसकी आय तुम्हारे पास भेज दिया करेंगे। जबानी यह सँदेसा तो भेजा ही, साथ ही आप भी उसी ओर प्रस्थान किया। कुछ अमीरों को यह कहकर आगे बढ़ा दिया कि खान-खानाँ को हमारे राज्य की सीमा के बाहर निकाल दो। जब वे लोग पास पहुँचे, तब उन्हें लिखा कि मैंने संसार का बहुत कुछ देख लिया और कर लिया। अब मैं इनसे हाथ उठा चुका। बहुत दिनों से मेरा विचार था कि मैं ईश्वरीय मंदिर (काबा) और पवित्र रौजों पर जाकर बैठूँ और ईश्वरभजन में दत्तचित्त होऊँ। ईश्वर को धन्यवाद है कि अब उसका अवसर आ गया। उस उदारहृदय ने बादशाह की सब बातें सिर आँखों रखीं और बहुत प्रसन्नता से उन सबका पालन किया। नागौर से तोग, अलम, नक्कारा, फीलखाना आदि अमीरोंवाली समस्त सामग्री तथा राजसी वैभव के सब पदार्थ अपने भानजे हुसैनकुली बेग के हाथ भेज दिए। वह वहाँ से चलकर झज्झर पहुँचा। उसका निवेदन-पत्र, जिसपर नम्रतापूर्ण और सच्चे हृदय से निकले हुए आशीर्वादों का सेहरा चढ़ा हुआ था, बादशाह के सामने पढ़ा गया और वह प्रसन्न हो गया। अब वह समय आ गया कि खानखानाँ के लश्कर की छावनी पहचानी न जाती थी। उसके जो साथी दोनों समय उसके साथ बैठ-कर उसके थाल पर हाथ बढ़ाते थे, उनमें से अधिकांश अब चले गए

थे। हद है कि शेख गदाई भी अलग हो गए। थोड़े से संबंधी और सच्चे भक्त साथ रह गए थे। उनमें से एक हुसैनखाँ अफगान थे, जिनका विवरण आगे चलकर अलग दिया गया है।

अब्बुलफजल ने अकबरनामे में कई पृष्ठ का एक राजकीय अज्ञापत्र लिखा है जो उस अभागे के नाम जारी हुआ था। उसे पढ़कर अनजान और निर्दय लोग उसपर नमकहरामी का अपराध लगावेंगे। पर विश्वास करने के योग्य दो ही व्यक्तियों का कथन होगा। एक तो उसका जिसने उसके संबंध की एक बात को न्याय की दृष्टि से देखा होगा। ऐसा व्यक्ति भविष्य में किसी के साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करने और उसका साथ देने से तोबा करेगा। और उसकी बात विश्वसनीय होगी जिसने किसी होनहार उम्मेदवार के साथ जान लड़ाकर सेवा का कर्तव्य पूरा किया होगा। उसकी आँखों में खून उतर आवेगा; बल्कि क्रोधाग्नि से उसका हृदय जलने लगेगा और उसके मुँह से धूआँ निकलेगा।

उक्त राजकीय आज्ञापत्र में खानखानाँ की समस्त सेवाओं पर पानी फेर दिया गया है। उसके पार्श्ववर्तियों ने जान लड़ाकर जो सेवाएँ की थीं, उन्हें मिट्टी में मिलाया गया है। उस पर अभियोग लगाया गया है कि वह स्वयं अपना तथा अपने संबंधियों और सेवकों का ही पालन करता था। उसपर यह भी अभियोग लगाया गया है कि उसने पठान सरदारों को विद्रोह करने के लिये उभाड़ा था और स्वयं अमुक अमुक प्रकार से विद्रोह करने के मनसूबे बाँधे थे। इसमें अलीकुलीखाँ और बहादुरखाँ को भी लपेटा गया है। वृद्धावस्था की नमकहरामी और स्वामिद्रोह जैसे दूषित विचारों और गंदे शब्दों से उसके विषय में उल्लेख करके कागज काला किया गया है। भला इनकी मानसिक वेदनाओं को कौन जाने। या तो अभागा बैरमखाँ जाने या उसका दिल जाने, जिसकी सेवाएँ बैरमखाँ की सेवाओं के समान नष्ट हुई हों। और विशेषतः ऐसी दशा में जब कि इस बात का

विश्वास हो कि ये सब बातें शत्रु लोग कर रहे हैं और गोद में पाला हुआ स्वामी उन शत्रुओं के हाथ की कठपुतली हो रहा है। हे ईश्वर, किसी को निर्दय स्वामी न दे!

कमीने शत्रु किसी प्रकार उसका पीछा ही न छोड़ते थे। उसके पीछे कुछ अमीर सेनाएँ देकर इसलिये भेजे गए थे कि वे उसे भारत की सीमा के बाहर निकाल दें। जब वे लोग समीप पहुँचे, तब बैरमखाँ ने उनको लिखा कि मैंने संसार का बहुत कुछ देख लिया और इस साम्राज्य में सब कुछ कर लिया। अब मन में कोई आकांक्षा बाकी नहीं रह गई। मैं सबसे हाथ उठा चुका। बहुत दिनों से मुझे इस बात का शौक था कि मैं इन आँखों से ईश्वर के मंदिर और पवित्र रौजों के दर्शन करूँ। धन्यवाद है उस ईश्वर को कि अब उसका अवसर मिला है। तुम लोग क्यों व्यर्थ कष्ट करते हो। पर वे सब बढ़ते चले आए।

मुल्ला पीर मुहम्मद को ख़ानख़ानाँ ने हज के लिये भेज दिया था। उन्हें उसी समय शत्रुओं ने सँदेसे भेज दिए कि यहाँ गुल खिलनेवाला है। तुम जहाँ पहुँचे हो, वहीं ठहर जाना। वह गुजरात में बिल्ली की तरह ताक लगाए बैठे थे। अब शत्रुओं के परचे पहुँचे कि बुड्ढा शेर अधमरा हो गया। आओ, शिकार करो। यह सुनते ही वे दौड़े। झज्झर में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए। यारों ने अलम और नक्कारा दिलवाकर सेना का प्रधान बना दिया और कहा कि ख़ानख़ानाँ के पीछे पीछे जाओ और उसे भारत से मक्के के लिये निकाल दो। इधर ख़ानख़ानाँ को नागौर पहुँचने पर समाचार मिला कि मारवाड़ के राजा मालदेव ने गुजरात और दक्षिण का मार्ग रोका हुआ है। साम्राज्य के नमकहलाल ख़ानख़ानाँ से उसे अनेक कष्ट पहुँचे हुए थे। ख़ानख़ानाँ ने दूरदर्शिता के विचार से नागौर से खेमे का रुख इसलिये फेरा कि बीकानेर होता हुआ पंजाब से निकल कर कंधार के मार्ग से मशहद की ओर जाय। पर दरबार से जो आज्ञाएँ प्रचलित हुई थीं, उन्हें देखकर वह मन ही मन घुट रहा था। शत्रुओं ने आस पास के जमींदारों

को लिख दिया था कि यह जीवित न जाने पावे। इसे जहाँ पाओ, वहीं समाप्त कर दो। साथ ही यह भी हवाई उड़ी कि खानखानाँ विद्रोह करने के लिये पंजाब जा रहा है; क्योंकि वहाँ सब प्रकार की सामग्री सहज में मिल सकती है। वह ऐसा दुःखी हुआ कि उसने तुरंत अपना विचार बदल दिया। इन नीचों को वह भला क्या सम-झता था! उसने स्पष्ट कह दिया कि जिन दुष्ट झगड़ा लगानेवालों ने बादशाह को मुझसे अप्रसन्न किया है, अब मैं उन्हें भली भाँति दंड देकर और तब बादशाह से विदा होकर हज के लिये जाऊँगा। उसने सेना एकत्र करने का कार्य आरंभ कर दिया और आस पास के अमीरों को इन सब बातों की सूचना दे दी। नागौर से बीकानेर आया। राजा कल्याणमल उसका मित्र था। और सच पूछो तो शत्रुओं के सिवा और कौन ऐसा था जो उसका मित्र न था। खानखानाँ वहाँ पहुँचा। बहुत धूमधाम से उसकी दावतें हुईं। कई दिनों तक आराम किया। इतने में उसे समाचार मिला कि मुल्ला पीर मुहम्मद तुम्हें भारत से निर्वासित करने के लिये आ रहे हैं। वह मन ही मन जल-कर राख हो गया। मुल्ला का इस प्रकार आना कोई साधारण घाव नहीं था। पर मुल्ला ने इतने पर भी संतोष न किया। इसपर भी और अधिक मानसिक कष्ट पहुँचाया; अर्थात् नागौर में ठहरकर खानखानाँ को एक पत्र लिखा, जिसमें ताने की और बहुत सी चिनगारियाँ तो थीं ही, साथ ही यह शेर भी लिखा था—

آمدم در دل اساس عشق محکم همچناں +
باغمت جاں بطا فرسودہ همدم همچناں + ۱۰

---

१ मैं अपने हृदय में अपने साथी (या मित्र) के प्रेम का वैसा ही (पहले का सा) आधार रखकर आया हूँ। अपने साथी के प्राणों पर संकट देखकर मुझे वैसा ही (पहले का सा) दुःख है।

खानखानाँ ने भी इसका पूरा पूरा उत्तर लिखा, पर उसमें का एक वाक्य उसपर बहुत ही ठीक घटता था, जो इस प्रकार था—

آمدن مردانه اما رسیدن توقف کردن زنانه [1]

यद्यपि चोटें पहले से भी हो रही थीं और उसने यह वाक्य लिखा भी था, पर उसने मसजिद के टुकड़तोड़ को चालीस वर्ष तक नमक खिलाकर अमीर-उल्-उमरा बनाया था; और आज उससे ऐसी बातें सुननी पड़ी थीं, इसलिये उसे बहुत अधिक मानसिक कष्ट हुआ। उसने उसी कष्ट की दशा में अकबर की सेवा में एक निवेदनपत्र लिखा जिसके कुछ वाक्य मिल गए हैं। ये उस रक्त की बूँदें हैं जो घायल हृदय से निकला है। उनका रंग दिखला देना भी उचित जान पड़ता है। उनका अनुवाद इस प्रकार है—

"ईर्ष्या करनेवालों के कहने से और उनके इच्छानुसार मेरे वे अधिकार नष्ट हो गए हैं जो मेरी तीन पीढ़ियों ने सेवाएँ करके प्राप्त किए थे; और श्रीमान् के समक्ष मुझपर श्रीमान् के द्रोह और अशुभ चिंतना के कलंक लगाए गए हैं और मेरी हत्या करने के लिये परामर्श दिया गया है। मैं अपने प्राणों की रक्षा के लिये, जो प्रत्येक धर्म के अनुसार कर्तव्य है, यह चाहता हूँ कि अपने उद्योग से इन विपत्तियों से अपना छुटकारा करूँ। इस भय से (कि स्वार्थी लोग यह समझ और कह रहे हैं कि मैं विद्रोह करने के लिये तैयार हूँ) मैं श्रीमान् की सेवा में (यद्यपि मैं हज के लिये यात्रा करने का परम उत्सुक हो रहा हूँ) आना ठीक नहीं समझता हूँ। यह बात सारे संसार को विदित है कि हम तुर्कों के वंश में कभी नमकहरामी देखने में नहीं आई। इसलिये मैंने मशहद का मार्ग ग्रहण किया है जिसमें इमाम साहब के रौजे, नजफ और करबला की

---

१ तुम आए तो मरदों की तरह हो; यहाँ पहुँचने में तुमने विलंब किया, यही जनानापन है।

ड्योढ़ियों के दर्शन और प्रदक्षिणा करके उन पवित्र और पूज्य स्थानों में श्रीमान् की आयु और साम्राज्य की वृद्धि के लिए प्रार्थना करके आवे जाऊँ। निवेदन यह है कि यदि श्रीमान् इस सेवक को नमक-हरामों में और सरवा डालने के योग्य समझते हों, तो किसी बिना नामनिशान के (अप्रसिद्ध) व्यक्ति को इस कार्य के लिये नियुक्त करके आज्ञा दें कि वह वैरम का सिर काटकर और भाले पर चढ़ाकर, श्रीमान् के दूसरे अशुभचिंतकों को सचेत करने और शिक्षा देने के लिये, श्रीमान् की सेवा में ले जाकर उपस्थित करे। यदि मेरी यह प्रार्थना स्वीकृत हो जाय तो मैं अपना परम सौभाग्य समझूँगा। और नहीं तो इस मुल्ला के अतिरिक्त, जो इस सेवक के नमक से पले हुए लोगों में से हैं, सेना के किसी और सरदार को इस कार्य के लिये नियुक्त कर दें।"

इस विकट अवसर पर अभाग्य का पेंच पड़ गया था। उस स्वामिनिष्ठ जान निछावर करनेवाले ने चाहा था कि मेरी और बादशाह की अप्रसन्नता का परदा रह जाय और मैं प्रतिष्ठा की पगड़ी दोनों हाथों से थामकर देश से निकल जाऊँ। पर भाग्य ने उस बुड्ढे की दाढ़ी लड़कों अथवा लड़कों के से स्वभाववाले बुड्ढों के हाथ में दे दी थी। वे बुरी नीयतवाले दुष्ट यह बात नहीं चाहते थे कि खानखानाँ भारत से जीवित चला जाय। जब बात बिगड़ जाती है और मन फिर जाते हैं, तब शब्दों और लेखों का बल क्या कर सकता है। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि जब बादशाह ने उसका वह निवेदनपत्र पढ़ा, तब उसकी आँखों में आँसू भर आए और उसे बहुत दुःख हुआ। उसने मुल्ला पीर मुहम्मद को वापस बुला लिया और आप दिल्ली को लौट पड़ा। पर शत्रुओं ने अकबर को समझाया कि खानखानाँ पंजाब जा रहा है। यदि वह पंजाब में जा पहुँचा और वहाँ उसने विद्रोह खड़ा किया, तो बहुत बड़ी कठिनता उपस्थित होगी। पंजाब ऐसा देश है, जहाँ जब जितनी सेना और सामग्री चाहें, तब उतनी मिल सकती है।

यदि वह काबुल चला गया, तो कंधार तक अधिकार कर लेना उसके लिये कोई कठिन बात नहीं है। और यदि वह स्वयं कुछ न कर सका, तो ईरान से सेना लाना तो उसके लिये कोई बड़ी बात ही नहीं है। इन बातों पर विचार करके सेना का सेनापतित्व शम्सुद्दीन मुहम्मदखाँ अतका के नाम किया और पंजाब भेज दिया। यदि सच पूछो तो आगे जो कुछ हुआ, वह अकबर के लड़कपन और अनुभव के अभाव के कारण हुआ। सभी इतिहास-लेखक एक स्वर से कहते हैं कि बैरमखाँ कोई उपद्रव नहीं खड़ा करना चाहता था। यदि अकबर स्वयं शिकार खेलता हुआ उसके खेमे में जा खड़ा होता, तो वह उसके पैरों पर ही आ पड़ता। फिर बात बनी बनाई थी। यहाँ तक मामला बढ़ता ही नहीं। नवयुवक बादशाह तो कुछ भी नहीं करता था। यह सब उसी बुढ़िया और उसके साथियों की करतूत थी। उनका मुख्य उद्देश्य यही था कि उसे स्वामी से लड़ाकर उसपर नमकहरामी का कलंक लगावे; उसे सब प्रकार दुःखी करके इधर उधर दौड़ावें; और यदि वह अपनी वर्तमान दुरवस्था में उलट पड़े, तो फिर शिकार हमारा मारा ही हुआ है। इसी उद्देश्य से वे आग लगानेवाले नई नई हवाइयाँ उड़ाते थे और कभी उसके विचारों की और कभी अकबर की आज्ञाओं की रंगबिरंगी फुलझड़ियाँ छोड़ते थे। बुड्ढा सेनापति सब कुछ सुनता था, मन ही मन कुढ़ता था और चुप रह जाता था। वह अच्छी नीयत और अच्छी मतिवाला इस संसार से निराश और संसारवालों से दुःखी होकर बीकानेर से पंजाब की सीमा में पहुँचा। अपने मित्र अमीरों को उसने लिखा कि मैं हज करने के लिये जा रहा था। पर सुनता हूँ कि कुछ लोगों ने ईश्वर जाने क्या क्या कहकर बादशाह का मन मेरी ओर से फेर दिया है। विशेषतः माहम अंतका बहुत घमंड करती है और कहती है कि मैंने बैरमखाँ को निकाला। अब मेरी यही इच्छा होती है कि एक बार आकर इन दुष्टों को दंड देना चाहिए। फिर नए सिरे से बादशाह से आज्ञा लेकर इस पवित्र यात्रा में अग्रसर होना चाहिए।

इसने अपने परिवार के लोगों और तीन वर्ष के पुत्र मिरजा अब्दुल-रहीम को, जो बड़ा होने पर खानखानाँ और अकबर का सेनापति हुआ था, अपनी समस्त धन-संपत्ति आदि के साथ भटिंडे के किले में छोड़ा। शेर मुहम्मद दीवाना उसके विशिष्ट और बहुत पुराने नौकरों में से था और इतना विश्वसनीय था कि खानखानाँ का पुत्र कहलाता था। वह उस समय भटिंडे का हाकिम था। और एक उसी पर क्या निर्भर है, उस समय जितने अमीर और सरदार थे, सभी उसके सामने के और आश्रित थे। उसी के भरोसे पर निश्चिंत होकर उसने दीपालपुर के लिये प्रस्थान किया। दीवाने ने खानखानाँ की समस्त धन संपत्ति जब्त कर ली और उसके आदमियों को बहुत अपमानित किया। जब खान-खाँना को यह समाचार मिला, तब उसने अपने दीवान ख्वाजा मुजफ्फर-अली और दरवेश मुहम्मद उजबक को इसलिये दीवाने के पास भेजा कि वे जाकर उसे समझावें। दीवाने को तो कुत्ते ने काटा था। भला वह क्यों समझने लगा! किसी ने कहा है—"हे बुद्धिमानो, अलग हट जाओ; क्योंकि इस समय पागल मस्त हो रहा है।" उसने इन दोनों को भी विद्रोही ठहराया और कैद करके अकबर की सेवा में भेज दिया।

इस प्रकार की व्यवस्थाएँ करने में खानखानाँ का उद्देश्य यह था कि मेरी जो कुछ धन-संपत्ति है, वह मित्रों के पास रहे, जिसमें समय पड़ने पर मुझे मिल जाय। यदि मेरे पास रहेगी, तो ईश्वर जाने कैसा समय पड़ेगा। शत्रुओं और लुटेरों के हाथ तो न लगे। मेरे काम न आवे, तो मेरे मित्रों के ही काम आवे। उन्हीं मित्रों ने यह नौबत पहुँचाई थी। यह दुःख कुछ साधारण नहीं था। उसपर बाल-बच्चों का कैद होना और शत्रुओं के हाथ में जाना और भी अधिक दुःखदायक था। ये सब बातें देखकर वह बहुत ही चिंतित हुआ। लोगों की यह दशा थी कि वह किसी से परामर्श भी करना चाहता था, तो वहाँ से निराशा की धूल आँखों में पड़ती थी और ऐसी बातें सामने आती थीं, जिनका तुच्छ से तुच्छ अंश भी लिखा नहीं जा सकता। इसलिये वह

बहुत ही दुःख, चिंता लज्जा और क्रोध में भरा हुआ अठारे के घाट से सतलज उतरा और जालंधर आया।

दिल्ली में दरबार में कुछ लोगों की संमति हुई कि बादशाह स्वयं जायँ। कुछ लोगों ने कहा कि सेना भेजी जाय। अकबर ने कहा दोनों संमतियों को एकत्र करना चाहिए। आगे आगे सेना चले और पीछे पीछे हम चलें। शम्सुद्दीन मुहम्मदखाँ अतका भेरे से आ गए थे। इन्हें सेना सहित आगे भेजा। अतकाखाँ भी कोई युद्ध का अनुभवी सेनापति नहीं था। उसने साम्राज्य के कारबार देखे अवश्य थे, पर बरते नहीं थे। हाँ, इसमें संदेह नहीं कि वह सुशील, सहिष्णु और वयोवृद्ध था। दरबारवालों ने उसी को यथेष्ट समझा।

बैरमखाँ पहले यह समझता था कि अतका खाँ मेरा पुराना मित्र और साथी है। वह इस आग को बुझावेगा। पर उसे खानखानाँ का पद और मन्सब मिलता दिखलाई देता था, इसलिये वह भी आते ही बादशाह के तत्कालीन साथियों में मिल गया और बहुत प्रसन्नता से सेना लेकर चल पड़ा। माहम की बुद्धि का क्या कहना है! उसने अपना पक्ष साफ बचा लिया और अपने पुत्र को किसी बहाने दिल्ली में ही छोड़ दिया।

खानखानाँ जालंधर पर अधिकार कर ही रहा था कि इतने में खानआजम सतलज उतर आए और उन्होंने गनाचूर के मैदान में डेरे डाल दिए। खानखानाँ के लिये उस समय दो ही बातें थीं। या तो लड़ना और मरना और या शत्रुओं के हाथों कैद होना और मुश्कें बँधवाकर दरबार में खड़े होना। पर वह खान आजम को समझता ही क्या था! जालंधर छोड़कर उलट पड़ा।

अब सामना तो फिर होगा, पहले यह बतला देना आवश्यक है कि खानखानाँ ने अपने स्वामी पर तलवार खींची, बहुत बुरा किया। पर जरा छाती पर हाथ रखकर देखो। उस समय उसके निराश हृदय पर जो जो विचार और दुःख छाए हुए थे, उनपर ध्यान न देना भी

अन्याय है। इसमें संदेह नहीं कि बाबर और हुमायूँ के समय से लेकर आज तक उसने जो जो सेवाएँ की थीं, वे सब अवश्य उसकी आँखों के सामने होंगी। स्वामिनिष्ठा का पूरा निर्वाह, अवध के जंगलों में छिपना, गुजरात के जंगलों में मारे मारे फिरना, शेर शाह के दरबार में पकड़े जाना और उन विकट अवसरों की और और कठिनाइयाँ सब उसे स्मरण होंगी। ईरान की यात्रा, पग पग पर पड़नेवाली कठिनाइयाँ और वहाँ के शाह की दरबार-दारियाँ भी सब उसकी दृष्टि के सामने होंगी। उसे यह ध्यान आता होगा कि मैंने किस किस प्रकार जान पर खेलकर इन कठिन कार्यों को पूरा उतारा था। और सबसे बड़ी बात यह थी कि इस समय जो सेना सामने आई थी, उसमें अधिकांश वही बुड्ढे दिखाई देते थे, जो उन अवसरों पर उसका मुँह ताका करते थे और उसके हाथों को देखा करते थे; अथवा कल के वे लड़के थे, जिन्होंने एक बुढ़िया की बदौलत नवयुवक बादशाह को फुसला रखा था। ये सब बातें देखकर उसे यह ध्यान अवश्य हुआ होगा कि जो हो सो हो, पर इन दुष्टों और नीचों को, जिन्होंने अभी तक कुछ भी नहीं देखा है, एक बार तमाशा तो दिखला दो, जिसमें बादशाह भी एक बार जान ले कि ये लोग कितने पानी में हैं।

गनाचूर के पास दगदार [1] नामक परगने में, जो जालंधर के दक्षिण-पूर्व में था, दोनों पक्षों को एक दूसरे की छावनियों के धूएँ दिखाई देने लगे। वृद्ध सेनापति ने पर्वत और लक्खी जंगल को अपनी पीठ की ओर रखकर डेरे डाल दिए और सेना के दो भाग किए। वली बेग जुल्कद्र, शाहकुली महरम, हुसैनखाँ टुकरिया आदि

* ब्लोकमैन साहब लिखते हैं कि यह युद्ध कनौर फिलौर में, जो गनाचूर के दक्षिण-पश्चिम में था, हुआ था। फरिश्ता कहता है कि यह युद्ध माछीवाड़े में हुआ था। मैंने जो कुछ लिखा है, वह मुल्ला साहब के आधार पर लिखा है और यही ठीक जान पड़ता है। दक्षिण के फरिश्ते को पंजाब की क्या खबर!

को सेना देकर आगे बढ़ाया। दूसरे भाग के चारों परे बाँधकर आप बीच में हो गया। उसके साथी संख्या में थोड़े थे, परंतु स्वामिनिष्ठा और वीरता के आवेश ने मानों उनकी संख्यावाली कमी बहुत कुछ पूरी कर दी थी। हजारों वीरों ने उसकी गुणग्राहकता के कारण लाभ उठाया था। उन सब का मोल ये गिनती के आदमी थे जो साथ के नाम पर अपनी जान निछावर करने के लिये निकले थे। वे भली भाँति जानते थे कि यह बुड्ढा पूरा वीर है; और मर्द का साथ मर्द ही देता है। वे इसी क्रोध में आग हो रहे थे कि उनके मुकाबले में ऐसे लोग थे, जिन्हें केवल लालच ने मर्द बनाया था। जब तलवार चलाने का समय था, तो वे लोग कुछ भी न कर सके थे; पर अब जब मैदान साफ हो गया था, तब नवयुवक बादशाह को फुसलाकर चाहते थे कि वृद्ध और पुराने खानदानी सेवक के किए हुए परिश्रम नष्ट करें; और वह भी केवल एक बुढ़िया के भरोसे पर। यदि वह न हो, तो इतना भी नहीं। उधर बुड्ढे सैयद अर्थात् खान आजम ने भी अपनी सेनाओं को विभक्त करके पंक्तियाँ बाँधीं। कुरान सामने लाकर सब से शपथ और वचन लिया; उन्हें बादशाह की कृपाओं की आशा दिखाई। बस इतनी ही उस बेचारे की करामात थी।

जिस समय सामना हुआ, उस समय बैरमखाँ की सेना बहुत ही आवेशपूर्वक, परंतु साथ ही, निश्चिंतता और बेपरवाही के साथ आगे बढ़ी कि आओ, देखें तो सही कि तुम हो क्या चीज। जब वे समीप पहुँचे, तो उनकी हार्दिक एकता ने उन सब को उठाकर इस प्रकार बादशाही सेना पर दे मारा कि मानों बैरम के मांस का लोथड़ा था जो उछलकर शत्रुओं की तलवारों पर जा पड़ा। जो लोग मरने को थे, वे मर गए और बाकी बचे हुए लोग आपस में हँसते खेलते और शत्रुओं को रेलते ढकेलते आगे बढ़े।

हाय, उस समय इन लोगों के हृदय में यह आकांक्षा दबी हुई होगी कि इस समय नवयुवक बादशाह आवे और इन बातें बनानेवालों

की यह बिगड़ी हुई दशा देखे ! अस्तु; खान आज़म हटे, पर अपने साथियों समेत अलग होकर एक टीले की आड़ में धस गए।

पुराने विजयी सेनापति ने जब युद्धक्षेत्र का दृश्य अपने मनोनुकूल देखा, तब हँसकर अपनी सेना को संचालित किया। हाथियों को आगे बढ़ाया, जिनके बीच में विजय का चिह्न उसका "तख्तरवाँ" नामक हाथी था और जिसपर वह स्वयं बैठा हुआ था। यह सेना नदी की बाढ़ की भाँति अतकाखाँ पर चली। यहाँ तक तो समस्त इतिहास-लेखक बैरमखाँ के साथ हैं; पर आगे उनमें फूट पड़ती है। अकबर और जहाँगीर के शासनकाल के इतिहास-लेखकों में से कुछ तो मरदों की भाँति और कुछ आधे जनानों की भाँति कहते हैं कि अंत में बैरमखाँ पराजित हुआ। खाफीखाँ कहते हैं कि इन इतिहास-लेखकों ने पक्षपात के कारण वास्तविक बात को छिपा लिया नहीं तो वास्तव में अतकाखाँ पराजित हुआ था और बादशाही सेना तितर बितर हो गई थी। बादशाह स्वयं भी लोधियाने से आगे बढ़ चुका था। अब चाहे पराजय के कारण हो और चाहे इस कारण हो कि स्वयं बादशाह के सामने खड़े होकर लड़ना उसे मंजूर नहीं था, बैरमखाँ अपनी सेना को लेकर लक्खी जंगल की ओर पीछे हट गया।

मुनइमखाँ काबुल से बुलवाए हुए आए थे। लोधियाने की मंजिल पर पहुँचकर उन्होंने बादशाह को अभिवादन किया। कई सरदार उनके साथ थे। उनमें तरदीबेग का भानजा मुकीम बेग भी उपस्थित था। उसे भी नौकरी मिली। देखो, लोग कहाँ कहाँ से कैसे कैसे मसाले समेटकर लाते हैं ! मुल्ला साहब कहते हैं कि मुनइमखाँ को खानखानाँ की उपाधि और वकीलमुतलक का पद मिला। बहुत से अमीरों को उनकी योग्यता आदि के अनुसार मन्सब और पुरस्कार दिए गए। उसी पड़ाव में बंदी और घायल भी बादशाह की सेवा में उपस्थित किए गए जो इस युद्ध में पकड़े गए थे। प्रसिद्ध सरदारों

में वलीबेग जुल्कद्र था जो खानखानाँ का बहनोई और हुसैनकुलीखाँ का पिता था। यह गन्नों के खेत में घायल पड़ा हुआ पाया गया था। यह भी तुर्कमान था। इस्माईलकुलीखाँ भी था जो हुसैनकुलीखाँ का बड़ा भाई था। हुसैनखाँ टुकरिया की आँख पर घाव आया था। मानों उसकी वीरता-रूपी आकृति में इस घाव से आँख की सृष्टि या स्थापना हुई थी। वलीबेग बहुत अधिक घायल था, इसलिये वह कैदखाने में ही मर गया; मानों इस जीवन की कैद से छूट गया। उसका सिर काटकर इसलिये पूर्वी देशों में भेजा गया कि नगर नगर में घुमाया जाय।

प्रसिद्ध यह था कि वली जुल्कद्र बेग ही खानखानाँ को बहुत अधिक भड़काया करता है। पूर्वी प्रदेशों में खानजमाँ और बहादुरखाँ थे जो बैरमखानी जैलदार कहलाते थे। वलीबेग का सिर वहाँ भेजने से शत्रुओं का यही तात्पर्य रहा होगा कि देखो, तुम्हारे पक्षपातियों का यह हाल है। सिर ले जानेवाला चोबदार छोटे दरजे और छोटी जाति का आदमी था और उन शत्रुओं का आदमी था जो दरबार में विजयी हो चुके थे। ईश्वर जाने उसने क्या क्या कहा होगा और कैसा व्यवहार किया होगा। भला बहादुरखाँ को ये सब बातें कैसे सह्य हो सकती थीं! दुःख ने उसकी क्रोधाग्नि को और भी भड़का दिया और उसने उस चोबदार को मरवा डाला। उसकी यह धृष्टता उसके लिये बहुत बड़ी खराबी करती, पर उसके मुसाहबों और मित्रों ने उसे पागल बना दिया और कुछ दिनों तक एक मकान में बंद रखा। हकीम लोग उसकी चिकित्सा करते रहे। और फिर कोई झूठी बात तो उन्होंने भी प्रसिद्ध नहीं की। आखिर मित्रता के निर्वाह का भाव भी तो एक रोग ही है। दरबारवालों ने भी इस अवसर पर परदा रखना ही उचित समझा और वे लोग टाल गए; क्योंकि ये दोनों भाई युद्ध-क्षेत्र में मानों भीषण आग की भाँति थे। पर हाँ, कुछ वर्षों के उपरांत उन लोगों ने इनसे भी कसर निकाल ही ली।

खानखानाँ भी दरबार में पहुँचे। अकबर ने खिलअतें और पुरस्कार आदि देकर अमीरों का उत्साह बढ़ाया। लश्कर माछीवाड़े में छोड़ दिया और आप लाहौर पहुँचा; क्योंकि वहीं राजधानी थी। उसने सोचा था कि कहीं ऐसा न हो कि उपद्रव का अवसर ढूँढनेवाले लोग उठ खड़े हों। वहाँ पहुँचकर उसने छोटे और बड़े सभी प्रकार के लोगों को अपना प्रताप और वैभव दिखलाकर शांत और संतुष्ट किया और फिर लश्कर में आ पहुँचा। पहाड़ की तलेटी में ब्यास नदी के तट पर तलवाड़ा नामक एक स्थान था, जो उन दिनों बहुत दृढ़ था। राजा गणेश वहाँ राज्य करता था। खानखानाँ पीछे हटकर वहीं पहुँचा। राजा ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया और सब प्रकार सामग्री एकत्र कर देने का भार अपने ऊपर लिया। उसी के मैदान में युद्ध आरंभ हुआ। पुराना सेनापति उपाय और युक्ति लड़ाने में अपना समकक्ष नहीं रखता था। यदि वह चाहता तो यथेष्ट मैदान में सेनाएँ लगा देता। उसने पहाड़ को इसी लिये अपनी पीठ पर रखा था कि सामने बादशाह का नाम है। यदि पीछे हटना पड़े, तो फैलने के लिये बड़े बड़े ठिकाने थे। तात्पर्य यह कि युद्ध बराबर होता रहता था। उसकी सेना मोरचों से निकली थी और बादशाही सेना से बराबर लड़ती रहती थी। मुल्ला साहब कहते हैं कि एक अवसर पर लड़ाई हो रही थी। अकबर के लश्कर में सुलतान हुसेन जलायर नामक एक बहुत ही सुंदर, नवयुवक, सजीला और बहादुर अमीरजादा था। वह घायल होकर युद्ध-क्षेत्र में गिर पड़ा। बैरमखाँ के सैनिक उसका सिर काटकर बधाइयाँ देते हुए लाए और खानखानाँ के सामने रख दिया। खान-खानाँ को वह सिर देखकर बहुत अधिक दुःख हुआ। वह आँखों पर रूमाल रखकर रोने लगा और बोला कि इस जीवन पर सौ बार धिक्कार है। मेरे अभाग्य और दुर्दशा के कारण ऐसे ऐसे नवयुवक नष्ट होते हैं। यद्यपि पहाड़ के राजा और राणा बराबर चले आते थे, सेना और सब प्रकार की सामग्री से सहायता देते थे और भविष्य के लिये सब

प्रकार के वचन देते थे, पर उस नेकनीयत ने एक भी न सुनी। उसने परिणाम का विचार करके अपने परलोक का मार्ग साफ कर लिया। इसी समय जमालखाँ नामक अपने एक दास को अकबर की सेवा में भेजा और कहलाया कि यह सेवक सेवा में उपस्थित होना चाहता है। यदि श्रीमान् की आज्ञा हो तो उपस्थित हो। उधर से तुरंत मखदूम-उल्मुल्क मुल्ला अब्दुल्ला सुलतानपुरी अपने साथ कुछ सरदारों को लेकर चल पड़े। इनके आने का उद्देश्य यह था कि खानखानाँ को धैर्य दिलावें और अपने साथ ले आवें। अभी युद्ध हो ही रहा था। दोनों ओर से वकील लोग आया जाया करते थे। ईश्वर जाने किस बात पर झगड़ा और वाद-विवाद हो रहा था। मुनइम खाँ से न रहा गया। कुछ अमीरों और बादशाह के पार्श्ववर्तियों को साथ लेकर बेतहाशा खानखानाँ के पास चला गया। दोनों ही बहुत पुराने सरदार और बहुत पुराने योद्धा थे। बहुत पुराना साथ और बहुत पुरानी मित्रता थी। दोनों बहुत दिनों तक एक ही स्थान पर और सुख दुःख में साथ रहे थे। बहुत देर तक अपने दिल के दुःख कहते रहे। एक ने दूसरे की बात का समर्थन किया। मुनइमखाँ की बातों से खानखानाँ को विश्वास हो गया कि जो कुछ सँदेशे आए हैं, वे वास्तव में ठीक हैं। केवल बातें ही नहीं बनाई जा रही हैं। खानखानाँ चलने के लिये तैयार हुआ। जब वह खड़ा हुआ, तब बाबा जंबूर और शाहकुली उसका पल्ला पकड़कर रोने लगे। वे सोचते थे कि कहीं ऐसा न हो कि वहाँ इनके प्राण ले लिए जायँ या इनकी मर्यादा और प्रतिष्ठा के विरुद्ध कोई बात हो। मुनइमखाँ ने कहा कि यदि तुम लोगों को अधिक भय हो, तो हमें ओल में यहाँ रख लो। ये सब पुराने प्रेम की बातें थीं। उन लोगों से कहा कि तुम लोग अभी न चलो। इन्हें जाने दो। यदि वहाँ इनका आदर सत्कार हुआ, तो तुम लोग भी चले आना; नहीं तो मत आना। उन लोगों ने यह बात मान ली और वहीं रह गए। और साथियों ने भी रोका। पहाड़

के राजा और राणा मरने मारने का पक्का वचन देने को तैयार थे। वे भी पहुत कहते थे; सेना और सैनिक सामग्री की पूरी पूरी सहायता देने के लिये तैयार थे; पर वह नेकी का पुतला अपने उस शुभ विचार से न टला और सवार होकर चल पड़ा। उसके सामने जो सेना पहाड़ की तलेटी में पड़ी थी, उसमें हजारों प्रकार की हवाइयाँ उड़ रही थीं। कोई कहता था कि जो बादशाही अमीर यहाँ से गए हैं, उन्हें बैरम खाँ ने पकड़ रखा है। कोई कहता था बैरम खाँ कदापि न आवेगा। वह समय टाल रहा है और युद्ध की सामग्री एकत्र कर रहा है। पहाड़ के अनेक राजा उसकी सहायता के लिये आए हुए हैं। कोई कहता था कि पहाड़ के रास्ते अलीकुलीखाँ और शाह कुली महरम[1] आते हैं कोई कहता था कि संधि का जाल फैलाया है। रात को छापा मारेगा। तात्पर्य यह कि जितने मुँह थे, उतनी ही बातें हो रही थीं। इतने में खानखानाँ ने लश्कर में प्रवेश किया। सारी सेना मारे प्रसन्नता के चिल्ला उठी। नगाड़ों ने दूर दूर तक समाचार पहुँचाया। वहाँ से कई मील की दूरी पर पहाड़ के नीचे हाजीपुर में बादशाह के खेमे थे। बादशाह ने सुनते ही आज्ञा दी कि दरबार के समस्त अमीर खानखानाँ के स्वागत के लिये जायँ और पहले की भाँति आदर तथा प्रतिष्ठा से यहाँ ले आवें। प्रत्येक व्यक्ति जाता था, खानखानाँ को सलाम करता था और उसके पीछे हो लेता था। वह वीर-कुल-तिलक सेनापति, जिसकी सवारी का शोर, नगाड़ों की आवाज़ कोसों तक जाती थी, इस समय बिल्कुल चुपचाप था। मानों निस्तब्धता की मूर्त्ति बना हुआ था। घोड़ा तक न हिनहिनाता था। वह आगे आगे चुपचाप चला जाता था।

१ यह वही शाहकुली महरम थे जो युद्ध-क्षेत्र में से हेमूँ को हवाई हाथी समेत पकड़ लाए थे। खानखानाँ ने इन्हें बच्चों के समान पाला था। तुर्कों में "महरम" एक दरबारी पद है।

उसका गोरा गोरा चेहरा, उस सफेद दाढ़ी, ऐसा जान पड़ता था कि ज्योति का एक पुतला है जो घोड़े पर रखा हुआ है। उसकी आकृति से निराशा बरस रही थी और दृष्टि से जान पड़ता था कि वह मन ही मन अत्यंत लज्जित हो रहा है। बहुत बड़ी भीड़ चुपचाप पीछे चली आती थी। सन्नाटे का समाँ बँधा था। जब उसे बादशाह के खेमे का कलश दिखाई दिया, तब वह घोड़े पर से उतर पड़ा। तुर्क लोग अपराधी को जिस रूप में बादशाह की सेवा में लाते हैं, वही रूप बना लिया। उसने स्वयं कमर से तलवार खोलकर गले में डाली, पटके से अपने हाथ बाँधे, सिर से पगड़ी उतारकर गले में लपेटी और आगे बढ़ा। जब वह खेमे के पास पहुँचा, तब समाचार सुनकर अकबर उठ खड़ा हुआ और फर्श के किनारे तक आया। खान-खानाँ ने दौड़कर पैरों पर सिर रख दिया और ढाढ़ें मार मारकर रोने लगा। बादशाह भी उसकी गोद में खेलकर पला था। उसकी आँखों से भी आँसू निकल पड़े। उठाकर गले से लगाया और उसके पुराने स्थान पर, अर्थात् अपनी दाहिनी ओर ठीक बगल में बैठाया। अपने हाथ से उसके हाथ खोले और उसके सिर पर पगड़ी रखी। खानखानाँ ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा यही थी कि श्रीमान् की सेवा में ही प्राण निछावर कर दूँ और तलवारबंद भाई अपने प्राण मेरी रत्थी का साथ दें। पर दुःख है कि मेरे समस्त जीवन का घोर परिश्रम और वे सेवाएँ, जिनमें मैंने अपनी जान तक निछावर कर दी थी, मिट्टी में मिल गईं, और न जाने अभी मेरे भाग्य में और क्या क्या लिखा है! यही शुक्र है कि अंतिम समय में श्रीमान् के चरणों के दर्शन मिल गए। यह सुनकर शत्रुओं के पत्थर के हृदय भी पानी हो गए। बहुत देर तक सारा दरबार चित्र-लिखित की भाँति चुपचाप था। कोई दम न मार सकता था।

थोड़ी देर के बाद अकबर ने कहा—खान बाबा, अब तीन बातें हैं। इनमें से जो तुम्हें स्वीकृत हो, वह कह दो। यदि तुम्हारी इच्छा

शासन करने की हो, तो चँदेरी और कालपी के प्रांत ले लो। वहाँ चले जाओ और बादशाही करो। यदि मुसाहबत करने की इच्छा हो, तो मेरे पास रहो। पहले जो तुम्हारी प्रतिष्ठा और मर्यादा थी, उसमें कोई अंतर न आने पावेगा। और यदि तुम्हारा हज करने का विचार हो, तो अभी ईश्वर का नाम लेकर चल पड़ो। यात्रा के लिये तुम जैसी और जितनी सामग्री चाहोगे, वह सब तुरंत एकत्र हो जायगी। चँदेरी तुम्हारी हो चुकी। तुम जहाँ कहोगे, वहाँ तुम्हारे गुमाश्ते उसका राजस्व पहुँचा दिया करेंगे। खानखानाँ ने निवेदन किया कि मेरी पुरानी निष्ठा और विचारों में किसी प्रकार का अंतर या दोष नहीं आया है। यह सारा बखेड़ा केवल इसलिये था कि एक बार श्रीमान् की सेवा में पहुँच-कर दुःख और व्यथा की जड़ आप धोऊँ। धन्यवाद है उस ईश्वर का कि आज मेरी वह हार्दिक आकांक्षा पूरी हो गई। अब अंतिम अवस्था है। कोई लालसा नहीं बची है। यदि कोई कामना है तो केवल यही कि ईश्वर के घर (मक्के) में जा पड़ूँ और वहीं श्रीमान् की आयु तथा वैभव की वृद्धि के लिये प्रार्थना किया करूँ। यह जो घटना हो गई, इसमें मेरा उद्देश्य केवल यही था कि उपद्रव खड़ा करने वालों ने ऊपर ही ऊपर मुझे विद्रोही बना दिया था। मैंने सोचा कि मैं स्वयं ही श्रीमान् की सेवा में उपस्थित होकर यह संदेह दूर कर दूँ। अंत में हज की बात निश्चित हो गई। अकबर ने विशिष्ट खिलअत और खास अपने घोड़े में से एक घोड़ा प्रदान किया। मुनइमखाँ उसे दरबार से अपने खेमे में ले गया। वहाँ पहुँचकर खेमे, डेरे, सामान और खजाने से लेकर बावर्चीखाने तक जो कुछ उसके पास था, वह सब खानखानाँ के सुपुर्द करके आप बाहर निकल आया। बादशाह ने पाँच हजार रुपए नगद और बहुत सा सामान दिया। माहम और उसके संबंधियों के अतिरिक्त और कोई ऐसा न था जिसके हृदय में खानखानाँ के प्रति प्रेम न हो। सब लोगों ने अपने अपने पद और योग्यता के अनुसार धन और अनेक प्रकार के पदार्थ एकत्र किए जो खानखानाँ को हज जाते समय भेंट किए गए।

तुर्कों में हज के यात्रियों को इसी प्रकार की भेंट देने की प्रथा है और इसे "चंदोग" कहते हैं। खानखानाँ नागौर के मार्ग से होकर गुजरात के लिये चल पड़ा। बादशाह ने हाजी मुहम्मदखाँ सीस्तानी को, जो तीन-हजारी अमीर, खानखानाँ का मुसाहब और पुराना साथी था, सेना देकर मार्ग में रक्षा करने के लिये साथ कर दिया।

मार्ग में एक दिन सब लोग किसी वन में से होकर जा रहे थे। खानखानाँ की पगड़ी का किनारा किसी वृक्ष की टहनी में इस प्रकार उलझा कि पगड़ी गिर पड़ी। लोग इसे बुरा शकुन समझते हैं। खानखानाँ की आकृति से भी कुछ दुःख प्रकट हुआ। हाजी मुहम्मदखाँ सीस्तानी ने ख्वाजा हाफ़िज़ का यह शेर पढ़ा—

[1] در بیاباں چوں بشوق کعبه خواهی زد قدم +
سرزنش ها گر کند خار مغیلاں غم مخور +

यह शेर सुनकर खानखानाँ का वह दुःख जाता रहा और वह प्रसन्न हो गया। आगे चलकर वह पाटन नामक स्थान में पहुँचा। वहीं से गुजरात की सीमा का आरंभ होता है। प्राचीन काल में इसे नहरवाला कहते थे। वहाँ के हाकिम मूसाखाँ फौलादी तथा हाजीखाँ अलवरी ने उसके साथ बहुत ही प्रतिष्ठापूर्ण व्यवहार किया और धूमधाम से दावतें कीं। इस यात्रा में कुछ काम तो था ही नहीं। काम करने की अवस्था तो समाप्त ही हो चुकी थी। इसलिये वह जहाँ जाता था, वहाँ नदियों, उपवनों और इमारतों आदि की सैर करके अपना मन बहलाया करता था।

सलीम शाह के महलों में एक काश्मीरिन स्त्री थी। उसके गर्भ से सलीम शाह को एक कन्या उत्पन्न हुई थी। वह खानखानाँ के लश्कर के साथ हज के लिये चली थी। वह खानखानाँ के पुत्र मिरज़ा अब्दुल-

१ जब तू काबे जाने की प्रबल कामना से जंगल में चलने लगे, उस समय यदि जंगल के काँटे तेरे साथ कोई दुष्टता या उपद्रव करें तो तू दुःखी मत हो।

रहीम को बहुत चाहती थी और वह लड़का भी उससे बहुत हिला हुआ था। खानखानाँ चाहता था कि मेरे पुत्र अब्दुलरहीम का विवाह इसकी कन्या से हो जाय। अफगान लोग इस बात से बहुत अधिक अप्रसन्न थे। (देखो खाफीखाँ और मआसिरउलउमरा) एक दिन संध्या के समय खानखानाँ सहस्र लिंग[1] के तालाब में नाव पर बैठा हुआ हवा खाता फिरता था। सूर्यास्त के समय नाव पर से नमाज पढ़ने के लिये उतरा। मुबारकखाँ लोहानी नामक एक अफगान तीस चालीस अफगानों को साथ लेकर सामने आया। उसने प्रकट यह किया कि हम भेंट करने के लिये आए हैं। बैरमखाँ ने सद्व्यवहार और प्रेम के विचार से अपने पास बुला लिया। उस दुष्ट ने मिलने के बहाने पास आकर पीठ पर ऐसा खंजर मारा जो पार होकर छाती में आ निकला। एक और दुष्ट ने सिर पर तलवार मारी जिससे खानखाना का वहीं प्राणांत हो गया। उस समय उसके मुँह से "अल्लाह अकबर" निकला था। तात्पर्य यह कि वह जिस प्रकार शहीद होने के लिये ईश्वर से प्रार्थना किया करता था, प्रभात की ईश्वर-प्रार्थना में वह जो कुछ माँगा करता था और ईश्वर तक पहुँचे हुए लोगों से जो कुछ माँगता था, ईश्वर ने वही उसे प्राप्त करा दिया। लोगों ने उससे पूछा कि क्या कारण था जो तूने यह अनर्थ किया? उसने उत्तर दिया कि माछीवाड़े के युद्ध में हमारा पिता मारा गया था। हमने उसी का बदला लिया।

नौकर चाकर यह दशा देखकर तितर बितर हो गए। कहाँ तो उसका वह वैभव और वह प्रताप, और कहाँ यह दशा कि लाश से

१ यह वहाँ का सैर करने का एक प्रसिद्ध स्थान था। इस तालाब के चारों ओर शिव के एक हजार मंदिर थे। संध्या के समय जब इन मंदिरों के गुंबदों पर धूप पड़ती थी, तो जल में पड़नेवाली उनकी छाया और किनारों पर की हरियाली की विलक्षण बहार होती थी। और रात के समय जब इनके दीपक जलते थे, तब उनके प्रकाश से सारा तालाब जगमगा उठता था।

लहू बह रहा है और कोई ऐसा नहीं है जो आकर खबर भी ले! उस बेचारे के कपड़े तक उतार लिए गए। ईश्वर की कृपा हो हवा पर जिसने धूल की चादर ओढ़ाकर परदा किया। अंत में वहीं के फ़कीरों आदि ने शेख हसामउद्दीन के मकबरे में, जो बड़े और प्रसिद्ध शेखों में थे, लाश गाड़ दी। मआसिर में लिखा है कि लाश दिल्ली में लाकर गाड़ी गई। हुसैनकुलीखाँ खाँजहाँ ने सन् ९८५ हि० में मशहद पहुँचाई थी। उसके साथ के लावारिस काफ़िले पर जो विपत्ति आई, उसका वर्णन अब्दुलरहीम खानखानाँ के हाल में पढ़ो।

ईश्वर की महिमा देखो, जिन जिन लोगों ने खानखानाँ की बुराई में ही अपनी भलाई समझी थी, वे सब एक बरस के आगे पीछे इस संसार से चले गए और बहुत ही विफल-मनोरथ तथा बदनाम होकर गए। सब से पहले मीर शम्सुद्दीन मुहम्मद खाँ अतका, और घंटा भर न बीता था कि अहमद खाँ, चालीस दिन न हुए थे कि माहम, और दूसरे ही बरस पीर मुहम्मद खाँ इस संसार से चल बसे!

इन सब झगड़ों और खराबियों का कारण चाहे तो यह कहो कि बैरमखाँ की उद्दंडता और मनमानी काररवाई थी, और चाहे यह कहो कि उसके बड़े बड़े अधिकार और कड़ी कड़ी आज्ञाएँ अमीरों को सह्य न होतीं थीं; अथवा यह समझो कि अकबर की तबीयत में स्वतंत्रता का भाव आ गया था। इन सब बातों में से चाहे कोई बात हो और चाहे सभी बातें हों, पर सच पूछो तो सब को बहकानेवाली वही मरदानी स्त्री थी, जो चालाकी और मरदानगी में मरदों की भी गुरु थी। हमारा तात्पर्य माहम अतका से है। वह और उसका पुत्र दोनों यह चाहते थे कि हम सारे दरबार को निगल जायँ। खानखानाँ पर जो यह चढ़ाई हुई थी और इसमें जो विजय प्राप्त हुई थी, वह मीर शम्सुद्दीन मुहम्मदखाँ अतका के नाम पर लिखी गई थी। इस झगड़े का अंत हो जाने पर जब उन्होंने देखा कि हमारा सारा परिश्रम नष्ट हो गया और माहमवाले सारे साम्राज्य के

खासी बन गए, तब उसने अकबर के नाम एक निवेदनपत्र लिखा। यद्यपि उसने अपनी सज्जनता और सुशीलता के कारण उसका प्रत्येक शब्द बहुत ही बचाकर लिखा है, पर फिर भी ऐसा जान पड़ता है कि उसकी कलम से शिकायत और पछतावा आपसे आप निकल रहा है। यह प्रार्थनापत्र अकबरनामे में दिया हुआ है। मैंने उसका अनुवाद उनके हाल में लिखा है। उससे इस झगड़े की बहुत सी भीतरी बातें और माहम की शत्रुता तथा द्वेष प्रकट होता है।

खानखानाँ अपने धार्मिक विश्वास का बहुत पक्का था। वह धार्मिक महापुरुषों के वचनों पर बहुत विश्वास रखता था। धार्मिक चर्चा उसे बहुत प्रिय थी। वह स्वयं धर्म का अच्छा जानकार था और धार्मिक दृष्टि से सदा सतर्क रहता था। उसने अपने पतन से कुछ ही पहले मशहद में चढ़ाने के लिये एक झंडा और जड़ाऊ परचम तैयार कराया था जिसमें एक करोड़ रुपए लागत आई थी। यह झंडा भी जब्त हो गया था और अकबर के शुभचिंतकों ने उसे राजकोष में रखवा दिया था।

नए और पुराने सभी इतिहास-लेखक बैरमखाँ के संबंध में प्रशंसा के सिवा और कुछ भी नहीं लिखते। जो मुल्ला फाजिल बदाऊनी भली बुरी कहने में किसी से नहीं चूकते, वे भी जहाँ खानखानाँ का उल्लेख करते हैं, बहुत ही अच्छी तरह और प्रसन्नता से करते हैं। फिर भी खाली तो छोड़ना नहीं चाहिए था, इसलिये जिस वर्ष में उसका अंतिम उल्लेख करते हैं, उसमें कहते हैं कि इस वर्ष खानाखानाँ ने कंधारवाले हाशिमी की एक गजल उड़ाकर अपने नाम से प्रसिद्ध की और हाशिमी को पुरस्कार स्वरूप नगद साठ हजार रुपए देकर पूछा कि अब तो तुम्हारी कामना पूरी हुई? उसने कहा कि पूरी तो तब हो, जब यह पूरी हो। [अर्थात् कामना पूरी हो, जब लाख रुपए की रकम पूरी हो। खानाखानाँ को यह दिल्लगी बहुत पसंद आई। उसने चालीस हजार रुपए देकर लाख रुपए पूरे कर दिए। उस गज़ल में प्रेमी के

के पागल होकर जंगलों और पहाड़ों में घूमने तथा अनेक प्रकार की की विपत्तियाँ और दुर्दशाएँ भोगने का उल्लेख था। ईश्वर जाने वह ग़जल किस घड़ी बनी थी कि थोड़े ही दिनों में उसकी सब बातें खानाखानाँ पर बीत गईं !

देखो, मुल्ला साहब ने तो अपनी ओर से परिहास किया था, पर उसमें भी खानाखानाँ की उदारता की एक बात निकल आई।

सलीम शाह के समय का रामदास नामक एक गवैया था जो लखनऊ का रहनेवाला था। वह गान-विद्या का ऐसा पंडित था कि दूसरा तानसेन कहलाता था। उसने खानखानाँ के दरबार में आकर गाना सुनाया। यद्यपि उस समय खजाने में कुछ भी नहीं था, तो भी उसे लाख रुपए दिए। उसका गाना खानखानाँ को बहुत पसंद था और वह उसे हर दम अपने साथ रखता था। जब वह गाता था, तब खानखानाँ की आँखों में आँसू भर आते थे। एक जलसे में नगद और सामान जो कुछ पास था, सब उसे दे दिया और आप अलग उठ गया।

अफगान अमीरों में से भज्जारखाँ नामक एक सरदार बचा हुआ था। उसकी सवारी के साथ अलम, तोग और नक्कारा चलता था। (मुल्ला साहब क्या मजे से लिखते हैं) अंतिम अवस्था में सिपाहीगिरी छोड़कर थोड़ी सी आय पर बैठकर अपना निर्वाह करता था; क्योंकि ईश्वरोपासना के प्रसाद से उसने संतोष रूपी संपत्ति प्राप्त की थी। उसने खानखानाँ की प्रशंसा में एक कविता पढ़कर सुनाई थी। खानखानाँ ने उसे एक लाख रुपए देकर समस्त सरहिंद प्रांत का अमीर बना दिया।

तीस हजार कुलीन सैनिक और वीर खानखानाँ के दस्तरख्वान पर भोजन करते थे। पचीस सुयोग्य और बुद्धिमान् अमीर उसकी सेवा में नौकर थे जो पंज-हजारी मंसब तक पहुँचे थे और जिन्हें झंडा और नक्कारा मिला था।

खानखानाँ जब युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिये हथियार सजने लगता था, तब पगड़ी का सिरा हाथ में उठाकर कहता था—"हे ईश्वर, या तो इस युद्ध में विजय प्राप्त हो और या मैं शहीद हो जाऊँ।" उसका नियम था कि बुधवार को शहीद होने की नियत से हजामत बनवाता और स्नान करता था (दे० मआसिर उल् उमरा)।

खानखानाँ के प्रताप का सूर्य ठीक शीर्षबिंदु पर था। दरबार लगा हुआ था। एक सीधे सादे सैयद किसी बात पर बहुत प्रसन्न हुए और खड़े होकर कहने लगे कि नवाब साहब के शहीद होने के लिये सब लोग फ़ातिहा[1] पढ़ें और ईश्वर से प्रार्थना करें। दरबार के सभी लोग सैयद साहब का मुँह देखने लगे। खानखानाँ ने मुस्कराकर कहा—"जनाब सैयद साहब! आप इतना घबराकर मेरे लिये संवेदना न करें। मैं शहीद होना तो अवश्य चाहता हूँ, पर इतनी जल्दी नहीं।"

एक बार दरबार खास में रात के समय बैरमखाँ से हुमायूँ बादशाह कुछ बातें कह रहे थे। रात अधिक हो गई थी। नींद के मारे बैरमखाँ की आँखें बंद हो रही थीं। बादशाह की भी दृष्टि पड़ गई। उन्होंने कहा—"बैरम, मैं तो तुमसे बातें कर रहा हूँ और तुम सो रहे हो।" बैरम ने कहा—"क़ुरबान जाऊँ, बड़ों के मुँह से मैंने सुना है कि तीन स्थानों पर तीन चीजों की रक्षा करनी चाहिए, बादशाहों की सेवा में आँखों की रक्षा करनी चाहिए, फकीरों की सेवा में दिल की रक्षा करनी चाहिए और विद्वानों के सामने जबान की रक्षा करनी चाहिए। श्रीमान् में ये तीनों ही बातें एकत्र हैं; इसलिये मैं सोच कर रहा हूँ कि किन किन बातों की रक्षा करूँ।" इस उत्तर से बादशाह बहुत प्रसन्न हुए थे। (दे० मआसिर उल् उमरा)

खानखानाँ का सारा हाल पढ़कर सब लोग साफ कह देंगे कि यह

[1] फातिहा वास्तव में मृतक के उद्देश से उसकी आत्मा को शांति दिलाने के लिये पढ़ा जाता है।

शीया संप्रदाय का होगा। परंतु इस कहने से क्या लाभ! हमें चाहिए कि हम उसकी चाल ढाल देखें और उसी के अनुसार आप भी इस संसार में जीवन-यात्रा का निर्वाह करना सीखें। इस परम उदार और साहसी मनुष्य ने अपने मित्रों और शत्रुओं के समूह में कैसी मिलनसारी और धार्मिक सहनशीलता से निर्वाह किया होगा। साम्राज्य के सभी कारबार उसके हाथ में थे। शीया और सुन्नी दोनों संप्रदाय के हजारों लाखों आदमियों की आशाएँ और आवश्यकताएँ उसके हाथों पूरी होती थीं। वह दोनों संप्रदायों को अपने दोनों हाथों पर इस प्रकार बराबर लिए गया कि उसके इतिहास-लेखक उसका शीया होना तक प्रमाणित न कर सके।

सभी विवरणों और इतिहासों में लिखा है कि खानखानाँ कविता खूब समझता था और आप भी अच्छी कविता करता था। मआसिर उल् उमरा में लिखा है कि उसने अच्छे अच्छे उस्तादों के शेरों में ऐसे सुधार किए, जिन्हें भाषा के अच्छे अच्छे जानकारों ने माना। उसने इन सब का एक संग्रह भी तैयार किया था। फारसी और तुर्की जबान में अच्छे अच्छे दीवान लिखे थे। अकबर के समय में मुल्ला साहब ने लिखा है कि आजकल इसके दीवान लोगों की जबानों और हाथों पर हैं। दुःख है कि आज खानखानाँ की एक भी पूरी गजल नहीं मिलती। हाँ, इतिहासों और विवरणों में कुछ फुटकर कविताएँ अवश्य पाई जाती हैं।

अमीर उल् उमरा खानजमाँ अलीकुलीखाँ शैबानी

अलीकुलीखाँ और उसके भाई बहादुर खाँ ने सीस्तान की मिट्टी से उठकर रुस्तम का नाम फिर से जीवित कर दिया था। मुल्ला साहब ठीक कहते हैं कि जिस वीरता से और जिस प्रकार बे-कलेजे उन्होंने

तलवारें चलाईं, उसका वर्णन करते हुए कलम की छाती फटी जाती है। ये वीर-कुल-तिलक सेनापति अकबर के साम्राज्य में बड़े बड़े काम कर दिखाते और ईश्वर जाने राज्य का विस्तार कहाँ से कहाँ पहुँचा देते; पर ईर्ष्या करनेवालों की दुष्टता और शत्रुता इन लोगों के उन परिश्रमों और उद्योगों को न देख सकी, जो इन्होंने जान पर खेलकर किए थे। पर फिर भी इस विषय में मैं इन्हें निर्दोष नहीं कह सकता। ये लोग दरबार में सब को जानते थे और सब कुछ जानते थे। विशेषतः बैरमखाँ के कार्य और अंत में उनका पतन देखकर इन्हें उचित था कि सचेत हो जाते और सोच सोचकर पैर रखते। पर दुःख है कि ये लोग फिर भी न समझे। अपनी जिन कारगुजारियों के कारण ये लोग वीरता के दरबार में रुस्तम और अस्फंदयार के बराबर जगह पाते, वह सब इन लोगों ने अपने नाश में खर्च कर दी; यहाँ तक कि अंत में नमकहरामी का कलंक लेकर गए।

इनका पिता हैदर सुलतान जाति का उजबक था और शैबानीखाँ[1] के वंश में था। उसने अस्फहान की एक स्त्री[2] से विवाह किया था। ईरान के शाह तहमास्प ने हुमायूँ के साथ जो सेना भेजी थी, उसमें बहुत से विश्वसनीय सरदार थे। उन्हीं में हैदर सुलतान और उसके दोनों पुत्र भी थे। कंधार के आक्रमणों में पिता और दोनों पुत्र वीरोचित साहस दिखलाया करते थे। जब ईरान की सेना चली गई, तब

१ यह वही शैबानीखाँ था जिसने बाबर को फरगाना देश से निकाला था, बल्कि तुर्किस्तान से तैमूर का नाम मिटा दिया था।

२ यह फरिश्ता आदि का कथन है; पर कुछ इतिहास-लेखक कहते हैं कि जाम नामक स्थान में कजलबाश और उजबक जाति में घोर युद्ध हुआ था। उसमें हैदर सुलतान कजलबाशों की सहायता से सफल हुआ था और वह उन्हीं में रहने लगा था। उसी समय उसने एक अस्फहानी स्त्री से विवाह किया था।

हैदर सुलतान हुमायूँ के साथ रह गया और उसने ऐसी विशिष्टता प्राप्त की कि ईरानी सेनापति चलते समय उसी के द्वारा दरबार में उपस्थित होकर बिदा हुआ था और अपराधियों के अपराध उसी के कहने से क्षमा किए गए थे।

इसकी सेवाओं ने हुमायूँ के मन में ऐसा घर कर लिया था कि यद्यपि उस समय उसके पास कंधार के अतिरिक्त और कुछ भी न था, तथापि शाल का इलाका उसे जागीर में दे दिया था। बादशाह अभी इसी ओर था कि सेना में मरी फैली और उसमें हैदर सुलतान की मृत्यु हो गई। थोड़े दिनों बाद हुमायूँ ने युद्ध के विचार से काबुल की ओर प्रस्थान किया। जब नगर आध कोस रह गया, तब वह ठहर गया। अमीरों को उपयुक्त स्थानों पर नियुक्त कर दिया और सेना की व्यवस्था की। दोनों भाइयों को खिलअतें देकर सोग से निकाला और बहुत सांत्वना दी। अलीकुलीखाँ उस समय बकावल बेगी (भोजन कराने का दारोगा) था। जिस समय कामरान तलीकान के किले में बैठकर हुमायूँ से लड़ रहा था और नित्य युद्ध हुआ करते थे, उस समय ये दोनों भाई बहुत ही वीरता और आवेशपूर्वक साथ में सेनाएँ लिए हुए चारों ओर तलवारें मारते फिरते थे। इसी युद्ध में अलीकुलीखाँ ने अपने यौवन रूपी परिधान को घावों के रंग से रँगा था। जब हुमायूँ ने भारत पर आक्रमण किया, तब भी ये दोनों भाई दोधारी तलवार की भाँति युद्ध-क्षेत्र में चलते थे और शत्रुओं को काटते थे।

हुमायूँ ने लाहौर में आकर साँस लिया। यद्यपि पेशावर से लाहौर तक एक भी युद्ध में अफगान नहीं लड़े थे, तथापि उनके अनेक सरदार स्थान स्थान पर बहुत से सैनिकों को लिए हुए देख रहे थे कि क्या होता है। इतने में समाचार मिला कि एक सरदार दीपालपुर में सेना एकत्र कर रहा है। बादशाह ने कुछ अमीरों को सैनिक तथा सामग्री देकर उस ओर भेजा और शाह अब्बुलमुआली को उनका सेनापति बनाया। वहाँ युद्ध हुआ और अफगानों ने युद्ध-क्षेत्र में असीम साहस

दिखलाया। शाह अब्बुलमुआली तो केवल सौंदर्य-साम्राज्य के सेनापति थे। पर युद्ध-क्षेत्र में तिरछी निगाहों की तलवारें और नखरों के खंजर नहीं चलते। युद्ध-क्षेत्र में सेना को लड़ाना और आप तलवार का जौहर दिखलाना कुछ और ही बात है। जब घमासान युद्ध होने लगा, तब एक स्थान पर अफगानों ने शाह को घेर लिया। उस अवसर पर अली-कुली अपने साथियों के साथ दहाड़ता और ललकारता हुआ आ पहुँचा और वह हाथ मारे कि मैदान मार लिया। बल्कि प्रसिद्धि रूपी पताका यहीं से उसके हाथ आई थी।

सतलज-पारवाली लड़ाई में जब खानखानाँ की सेना ने विजय प्राप्त की थी, तब ये भी अपनी सेना लिए छाया की भाँति पीछे पीछे पहुँचे थे।

बादशाही लश्कर में एक आवारा, अप्रसिद्ध और बिलकुल व्यर्थ सा सैनिक था, जिसका नाम क़ंबर था। वह अपने सीधे सादे स्वभाव के कारण क़ंबर दीवाना (पागल) के नाम से प्रसिद्ध था। पर वह खाने खिलानेवाला आदमी था, इसलिये वह जहाँ खड़ा होता था, वहीं कुछ लोग उसके साथ हो जाते थे। जब हुमायूँ ने सरहिंद पर विजय प्राप्त की, तब वह लश्कर से अलग होकर लूटता मारता चला गया। वह गावों और छोटी मोटी बस्तियों पर गिरता था और जो कुछ पाता था, वह लूट लेता था और अपने साथियों में बाँट देता था। इसलिये और भी बहुत से लोग उसके साथ हो जाते थे। यद्यपि कहने के लिये कंबर दीवाना या पागल था, तथापि अपने काम का वह होशियार ही था। हाथी, घोड़े आदि जो थोड़े बहुत मूल्य-वान् पदार्थ हाथ आ जाते थे, वे सब निवेदनपत्र के साथ बादशाह की सेवा में पहुँचाता जाता था। यहाँ तक कि वह बढ़ता बढ़ता संभल में जा पहुँचा। एक प्रसिद्ध अफगान वीर सरदार वहाँ का हाकिम था। उसने कंबर का सामना किया। भाग्य की बात है कि यथेष्ट सामग्री और सैनिकों के होते हुए भी वह अफगान खाली हाथ हो गया।

कंवर की वहाँ भी जीत हो गई।

अब कंवर के हाथ अमीरोंवाला वैभव आ लगा और उसके मस्तिष्क में बादशाही की बातें समाने लगी। वह समझने लगा कि मैं एक राज्य का स्वामी और मुकुटधारी हो गया। वह दीवाना बहुत मजे की बातें किया करता था। उसके दस्तरख्वान पर बहुत से लोग भोजन करते थे। वह अच्छे अच्छे भोजन पकवाता था। सब को बैठा लेता था और कहता था—"खूब बढ़िया बढ़िया माल खाओ। यह सब माल ईश्वर का है और जान भी ईश्वर की ही है। कंवर दीवाना तो उस ईश्वर की ओर से भोजन की व्यवस्था करनेवाला है। हाँ, खाओ, खूब खाओ, !" उसका हृदय उसके दस्तरख्वान से भी अधिक विस्तृत था। उसकी इस उदारता ने यहाँ तक जोर मारा कि कई बार घर का घर लुटा दिया। स्वयं बाहर निकल खड़ा होता और कहता—"यह सब धन ईश्वर का है! ईश्वर के दासो, आओ, सब माल उठा ले जाओ। कुछ भी मत छोड़ो!" मानव स्वभाव का यह भी एक नियम है कि जब मनुष्य उन्नति के समय ऊँचा होता है तब उसके विचार उससे भी और ऊँचे हो जाते हैं।

अब वह सारे अदब-कायदे भी भूल गया और यदि सच पूछो तो उसने अदब-कायदे याद ही कब किए थे जो भूल जाता। वह एक उजड्ड सिपाही बल्कि जंगली पशु था। जो लोग उसके साथ रहकर बड़ी बड़ी कारगुजारियाँ करते थे, उन्हें अब वह आप ही बादशाही उपाधियाँ देने लगा। आप ही लोगों को झंडे और नक्कारे प्रदान करने लगा। इन भोली भाली बातों के सिवा यह बात भी अवश्य थी कि वह कभी कभी प्रजा पर विलक्षण अत्याचार कर बैठता था। जब आदमी का सितारा बहुत चमकता है, तब उसपर लोगों की दृष्टि भी बहुत पड़ने लगती है। लोगों ने बादशाह की सेवा में एक एक बात चुन चुन कर पहुँचाई। बादशाह ने अलीकुलीखाँ को खानखानाँ की उपाधि देकर भेजा और कहा कि कंवर से संभल ले ली; बदाऊँ

उसके पास रहने दिया जाय। कंवर को भी समाचार मिला। साथ ही अलीकुलीखाँ का दूत पहुँचा कि बादशाह का आज्ञापत्र आया है। चलकर उसकी आज्ञा का पालन कर। वह ऐसी बातों पर कब ध्यान देता था। अशिक्षित सैनिक था। संभल को संभर कहता था। दरबार में बैठ कर कहा करता था-"संभर और कंवर! संभर और अलीकुलीखाँ कैसा? यह तो वही कहावत है कि गाँव किसी का और पेड़ किसी के। अलीकुलीखाँ का इससे क्या संबंध है? देश मैंने जीता कि तूने?" अलीकुलीखाँ ने बदाऊँ के पास पहुँचकर डेरा डाला और उसे बुला भेजा। भला वह वहाँ क्यों जाने लगा था। था— "तू मेरे पास क्यों नहीं आता? यदि तू बादशाह का सेवक है, तो मैं भी उन्हीं का दास हूँ। मेरा तो बादशाह के साथ तेरी अपेक्षा और भी अधिक संबंध है। अपने सिर की ओर उँगली उठाकर कहता था कि यह सिर राजमुकुट समेत उत्पन्न हुआ है। खान ने उसे समझाने के लिये अपने कुछ विश्वास-भाजन दूत भेजे। कंवर ने उन्हें कैद कर लिया। भला खानजमाँ उस पागल को क्या समझता था! उसने आगे बढ़कर नगर पर घेरा डाल दिया। कंवर ने उन दिनों यह काम बुरा किया कि वह प्रजा को अधिक दुःखी करने लगा था। किसी का माल और किसी की स्त्री ले लेता था। इसी कारण उसे लोगों पर विश्वास न था और रात के समय वह आप मोरचे मोरचे पर घूम घूमकर सारी व्यवस्था करता था।

इतना पागल होने पर भी कंवर ऐसा सयाना था कि एक बार आधी रात के समय घूमता फिरता एक बनिए के घर में जा पहुँचा। वहाँ उसने झुककर जमीन से कान लगाए। दो चार कदम आगे पीछे हट बढ़कर फिर देखा। फिर पहली जगह आकर बेलदारों को पुकारा और कहा कि यहीं आहट मालूम होती है; खोदो! देखा तो वहीं उस सुरंग का सिरा निकला, जो अलीकुलीखाँ बाहर से लगा रहा था। वह किला ईश्वर जाने कब का बना हुआ था। यह भी पता चला कि बाहर-

वालों ने जिस ओर से सुरंग लगाई थी, उसे छोड़कर और सब ओर प्राकार में नीचे साल के शहतीर और लोहे के छड़ लगे हुए थे। बनानेवालों ने उसकी नींव भी पानी तक पहुँचा दी थी। खानजमाँ को भी किसी युक्ति से इस बात का पता लग गया था। वही एक स्थान ऐसा था जहाँ से सुरंग अंदर जा सकती थी।

यदि कंवर उस अवसर पर ताड़ न जाता, तो अलीकुलीखाँ की सेना उसी दिन उस सुरंग के द्वारा अंदर चली जाती। खान भी उस पागल की यह चतुराई देखकर चकित हो गया। पर नगर-निवासी कंवर से दुःखी हो रहे थे। खान के जो विश्वास-भाजन कंवर को समझाने के लिये आए थे, वे किले में ही कैद थे। उन्होंने अंदर ही अंदर नगर-निवासियों को अपनी ओर मिला लिया। जब प्रजा ही कंवर से फिर गई तब उसका कहाँ ठिकाना लग सकता था। बाहरवालों को सँदेसा भेज दिया गया कि रात के समय अमुक समय अमुक बुर्ज पर अमुक मोरचे से आक्रमण करो। हम कमंदें डालकर और सीढ़ियाँ लगाकर तुम्हें ऊपर चढ़ा लेंगे। शेख हबीबुल्ला वहाँ के रईसों में प्रधान थे। वे शेख सलीम चिश्ती के संबंधियों में से भी थे। वे स्वयं इस षड्यंत्र में सम्मिलित थे। इसलिये रात के समय लोगों ने शेखवाले बुर्ज पर से बाहरवालों को चढ़ा ही लिया और एक ओर आग भी लगा दी। यामिनी अपनी काली चादर ताने सो रही थी और सृष्टि बेसुध पड़ी थी। अभागे कंवर ने वह अवसर अपने लिये बहुत ही उपयुक्त समझा और वह एक काला कंबल ओढ़कर भाग गया। पर उसी दिन अलीकुलीखाँ के दूत उसे उसी प्रकार पकड़ लाए, जिस प्रकार शिकारी लोग जंगल से खरगोश पकड़ लाते हैं। यद्यपि शीलवान् सेनापति ने उसे बहुत कुछ समझाया कि जो कुछ तू इस समय कर रहा है, उसमें शाही आज्ञापत्र की अवहेलना और अप्रतिष्ठा है; तू क्षमा माँग ले और कह दे कि मैं आगे से ऐसा नहीं करूँगा; पर वह पागल कब सुनता था! कहता था कि क्षमा-प्रार्थना किसे कहते हैं! अंत में उसने अपने

प्राण गँवाए। बहुत दिनों तक उसकी क़ब्र दरगाह (समाधि) बनकर बदाऊँ नगर को सुशोभित करती रही। लोग उसपर फूल चढ़ाते थे और अपनी कामनाएँ पूरी करते थे। अलीकुलीखाँ ने उसका सिर काटकर एक निवेदनपत्र के साथ बादशाह की सेवा में भेज दिया। दयावान् बादशाह (हुमायूँ) को यह बात पसंद नहीं आई; बल्कि उसने अप्रसन्न होकर आज्ञापत्र लिख भेजा कि जब वह अधीनता स्वीकृत करता था और क्षमा-प्रार्थना के लिये सेवा में उपस्थित होना चाहता था, तो फिर यहाँ तक नौबत क्यों पहुँचाई गई ? और जब वह पकड़ लिया गया था, तब फिर उसका सिर क्यों काटा गया ?

इन्हीं दिनों में हुमायूँ के जीवन का अंत हो गया। प्रताप ने छत्र का रूप धारण करके अपने आप को अकबर के ऊपर निछावर कर दिया। हेमूँ दूसर ने अफगानों के घर का नमक खाया था। वह पूर्वी देशों में नमक का हक अदा करते करते बहुत जोरों पर चढ़ता जाता था। जब उसने देखा कि तेरह बरस का शाहज़ादा भारत का सम्राट हुआ है, तब वह सेना लेकर चला। बड़े बड़े अफगान अमीर और युद्ध की प्रचुर सामग्री लेकर वह आँधी की भाँति पंजाब पर आया। तुगलकाबाद में उसने तरदीबेग को पराजित किया। दिल्ली में, जहाँ का सिंहासन बादशाहों की लालसा का मुकुट है, हेमूँ ने शाही जशन किया और दिल्ली जीतकर विक्रमाजीत बन गया।

शेर-शाही पठानों में से शादीखाँ नामक एक पुराना अफगान था जो उधर के इलाक़े दबाए हुए बैठा था। खानज़माँ उससे लड़ रहा था। जब हेमूँ का उपद्रव उठा, तब उस वीर ने सोचा कि इस पुरानी मिट्टी के ढेर पर तीर चलाने से क्या लाभ ! इससे अच्छा यही है कि नए शत्रु पर चलकर तलवार के हाथ दिखलाऊँ। इसलिये उसने उधर की लड़ाई कुछ दिनों के लिये बंद कर दी और दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। पर वह युद्ध के समय तक समर-भूमि तक न पहुँच सका। वह मेरठ ही में था कि अमीर लोग भागे। वह दिल्ली

से ऊपर ऊपर जमुना पार हुआ और करनाल से होता हुआ पंजाब की ओर चला। दिल्ली के भगोड़े सरहिंद में एकत्र हो रहे थे। यह भी उन्हीं में संमिलित हो गया। अकबर भी वहाँ आ पहुँचा। सब लोग वहाँ उसकी सेवा में उपस्थित हुए। तरदीबेग बाहर ही बाहर मर चुके थे। अकबर ने सब लोगों के साथ कृपापूर्ण व्यवहार किया; बल्कि उन्हें उत्साहित किया। ये सब युक्तियाँ खानखानाँ की ही थीं।

मार्ग में समाचार मिला कि हेमूँ दिल्ली से चला। खानखानाँ ने अपनी सेना के दो विभाग किए। पहले भाग के लिये कुछ अनुभवी अमीरों को चुना। खानजमाँ के सिर पर अमीर उल्-उमराई की कलगी थी; उसके ऊपर उसने सेनापतित्व का छत्र लगाया। सिकंदर आदि अमीरों को उसके साथ किया। अपनी सेना भी उसके सपुर्द कर दी और उसे हरावल बनाकर आगे भेजा। दूसरी सेना को अपने और अकबर के साथ लिया और बादशाही शान के साथ धीरे धीरे चला। हरावल का सेनापति यद्यपि नवयुवक था, तथापि युद्धविद्या में वह प्राकृतिक रूप से विचक्षण था। वह युद्ध-क्षेत्र का रंग ढंग खूब पहचानता था। सेना को बढ़ाना, लड़ाना, अवसर को अच्छी तरह समझना, शत्रु के आक्रमण सँभालना, उपयुक्त अवसर पर स्वयं आक्रमण करने से न चूकना आदि आदि बातें ऐसी थीं जिनमें से प्रत्येक के लिये उसमें ईश्वरीय सामर्थ्य और योग्यता वर्तमान थी। वह जिस उद्देश्य से किसी काम में हाथ डालता था, वह उद्देश्य पूरा ही कर लेता था। उधर हेमूँ को इस व्यवस्था का समाचार मिला; पर उसने इन बातों की उपेक्षा की और दिल्ली जीतकर आगे बढ़ा। उसने भी इन लोगों का पूरा पूरा जवाब दिया। उसने अफगानों के दो ऐसे बड़े सरदार चुने जो उन दिनों युद्धक्षेत्र में चलती हुई तलवार बन रहे थे। उन्हें बीस हजार सैनिक दिए और आग की नदी उगलनेवाला तोपखाना साथ किया और कहा कि पानीपत पर चलकर ठहरो। हम भी वहीं आते हैं।

नवयुवक सेनापति के मन में वीरतापूर्ण उमंगें भरी हुई थीं। वह

सोचता था कि इस बार उस विक्रमाजीत का सामना है, जिसके मुकाबले से पुराना योद्धा और प्रसिद्ध सेनापति भाग निकला; और भाग्यशाली नवयुवक सिंहासन पर बैठा हुआ तमाशा देख रहा है। इतने में उसने सुना कि शत्रु का तोपखाना पानीपत पहुँच गया। उसने कुछ सरदारों को इसलिये आगे भेजा कि चलकर छीना झपटी करें। उन्होंने वहाँ पहुँचकर लिखा कि शत्रु का पल्ला भारी है। यह सुनकर वह स्वयं झपटा और इस जोर से जा पड़ा कि ठंडे लोहे से गरमलोहे को दबा लिया और हाथों हाथ शत्रु से तोपखाना छीन लिया। इसके सिवा सैकड़ों हाथी घोड़े भी उसके हाथ आए थे।

हेमूँ को अपने तोपखाने का ही सब से अधिक अभिमान था। जब उसने यह समाचार सुना, तब वह इस प्रकार झुँझला उठा, मानों दाल में बघार लगा हो। वह अपनी सारी सेना लेकर चल पड़ा। उसके साथ तीस हजार जिरह बक्तर पहने हुए सैनिक और पंद्रह सौ हाथी थे, जिनमें से पाँच सौ हाथी जंगी और मस्त थे। उनके चेहरों को काले पीले रंगों से रँगकर और भी भीषण बना दिया था और सिर पर डरावने जानवरों की खालें डाल दी थीं। पेट पर लोहे की पोखरें, मस्तक पर ढालें, इधर उधर छुरियाँ खड़ी हुई, सूँडों में जंजीरें और तलवारें हिलाते हुए वे चल रहे थे। प्रत्येक हाथी पर एक सूरमा सिपाही और बलवान् महावत बैठाया था; जिसमें ये देव लड़ाई के समय पूरा पूरा काम करें। इधर बादशाही सेना में केवल दस हजार सैनिक थे, जिनमें पाँच हजार अच्छे साहसी योद्धा थे।

सीस्तानी महावीर ने जब शत्रु के आगमन का समाचार सुना, तब उसने अपने गुप्तचर दौड़ाए। परंतु बादशाह के आने अथवा सहायता के लिये सेना मँगाने का कुछ भी विचार न किया। सेना को तैयार होने की आज्ञा दी और अमीरों को एकत्र करके परामर्श-सभा का आयोजन किया। युद्ध क्षेत्र के पार्श्व अमीरों में विभक्त किए। पहले यह समाचार मिला था कि हेमूँ पीछे आ रहा है और शादीखाँ सेनापतित्व करता हुआ

अपनी सेना को लेकर आगे आ रहा है। इतने में एकाएक समाचार मिला कि हेमूँ स्वयं भी साथ ही आया है और उसने पानीपत से आगे बढ़कर घरौंदा नामक स्थान पर मोरचे बाँधे हैं। खानजमाँ का पहले तो आगे बढ़ने का विचार था, पर अब वह वहीं तक रुक गया और नगर से हटकर शत्रु के मुकाबिले पर अपनी सेना खड़ी की। चारों पार्श्व अमीरों में बाँटकर सेना का क़िला बाँधा। मध्य में स्वयं स्थित होकर प्रताप का झंडा फहराया। एक बड़ा सा छत्र तैयार करके अपने सिर पर लगाया और सेनापतित्व की शान बढ़ाकर मध्य में जा खड़ा हुआ। घमासान युद्ध आरंभ हुआ। दोनों ओर के वीर बढ़ बढ़कर तलवारें चलाने लगे। खानजमाँ के जान निछावर करनेवाले सरदार बे-कलेजे होकर आक्रमण करने लगे। वे तलवार की आँच पर अपनी जान दे दे मारते थे, पर फिर भी किसी प्रकार विजयी न हो सकते थे। धावा करते थे और बिखर जाते थे, क्योंकि संख्या में थोड़े थे। परंतु सीस्तानी शेर के आवेश का प्रभाव सब पर छाया हुआ था; इसलिये वे किसी प्रकार मानते नहीं थे। लड़ते थे, मरते थे और शेरों की भाँति बफर बफरकर शत्रुओं पर जा पड़ते थे।

हेमूँ अपने हवाई नामक हाथी पर सवार होकर अपनी सेना के मध्य भाग को सँभाले खड़ा था और अपने सैनिकों को लड़ा रहा था। अंत में युद्ध का रंग ढंग देखकर उसने अपने हाथी हूल दिए। काले पहाड़ अपने स्थान से चले और काली घटा की भाँति छाए। पर अकबर के सेवकों ने उनकी कुछ भी परवा न की। वे पीछे अपने होश सँभाले हुए हटे। काले पानी की बाढ़ के लिये मार्ग दे दिया और लड़ते भिड़ते पीछे हटते चले गए। लड़ाई के समय सेना की गति और नदी का बहाव एक ही सा होता है। वह जिधर फिरा, उधर ही फिर गया। शत्रु के हाथी बादशाही सेना के एक पार्श्व को रेलते हुए चले गए। खानजमाँ अपने स्थान पर खड़ा था और सेनापतित्व की दूरबीन से चारों ओर दृष्टि दौड़ा रहा था। उसने देखा कि जो काली आँधी

सामने से उठी थी, वह बराबर से होकर निकल गई और हेमूँ अपनी सेना के मध्य भाग को लिए खड़ा है। उसने एकाएक अपनी सेना को ललकारा और आगे बढ़कर आक्रमण किया। शत्रु हाथियों के घेरे में था और उसके चारों ओर वीर अफगानों का जमाव था। उसने फिर भी घेरे को ही रेला। तुर्क लोग तीरों की बौछार करते हुए आगे बढ़े। इधर से हाथी सूँड़ों में तलवारें घुमाते और जंजीरें झुलाते हुए आए। उस समय अलीकुलीखाँ के आगे बैरमखाँ के वीर लड़ रहे थे, जिनमें से उनका भानजा हुसैनकुलीखाँ सेनापति था और शाह कुली महरम आदि उसके मुसाहब सरदार थे। सच तो यह है कि उन्होंने बड़ा साका किया और हाथियों के आक्रमण को केवल अपने साहस से रोका। वे लोग अपनी छाती को ढाल बनाकर आगे बढ़े; और जब देखा कि हमारे घोड़े हाथियों से भड़कते हैं, तब वे घोड़ों पर से कूद पड़े और तलवारें खींचकर शत्रुओं की पंक्तियों में घुस गए। उन्होंने तीरों की बौछार से काले देवों के मुँह फेर दिए और काले पहाड़ों को मिट्टी के ढेर के समान कर दिया। खूब घमासान युद्ध होने लगा। पर हेमूँ की वीरता भी प्रशंसनीय है। वह तराजू और बाट उठानेवाला, दाल रोटी खानेवाला, हौदे के बीच में नंगे सिर खड़ा था और अपनी सेना का साहस बढ़ाता था। किसी गुणवान् ज्ञानी अथवा विद्वान् पंडित ने उसे विजय का कोई मंत्र बतलाया था। वह उसी मंत्र का जप किए जाता था। परंतु विजय और पराजय ईश्वर के अधिकार में है। उसके सैनिकों की सफाई हो गई। शादी खाँ अफगान उसके सरदारों की नाक था। वह कटकर धूल में गिर पड़ा। उसकी सेना अनाज के दानों की भाँति बिखर गई। पर फिर भी उसने हिम्मत न हारी। हाथी पर चढ़ा हुआ चारों ओर घूमता था। सरदारों का नाम ले लेकर पुकारता था और उन्हें फिर समेटकर एक स्थान में लाना चाहता था। इतने में एक घातक तीर उसकी भेंगी आँख में ऐसा जा लगा कि पार निकल गया। उसने अपने हाथ से वह तीर खींचकर

निकाला और आँख पर रूमाल बाँध लिया। पर घाव के कारण उसे इतनी अधिक पीड़ा हुई कि वह बेहोश होकर हौदे में गिर पड़ा। यह देखकर उसके शुभचिंतकों का साहस छूट गया। सब लोग तितर बितर हो गए। अकबर के प्रताप और खानजमाँ की तलवार के नाम पर इस युद्ध का विजयपत्र लिखा गया [हेमूँ के पकड़े और मारे जाने का विवरण पृ० ३०-३१ में देखो]। खानजमाँ ने इस युद्ध में जो कार्य किया था, उसके पुरस्कार में संभल और मध्य दुआब का इलाका उसकी जागीर हो गया और वह स्वयं अमीर उल् उमरा बनाया गया। यदि सच पूछो तो [ब्लाकमैन साहब के कथनानुसार] भारत में तैमूरी साम्राज्य की नींव स्थापित करनेवालों में बैरमखाँ के उपरांत दूसरा सरदार खानजमाँ ही था। संभल की सीमा से पूर्व की ओर सब जगह अफगान छाए हुए थे। रुकनखाँ रूहानी नामक एक पुराना पठान उनका सरदार था। खानजमाँ ने सेना लेकर आक्रमण किया और लखनऊ तक समस्त उत्तरी प्रदेश साफ कर दिया। इन प्रदेशों में उसने बहुत ही विलक्षण और अभूतपूर्व युद्ध किए थे।

अकबर मानकोट के किले को घेरे हुए पड़ा था कि इतने में हसन-खाँ पचकोटी ने संभल की सरकार पर हाथ मारना आरंभ किया। उसका अभिप्राय यह था कि या तो इस झगड़े का समाचार सुनकर अकबर स्वयं इस ओर आवेगा और या खानजमाँ, जो आगे बढ़ा जाता है, इस ओर उलट पड़ेगा। खानजमाँ उस समय लखनऊ में था। हसनखाँ बीस हजार सैनिकों को साथ लेकर आया और खानजमाँ के पास केवल तीन चार हजार सैनिक थे। अफगान लोग सिरोही नदी के इस पार उतर आए थे। बहादुरखाँ खानजमाँ की सेना ने उन्हें घाट ही पर रोका। खानजमाँ उस समय भोजन कर रहा था। इतने में उसे समाचार मिला कि शत्रु आ पहुँचा। उसने हुक्म कहा कि जरा एक बाजी शतरंज तो खेल लें! बस आनंद से बैठे हैं और चालें चल रहे हैं। फिर दूत ने आकर समाचार दिया कि शत्रु ने हमारी सेना को हरा

दिया। खानज़माँ ने अपने सेवकों को पुकारकर कहा कि हथियार लाओ। बैठे बैठे हथियार सजे। जब गोले डेरे फूटने लगे और सेना में भगदड़ मच गई, तब बहादुरों से कहा कि अब तुम जाओ। वह आगे गया। देखे तो शत्रु बिलकुल सिर पर आ पहुँचा है। जाने की छुट्टी कटारी हो गया। फिर खानज़माँ अपने घोड़े से कूद कर हाथियों को लेकर चला। नगाड़े पर चोट मारकर जो धावे उड़ाए, तो इस तरफ़ दमक से पहुँचा कि शत्रुओं के पैर उखड़ गए और होश उड़ गए। उनके समूहों को गठरी की भाँति फेंक दिया। अफ़ग़ान इस प्रकार भागे जाते थे जैसे भेड़ बकरी हों। खान कोस तक सब को पटरी करता हुआ चला गया। कटे हुए शव पड़े थे और घायल तड़प रहे थे। इस युद्ध के हाथियों में से सदहूलिया और दलबिगार नामक हाथी हाथ आए थे। सन् ९६४ हि० में खानज़माँ जौनपुर पर अधिकार करके सिकंदर खाँ का स्थानापन्न हो गया।

अकबर के सन् ३ जलूसी में ही इसके सुख-चैन की वाटिका में आसमान के कौवे ने घोंसला बनाया। तुम पहले सुन चुके हो कि इसका पिता उजबक था और इसलिये जातिगत मूर्खताओं का प्रकाशित होना भी आवश्यक ही थी। इस मूर्ख ने शाहम बेग नामक एक सुंदर और बाँके नवयुवक को अपने यहाँ नौकर रख लिया[1]। शाहम बेग पहले हुमायूँ बादशाह के सेवकों और

---

१ यह भी एक विलक्षण समय था। शाह कुली महरम एक प्रसिद्ध वीर और अमीर थे। उन्हीं दिनों उन्होंने प्रेम-क्षेत्र में भी अपनी वीरता दिखलाई। कबूलखाँ नामक एक सुंदर नवयुवक था जो नाचने में मोर और गाने में कोयल था। शाह कुली उसके लिये पागल हो रहे थे। अकबर यद्यपि तुर्क था, तथापि संयोगवश उसे ऐसे दुराचार से घृणा थी। जब उसने सुना, तब कबूलखाँ को बुलवाकर पहरे में दे दिया। शाह कुली को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने अपने घर में आग लगा दी और जोगियों का भेष बदलकर जंगल में जा बैठे। ये खान-

सदा सामने उपस्थित रहनेवालों में था। उस समय खानजमाँ लखनऊ प्रांत में था और शाहम भी उसके पास ही था। जिस प्रकार संसार के अमीर लोग आनंद मंगल किया करते हैं, उसी प्रकार वह भी कर रहा था। पर साथ ही सरकारी सेवाएँ भी ऐसी उत्तमता से करता था कि अपने संवत में वृद्धि करने के साथ ही साथ प्रशंसा की खिलअतें भी प्राप्त करता था और देखनेवाले देखते रह जाते थे।

यद्यपि वह शैबानी खाँ के कुल में से था और उसका पिता खास उपजक था, परंतु उसकी माता ईरानी थी और उसका पालन-पोषण ईरान में ही हुआ था; इसलिये उसका धर्म शीया था। दुःख की बात यह है कि इसकी वीरता और प्राकृतिक तीव्रता ने इसे सीमा से अधिक उच्छृंखल कर दिया था। इसकी सभाओं में भी और एकांत में भी ऐसे ऐसे मूर्ख एकत्र होते थे जिनकी जबान में लगाम नहीं थी और जो वाहियात बातें किया करते थे। उन लोगों से इसकी खुल्लमखुल्ला अशिष्टता और असभ्यता की बातें हुआ करती थीं जो

खाँना के जैलदारों में थे। खानखानाँ ने उन्हें प्रसन्न करने के लिये एक गजल लिखी और जोगी जी को जा सुनाई। इधर इन्हें समझाया, उधर बादशाह की सेवा में निवेदन किया और जोगी को अमीर बनाकर फिर दरबार में प्रविष्ट किया। क्या कहूँ, समरकंद और बुखारा में मैने इस शौक के जो तमाशे अपनी आँखों से देखे, जी चाहता है कि सब लिख डालूँ; पर इस समय का कानून कलम को हिलने नहीं देता। यह वही शाह कुली थे जो हेमूँ का हाथी घेर लाए थे और उन्हीं चारों अमीरों में से एक थे जिन्होंने बुरे से बुरे समय में भी बैरमखाँ का साथ देने से मुँह नहीं मोड़ा था। बादशाह की सेवाएँ भी सदा जान लड़ाकर किया करते थे। मरहम अब भी तुर्किस्तान में दरबारवालों का एक बहुत प्रतिष्ठित और ऊँचा पद है।

किसी प्रकार उचित नहीं थीं। सुन्नत संप्रदाय के लोगों की उन दिनों बहुत अधिक चलती थी। वे लोग इसकी ये सब बातें देखकर लहू के घूँट पीकर रह जाते थे। पर अकबर के हृदय में इसकी सेवाएँ छाप पर छाप बैठाती जाती थीं; और ये दोनों भाई खानखानाँ के दोनों हाथ थे, इसलिये कोई कुछ बोल नहीं सकता था।

शत्रु की सेना में से एक व्यक्ति भागा और मुल्ला पीर मुहम्मद के पास आकर कहने लगा कि मैं आपकी शरण में आया हूँ, अब मेरी लज्जा आपके हाथ है। मुल्ला साहब उसकी सिफारिश करना चाहते थे, पर वे जानते थे, कि खानजमाँ बहुत ही बेपरवाह और जबरदस्त आदमी है; इसलिये उधर कोई युक्ति नहीं लड़ाई। पर धार्मिक विषयों में उसकी बातें सुन सुनकर ये भी जल रहे थे; इसलिये उसकी विलासिता की अनेक बातों को बहुत कुछ नमक मिर्च लगाकर अकबर की सेवा में निवेदन किया और उसे इतना चमकाया कि नवयुवक बादशाह अपनी प्रकृति के विरुद्ध आपे से बाहर हो गया। खानखानाँ उस समय उपस्थित थे। उन्होंने इधर इस जलती हुई आग पर अपने भाषणों के छींटे दिए और उधर खानजमाँ के पास पत्र भेजे। अपने दूत भी दौड़ाए और उसे बुला भेजा। शत्रु लोग अंदर ही अंदर अपने ऊपर जो वार कर रहे थे, उसका सब हाल सुनाकर बहुत कुछ ऊँच नीच समझाया और बिदा कर दिया। उस समय यह आग दब गई।

सन् ४ जलूसी में आज्ञा पहुँची कि शाहम को या तो निकाल दो और या यहाँ भेजो; और स्वयं लखनऊ छोड़कर जौनपुर पर आक्रमण करो, क्योंकि वहाँ कई अफगान सरदार एकत्र हैं। तुम्हारी जागीर दूसरे अमीरों को प्रदान की गई। ये लोग जौनपुर के आक्रमण में तुम्हारे सहायक होंगे। जो अमीर बड़ी बड़ी सेनाएँ देकर भेजे गए थे, उनको आज्ञा हुई कि यदि खानजमाँ हमारी आज्ञा पालन करे, तो उसे सहायता दो; और नहीं तो कालपी आदि के हाकिमों को साथ

लेकर उसे साफ कर दो। खानजामाँ ये सब बातें सुनकर परम चकित हुआ। उसने सोचा कि इस छोटी सी बात पर इतना अधिक क्रोध और दंड! वह अपने शत्रुओं को खूब जानता था। उसने समझ लिया कि नवयुवक शाहजादा अब बादशाह हो गया है और अशुभ-चिंतकों ने मुझपर पेच मारा है। उसने शाहम को दरबार में नहीं भेजा। उसने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि यह जान से मारा जाय। पर हाँ, अपने इलाके से निकाल दिया। अपने विश्वसनीय सेवक और मुसाहब बुर्जअली को बादशाह की सेवा में इसलिये भेजा कि शत्रुओं ने बादशाह को जो उलटी सीधी बातें समझाई हैं, उनका प्रभाव नम्रता-पूर्वक और हाथ जोड़कर दूर करे। बादशाह उस समय दिल्ली में था और फीरोजाबाद के किले में उतरा हुआ था। अभागा बुर्जअली जब वहाँ पहुँचा, तब उसे पहले मुल्ला पीर मुहम्मद से मिलना उचित था; क्योंकि अब वह वकील मुतलक हो गए थे। मुल्ला किले के बुर्ज पर उतरे हुए थे। बुर्जअली सीधा बुर्ज पर चढ़ गया और प्रेम-पूर्ण सँदेसे पहुँचाए। पर मुल्ला का दिमाग आतिशबाजी के बुर्ज की भाँति उड़ा जाता था। बहुत क्रुद्ध हुए। वह भी खानजामाँ का जान निछावर करनेवाला और नमक-हलाल दूत था। संभव है, उसने कुछ उत्तर दिया हो। मुल्ला जामे से ऐसे बाहर हुए कि आज्ञा दी कि इसे बाँधकर नीचे फेंक दो और मारकर भेला कर दो इतने पर भी उनका संतोष नहीं हुआ। कहा कि बुर्ज पर से गिरा दो। वह उसी समय गिरा दिया गया और उसका शरीर रूपी मंदिर बात की बात में जमीन के बराबर हो गया। कसाई पीर मुहम्मद ने ठहाका मारकर कहा कि आज इसके नाम का प्रभाव पूरा हुआ। खानजमाँ ने शाहम का तो फिर नाम नहीं लिया, पर बुर्जअली के मारे जाने और अपनी अप्रतिष्ठा का उसे बहुत अधिक दुःख हुआ। विशेषतः इस बात का उसे और भी अधिक दुःख था कि शत्रुओं ने जो चाल चली थी, वह पूरी उतर गई और उसकी बात बादशाह

के कानों तक भी न पहुँची। खानखानाँ भी वहीं उपस्थित थे, पर उनको भी इन बातों का समाचार न मिला और ऊपर ही ऊपर बुर्जअली जान से मारा गया। जब उन्होंने सुना, तब दुःख करने के अतिरिक्त और क्या हो सकता था! और वास्तविक बात तो यह थी कि उस समय स्वयं खानखानाँ की नींव की ईंटें भी निकल रही थीं। थोड़े ही दिनों में बादशाह ने आगरे के लिये कूच किया। मार्ग में खानखानाँ और पीर मुहम्मद की बिगड़ी और एक के बाद एक आपत्ति आने लगी।

यद्यपि दरबार का रंग बेढंग हो रहा था, पर उदार सेनापति ऐसी बातों पर कब ध्यान देता था! खानजमाँ और खानखानाँ में परामर्श हुआ कि इन लोगों की जबानें तलवार से काटनी चाहिएँ। इसलिये एक ओर खानखानाँ ने विजयों पर कमर बाँधी और दूसरी ओर खान-जमाँ ने तलवार के पानी से अपने ऊपर लगा हुआ कलंक धोने के लिये विजय पताका फहराई। कौड़िया अफगान ने आपही अपना नाम सुलतान बहादुर रक्खा था, बंगाल में अपना सिक्का चलाया था और अपने नाम का खुतबा पढ़वाया था। खानजमाँ जौनपुर में ही था कि वह तीस चालीस हजार सैनिकों को लेकर चढ़ आया। खानजमाँ उस समय भी दस्तरख्वान पर ही बैठा हुआ था कि उसने आ लिया। जब अपने खिदमतगारों के डेरे और अपने सरा-परदे लुटवा लिए, तब ये निश्चित होकर उठे और अपने साथियों तथा जान निछार करनेवालों को लेकर चले। जिस समय शत्रु इनके डेरे में पहुँचा था, उस समय उसके दस्तरख्वान को उसी प्रकार बिछा हुआ पाया था। अस्तु; ये बाहर निकलकर सवार हुए। नगाड़ा बजाकर इधर उधर घोड़ा मारा। नगाड़े का शब्द सुनते ही बिखरे हुए सैनिक एकत्र हो गए। खानजमाँ ने जो इन गिनती के सैनिकों को लेकर आक्रमण किया, तो अफगानों के धूएँ उड़ा दिए। बहादुरखाँ ने इस युद्ध में वह बहादुरी दिखलाई कि रुस्तम और अस्फंदयार का नाम मिटा दिया। जो अफगान वीरता के विचार से तौल में हजार हजार सवारों से तुलते थे, उन्हें काटकर मिट्टी

में मिला दिया। उनकी सेना युद्धक्षेत्र में बहुत कम गई थी। सब लोग लूट के लालच से खेमों में घुस गए थे। तोशादान भर रहे थे और गठरियाँ बाँध रहे थे। जिस समय नगाड़ा बजा और तुर्कों ने तलवारें लेकर आक्रमण किया, उस समय अफगान लोग इस प्रकार भागे मानों मधुमक्खियों के छत्ते से मक्खियाँ उड़ने लगीं। एक ने भी उलटकर तलवार न खींची। खजाने, युद्ध की सामग्री, बल्कि घोड़े हाथी तक सब छोड़ गए; और इतनी लूट हाथ आई कि फिर सेना को भी और अधिक की आकांक्षा न रही। मेवात के उपद्रवी, जो उपद्रव के बाने बाँधे हुए बैठे थे, और हजारों उद्दंड पठान दिल्ली और आगरे को घुड़दौड़ का मैदान बनाए फिरते थे। जिन लोगों की गरदन की रगें किसी प्रकार ढीली नहीं होती थीं, उन सबको इसने तलवार के पानी से ठीक कर दिया। इन सेवाओं का ऐसा प्रभाव पड़ा कि फिर चारों ओर इनकी वाहवाही होने लगी। बादशाह भी प्रसन्न हो गया। चुगली खानेवालों की जबानें आपसे आप कलम हो गईं और ईर्ष्या करनेवालों के मुँह दवात की भाँति खुले रह गए।

जब अकबर थोड़े दिनों तक बैरमखाँ के झगड़े में लगा रहा, तब पूर्वी देशों के अफगानों ने उसी अवसर को गनीमत समझा और वे खिसटकर एकत्र हुए। उन्होंने कहा कि इधर के इलाके में जो कुछ है, वह एक खानजमाँ ही है। यदि हम लोग किसी प्रकार इसे उड़ा दें तो फिर मैदान साफ है। उस समय अदली अफगान का पुत्र चुनार के किले का स्वामी होकर बहुत बढ़ चढ़ चुका था। उसे इन लोगों ने शेरखाँ बनाकर निकाला। वह अपनी सेना को लेकर बहुत ठाठ बाट से और विजय का प्रण करके आया। खानजमाँ उस समय जौनपुर में था। यद्यपि उस समय उसका दिल बहुत टूटा हुआ था और खानखानाँ के पतन ने उसकी कमर तोड़ दी थी, पर फिर भी उसने समाचार पाते ही आस पास के सब अमीरों को एकत्र कर लिया और शत्रु को रोकना चाहा। परंतु उधर का पल्ला भारी था। उस ओर बीस हजार सवार,

पचास हजार पैदल और पाँच सौ हाथी थे। खानजमाँ ने बढ़कर जाना उचित नहीं समझा; इसलिये शत्रु और भी शेर होकर आया और गोमती नदी पर आन पड़ा। खानजमाँ अंदर ही अंदर तैयारी करता रहा और कुछ न बोला। वह तीसरे दिन नदी पार करके बहुत घमंड से स्वयं आगे बढ़ सरदारों तथा पुराने पठानों को साथ लिए हुए सुलतान हुसैन शरकी की मसजिद की ओर आया। कुछ प्रसिद्ध सरदारों की सहायता से दाहिना पार्श्व दबाया और ठाल दरवाजे पर आक्रमण करना चाहा। कई तलवरिए अफगानों को बाईं ओर रखा जिसमें वे शेख फूल के बंद का मोरचा तोड़ें। अकबरी वीर भी आगे बढ़े और युद्ध आरंभ हुआ।

युद्ध-क्षेत्र में खानजमाँ का पहला सिद्धांत यह था कि वह शत्रु के आक्रमण को सँभालता था। उसे दाहिने बाएँ इधर उधर के सरदारों पर डालता था और स्वयं बहुत सचेत और सतर्क होकर तत्परता के साथ रहता था। जब वह देखता था कि शत्रु का सारा जोर लग चुका, तब वह स्वयं उसपर आक्रमण करता था और इस प्रकार टूटकर गिरता था कि साँस न लेने देता था और शत्रु के धूँए उड़ा देता था। यह युद्ध भी वह इसी चाल से जीता। शत्रु अपनी बड़ी सेना और युद्ध-सामग्री यों ही नष्ट करके और विफल-मनोरथ होकर भागा और हाथी, घोड़े, बढ़िया बढ़िया जवाहिरात और लाखों रुपयों के खजाने तथा माल खानजमाँ को घर बैठे दे गया। यदि ईश्वर दे तो मनुष्य उसका सुख क्यों न भोगे। खानजमाँ ने सब माल अपने अमीरों में बाँट दिया और अपने सैनिकों को बहुत अधिक पुरस्कार दिया। स्वयं भी आनंद-मंगल की सब सामग्री ठीक करके खूब चैन किया। यह अवश्य है कि इस युद्ध में जो कुछ माल असबाब हाथ आया था, उसकी सूची बादशाह की सेवा में नहीं उपस्थित की। जौनपुर में यह उसकी दूसरी विजय थी।
